*{आकाशवाणी केंद्र और वेबसाइट्स} *{रेडियोज़, टैपरेकॉर्ड्स, टी.बीज़, लाउडस्पीकर्स आदि}

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः। प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुः उद्यम्य पाण्डवः।। 1/20

अथ कपिध्वजः | **तब** {हनुमान/कपि की चंचल विजय-पताका से चिह्नित रथ वाले} **कपिध्वज**

पाण्डवः धार्तराष्ट्रान् | **पाण्डव-अर्जुन ने धृतराष्ट्र-पुत्र** {कौरवीय नेताओं} **को** {हड़बड़ी में आकर},

व्यवस्थितान् दृष्ट्वा प्रवृत्ते | **विशेष रूप से सज्जित** {और} **प्रवृत्त हुआ देखकर,** {ज्ञान-योग-धारणा के}

शस्त्रसम्पाते धनुः उद्यम्य | {ज्ञान}**-शस्त्र चलाने के समय** {अपना दैहिक पुरुषार्थ रूपी} **धनुष उठा लिया।**

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते। अर्जुन उवाचः- सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत।। 1/21

महीपते तदा हृषीकेशं | **हे राजन्! उस समय** {मुकर्रर रथ द्वारा प्रमाणित} **परमपवित्र शिवबाबा से**

वाक्यमिदमाह अच्युत मे रथं | **यह वाक्य कहा- हे अमोघ वीर्य** {हे शिवबाबा}**! मेरे** {शरीर रूपी} **रथ को**

उभयोः सेनयोः मध्ये स्थापय | **दोनों सेनाओं के मध्य में** {इस तरह गुप्तरूप से सुरक्षापूर्वक} **खड़ा करो,**

यावत् एतान् निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्। कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे।। 1/22

यावत् अहं एतान् निरीक्षे | **जहाँ से मैं** {सहयोगियों सहित} **इन** {लोगों} **को निरीक्षण कर सकूँ** {कि}

योद्धुकामान् अवस्थितान् कैः सह | {ज्ञान-}**युद्ध के लिए उत्सुकतापूर्वक खड़े हुए किन** {विरोधियों के} **साथ**

मया अस्मिन् रणसमुद्यमे योद्धव्यं | **मुझे इस** {धर्म-अधर्म अथवा सत्य-असत्य के} **युद्ध में लड़ना है।**

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं ये एतेऽत्र समागताः। धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेः युद्धे प्रियचिकीर्षवः।। 1/23

पितामहानाचार्यान्पुत्रान् मातुलान्भ्रातॄन् | **प्रपिता रूप बाबाओं को, विद्वानाचार्यों, पुत्रों, मामाओं, भाइयों,**

पौत्रान्सखीन् श्वशुराञ्च तथा सुहृदः | **पौत्रों, मित्रों, श्वशुरों और उसी तरह सगे-सम्बन्धियों को**

अप्येव उभयोः सेनयोः स्थितान् तत्र अपश्यत् | **भी स्पष्टतः दोनों सेनाओं के बीच स्थित हुआ वहाँ देखा।**

तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धून् अवस्थितान्।। 1/27 कृपया परया आविष्टो विषीदन् इदम् अब्रवीत्।

स कौन्तेयः अवस्थितान् तान् सर्वान् | **वह कुन्ती माता का पुत्र** {धर्मयुद्ध हेतु} **तैयार खड़े हुए उन सब**

बन्धून् समीक्ष्य परया कृपया | **संबन्धियों की समीक्षा करके,** {सम्बन्धियों के मोह में} **बड़ी करुणा से**

आविष्टो विषीदन् इदमब्रवीत् | **भरकर,** {उनके विनाश की स्मृति आते ही} **विषाद करते हुए यह बोला-**

अर्जुन उवाच- दृष्ट्वा इमम् स्वजनम् कृष्ण युयुत्सुम् समुपस्थितम्।। 1/28

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति। वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।। 1/29

कृष्ण इमं समुपस्थितं स्वजनं | **हे आकर्षणमूर्त** {शिवबाबा}**! इन सामने खड़े हुए** {दैहिक} **सगे-संबंधियों को**

युयुत्सुं दृष्ट्वा मम गात्राणि | **युद्ध करने के लिए उत्सुक देखकर मेरे अंग** {दैहिक लगाव के कारण}

सीदन्ति च मुखं परिशुष्यति च मे | **शिथिल हो रहे हैं और मुख अत्यन्त सूख रहा है तथा** {निराशा से} **मेरे**

शरीरे वेपथुश्च रोमहर्षः जायते | **शरीर में कम्प और रोंगटे खड़े हो रहे हैं।** {जैसे आत्मबल क्षीण हो गया है।}

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते। न च शक्नोमि अवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।। 1/30

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।" गी. 4/7 अर्थात् जब धर्म की ग्लानि होती है, अधर्म बढ़ता है, तब मैं आता हूँ। धर्म की ग्लानि अर्थात् एकव्यापी भगवान को सर्वव्यापी बता देते हैं। जैन और वैदिक प्रकिया के अनुसार कलियुग के अंत में ही धर्म की ग्लानि होती है; क्योंकि कलियुग-अंत तक अनेक धर्म स्थापित हो जाते हैं और सब तमोप्रधान बन जाते हैं।

"**सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥" गीता** 7/27 अर्थात् सब प्राणी कल्पान्त काल/चतुर्युगांत में सम्पूर्ण मूढ़ता को पहुँच जाते हैं।

"जगद्विपरिवर्तते" गीता 9/10 अर्थात् मेरी एकमात्र अध्यक्षता के कारण यह संसार विपरीत गति अर्थात् कलियुगान्त से आदि सतयुगी ऊर्ध्वलोक में परिवर्तित होता है। अगर भगवान श्रीकृष्ण ने द्वापर में आकर गीता-ज्ञान दिया है तो संसार का परिवर्तन होना चाहिए; परन्तु संसार का तो परिवर्तन हुआ नहीं, मनुष्य और ही अधर्मी, कामी, पाखंडी, अभिमानी, क्रोधी, अहंकारी, पशुओं के समान आचरण करने वाले हो गए और कलाहीन पापी कलियुग बन गया।

वास्तव में यह सामने खड़े महाभारत युद्ध के आसार वर्तमान समय की बात है। भगवान ने आकर कोई स्थूल हिंसा करना नहीं सिखाया है। लड़ाई-झगड़ा या मारा-मारी करना- ये असुरों के संस्कार हैं। भगवान तो आकर दैवी राज्य स्थापन करते हैं, देवता लड़ते नहीं हैं। जो कौरव और पाण्डवों का युद्ध बताया है, वो अभी मौजूद हैं; क्योंकि शास्त्रों में जो भी नाम हैं, सभी काम के आधार पर हैं। जैसे अच्छे या बुरे काम किए हैं वैसे नाम पड़ गए हैं; क्योंकि दुनिया नाम को स्मरण करती है। जैसे 'राम' नाम पड़ा है- "रम्यते योगिनो यस्मिन् इति रामः।" अर्थात् योगी लोग जिसमें रमण करते हैं, उसका नाम है 'राम'। ऐसे ही 'रावण'–"रावयते लोकान् इति रावणः।" अर्थात् जो लोगों को रुलाता है, वो रावण है। उसी प्रकार कौरव सम्प्रदाय धृतराष्ट्र और उसके कुकर्मी पुत्र दुर्योधन-दुःशासन, जो सत्य

आध्यात्मिक विश्वविद्यालय

श्रीमद्भगवद्गीता पॉकेट बुक

(संधिविच्छेद, शब्दानुवाद और संक्षिप्त व्याख्या सहित)

दिल्ली-110085: ए-1, 351-352, विजय विहार, पो. रिठाला

☏ (0) 9891370007, (0) 9311161007

कम्पिला-207505: नेहरु नगर, गंगा रोड, जि.फर्रुखाबाद (उ.प्र.)

☏ (0) 9580568954, (0) 8419089916

धर्म के नाशक हैं और उनको समर्थन देने वाले बड़े-2 गुरु द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह-जैसे सन्यासी हैं और उनके विपरीत असत्य का सर्वथा विरोध करने वाले सत्य धर्म के स्थापक पांडु बाप के पांडव बच्चे युधिष्ठिर-अर्जुन आदि भी हैं जो भगवान का आश्रय लेने वाले हैं। यह कोई एक-एक व्यक्तित्व की बात नहीं है, अपितु ऐसे आचरण करने वाले प्रत्येक मनुष्यमात्र की बात है।

इस समय ही ऐसे पूंजीवादी धृतराष्ट्र (जिसने अन्याय पूर्वक राष्ट्र की धन-सम्पत्ति हड़प ली) गवर्मेण्ट के नुमाइन्दे बनकर बैठे हैं, हज़ारों का प्रॉपर्टी टैक्स लगवाते हैं। जिनको समाज का रक्षक होना चाहिए, वो ही पुलिस अधिकारी 'भक्षक' बनकर जनता को प्रताड़ित कर रहे हैं। न्याय व्यवस्था अन्याय व्यवस्था में बदल गई। पहले राजाओं के राज्य में धर्म के अनुसार न्याय किया जाता था, बिना किसी वकील की सहायता के तुरंत निर्णय भी मिलता था; लेकिन आज विदेशिओं के द्वारा बनाए गए कोर्ट में न्याय की अपेक्षा करते-2 प्राण भी चले जाएँ, तो भी न्याय नहीं मिलता है। इसलिए आज कई सच्चे लोग हैं, जो जेल में पड़े रहते हैं और अपराधी गद्दीनशीन बनकर बैठे हैं। जैसे (दुष्ट युद्ध करने वाले) दुर्योधन, दुशासन हाथ-पाँव चलाते हैं, बाहुबल चलाते हैं, ऐसे-2 हैं, खराब काम करते हैं। जो अपने अधिकार का दुरुपयोग कर रहे हैं। कोई एक द्रौपदी की बात नहीं है, अनेकों द्रौपदी समान कन्या-माताओं पर रोज़ अत्याचार किया जाता है। जिस भारतवर्ष में नारियों की पूजा की जाती थी, उसी भारत में आज नारियों पर पशुओं के समान अत्याचार किया जाता है। कानून की कोई रोकथाम नहीं है और ऐसी भ्रष्ट इन्द्रियों का दुराचरण कराने वाली गवर्मेण्ट को सहयोग देने वाले और बदले में मानमर्तबा लेने वाले हैं- द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह-जैसे बड़े-2 संन्यासी। जो अपने को शिवोऽहम् कहते हैं और (वास्तविक 'God is one') भगवान से बेमुख करा देते हैं। स्वयं की पूजा कराते हैं, अपने को श्री-2 1008 या 108 की श्रेष्ठतम संगठन रूपी माला के

भूमिका

'श्रीमद् भगवद्गीता' सम्पूर्ण विश्व में मानवजाति के लिए दिया हुआ भारतवर्ष का अमूल्य उपहार है। भगवद्गीता ही एक ऐसा शास्त्र है जिसको 'सर्वशास्त्र शिरोमणि' कहा गया है। ऐसी विलक्षण रचना है, जिसको ही 'भगवानुवाच' की मान्यता प्राप्त है। जो महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित है। गीता 18/75 में बताया है- "**व्यासप्रसादात्**" अर्थात् व्यास की प्रसन्नता से यह गीता-ज्ञान हमको मिला है। यह शास्त्र अन्य शास्त्रों की तरह सिर्फ धर्म उपदेश का साधन नहीं; अपितु इसमें अध्यात्म के साथ-2 राजनैतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान भी छुपा हुआ है। अर्जुन जो महाभारत युद्ध के महानायक हैं, युद्ध के मैदान में समस्याओं से भयभीत होकर जीवन और क्षत्रिय धर्म से निराश हो गए। उसी प्रकार हम सभी नं वार अर्जुन की भाँति जीवन की समस्याओं में उलझे हुए हैं; क्योंकि यह जीवन भी एक युद्ध क्षेत्र है। इसलिए आज सामान्य मनुष्य अपने जीवन की समस्याओं से उलझकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है अर्थात् क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए- इस संबंध में ही बुद्धू बन जाता है और जीवन की समस्याओं से लड़ने की बजाए, उससे भागने लगता है। लेकिन समस्याओं से भागना समस्या का समाधान नहीं है। उन समस्याओं के समाधान के लिए ही भगवान अर्जुन के माध्यम से समस्त सृष्टि की मानवजाति के लिए ही गीता-ज्ञान अभी वर्तमान समय में दे रहे हैं, जिस गीता-ज्ञान के लिए यह समझा जाता है- भगवान श्रीकृष्ण ने द्वापर के अंत में यह गीता-ज्ञान दिया है। परन्तु गीता में एक भी ऐसा श्लोक नहीं है जिसमें बताया हो कि गीता-ज्ञान द्वापर में दिया है। जबकि गीता 18/66 में बोला है-

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।" अर्थात् मठ-पंथ-सम्प्रदायादि दैहिक दिखावे वाले सब धर्मों का परित्याग करके, मुझ निराकार स्टेज वाले शिव-शंकर की शरण में जा। देखा जाए तो सभी धर्म द्वापर में मौजूद भी नहीं थे, अभी वर्तमान समय में अनेक धर्म मठ-पंथ-सम्प्रदाय हैं।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः। धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः।। 1/17
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते। सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान् दध्मुः पृथक्पृथक्।। 1/18

परमेष्वासः काश्यश्च	{दैहिक पुरुषार्थ रूपी} **बड़ा धनुष धारण करने वाले काशिराज** ने **और** {ऐसे ही}
महारथः	{देहांकारी हाथी-जैसी महाकाली रूपा} **महारथी** {चोटी की बीजरूपा ब्राह्मणी सो रुद्राणी}
शिखण्डी च धृष्टद्युम्नो	**शिखण्डी** ने **एवं** {ढीठ और निर्लज्ज पांडवों का सेनापति} **धृष्टद्युम्न ने,**
विराटश्च अपराजितः	{विष्णुरूप जैसा} **विराट एवं** {किसी से पराजित न होने वाला} **अपराजित,**
सात्यकिश्च द्रुपदो द्रौपदेयाश्च	{सदा सत्य के साथी} **सात्यकि** ने **तथा** {निश्चित ही ध्रुव पद पाने वाले कांपिल्य नगर के राजा, जो मित्रद्रोही भी था, उस} **द्रुपद ने और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों ने**
महाबाहुः सौभद्रश्च पृथिवीपते सर्वशः	**एवं महाबाहु सुभद्रापुत्र** {जो अपने मामा तथा अलौकिक बाप को लेकर बड़ा अभिमानी था ऐसे} अभिमन्यु ने, **हे धरणीश्वर! चारों ओर** {की दिशाओं में}
पृथक्-2 शंखान् दध्मुः	**अलग-2** {प्रकार के ईश्वरीय ज्ञान के मिश्रित मुख रूपी} **शंख बजाए।**

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्। नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन्।। 1/19

स घोषो नभश्च पृथिवीं तुमुलो व्यनुनादयन्	**उस** {ज्ञान-}**घोष से आकाश* और* पृथ्वी जोर से गूँजने लगे,**
चैव धार्तराष्ट्राणां	**और** {पूँजीवादी} **धृतराष्ट्र-पुत्रों** {काँग्रेसी-कौरवीय नेताओं} **के**
हृदयानि व्यदारयत्	**हृदय ही विदीर्ण हो गए।** {और इसीलिए ढेरों के हार्टफेल हो गए।}

ये एते अत्र युद्धे दुर्बुद्धेः	**जो ये राजा लोग यहाँ** {सत्य-असत्य के} **युद्ध में दुष्टबुद्धि वाले**
धार्तराष्ट्रस्य प्रियचिकीर्षवः	**दुर्योधन का प्रिय** {कल्याण} **करने की इच्छा वाले** {कलियुग के अंत में}
समागताः योत्स्यमानान् अहं अवेक्षे	**एकत्रित हुए हैं,** {उन सभी धर्मों के इन} **योद्धाओं को मैं देखूँ तो।**

संजय उवाच-एवं उक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत। सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमं।। 1/24

भारत	**हे भरतवंशी,** {भौतिकवादी विनाशी धन-संपत्ति के पूंजीवादी} राजा **धृतराष्ट्र!**
गुडाकेशेन एवम् उक्तो	**निद्रा को जीतने वाले ज्ञानधनार्जनकर्ता अर्जुन के ऐसी** {उत्साह की बात} **कहने पर**
हृषीकेशो उभयोः सेनयोः	**इंद्रियों पर सदा विजयी** {शिवबाबा ने} **दोनों** {उत्तरी दैवी & दक्षिणी आसुरी} **सेनाओं के**
मध्ये रथोत्तमं स्थापयित्वा	**बीच में** {अर्जुन का शिवप्रविष्ट मुकर्रर} **श्रेष्ठ** {शरीर रूपी} **रथ स्थापित किया।**

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षितां। उवाच पार्थ पश्य एतान् समवेतान् कुरून् इति।। 1/25

च भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां महीक्षितां इति	**और भीष्म-द्रोण जैसे मुख्य-2 सब राजाओं के सामने ऐसे**
उवाच पार्थ! समवेतान्	**कहा- हे पृथ्वी के प्रथम राजा** {आदम/अर्जुन पृथ्वीपति पृथु}**! एकत्र हुए**
एतान् कुरून् पश्य	**इन** {रामराज्य के बहाने रावणराज्य लाने वाले कर्माभिमानी} **कौरवों को देखो।**

तत्र अपश्यत् स्थितान् पार्थः पितॄनथ पितामहान्। आचार्यान् मातुलान् भ्रातॄन् पुत्रान् पौत्रान् सखीन् तथा।। 1/26
श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।

स्थितान् पितॄन् अथ	**खड़े हुए पितृपक्ष के** {आसुरी धर्मों के बीज} **पूर्वजों को, उसी तरह** {विपक्ष में}

सौमदत्तिः	{ज्ञानचंद्र कृष्ण उर्फ सतयुगी I ना**0** की III पीढ़ी के ना**0** में प्रवष्टि भूरि-**2** प्रशंसनीय महात्मा बुद्ध ही} **सोमदत्त-पौत्र** भूरिश्रवा है। {इस बात के संज्ञानार्थ AIVV-कोर्स अनिवार्य है।}

अन्ये च बहवः शूराः मदर्थे त्यक्तजीविताः। नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः।। 1/9

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे जीविताः	**और भी अनेक शूरवीर** {जो विशेष रूप से} **मेरे लिए अपने जीवन का**
त्यक्त सर्वे नानाशस्त्र-	**त्याग करने वाले** {हैं}। {वे} **सभी अनेक** {ज्ञान, अज्ञान}-**शस्त्रों से**
प्रहरणाः युद्धविशारदाः	**प्रहार करने वाले** {हैं तथा झूठे हिंसक}-**युद्धकला में निपुण** {हैं}।

अपर्याप्तं तत् अस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितं। पर्याप्तं तु इदं एतेषां बलं भीमाभिरक्षितं।। 1/10

भीष्माभिरक्षितं तत् अस्माकं बलं	{समाज व सरकार में महासम्माननीय} **भीष्म से रक्षित वह हमारी सेना**
अपर्याप्तं तु इदं भीमाभिरक्षितं	**अपार है, जबकि** {भेड़िए जैसे खदूस&राक्षसी वृत्ति के} **भीम द्वारा रक्षित**
एतेषां बलं पर्याप्तं	**इन** {पाण्डुवों} **की** {अल्पसंख्यक} **सेना सीमित है।** {अतः जीत निश्चित है।}

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः। भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि।। 1/11

च भवन्तः सर्व एव	**इसलिए आप सभी लोग** {जो प्रजातंत्र राज्य के शासक हैं,}
यथाभागं सर्वेषु	**अपने-2 विभागों के अनुसार, सब** {पैदल-अश्व-गज-रथादि के अधिकारियों जैसे}
अयनेषु अवस्थिताः हि	**मोर्चों पर डटे रहकर, निःसन्देह** {जन-धन-वैभव-बाहुबल द्वारा अन्याय से भी}
भीष्मं एव अभिरक्षन्तु	**सब ओर से भीष्म की ही रक्षा करें**; क्योंकि वोटदाता प्रजाजनों में इन

ततः श्वेतैः हयैः युक्ते महति	**तब 4 श्वेताश्वों के** मनरूप {संगठित चतुर्मुखी ब्रह्मा} **से युक्त महान**
स्यन्दने स्थितौ माधवः च	{शरीर रूपी} **रथ में बैठे हुए माता पार्वती-पति** {शिवबाबा} **और**
पाण्डवः एव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः	**पाण्डव** अर्जुन **ने भी** {अपने} **दिव्य** {मुख रूपी} **शंख बजाए।**

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः। पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः।। 1/15
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ।। 1/16

हृषीकेशो पांचजन्यं	**इन्द्रियों के स्वामी** {अमोघवीर्य शिवबाबा} **ने** {पंचजन+ञ्य (दधानो)} **पांचजन्य,**
धनंजयः देवदत्तं	**ज्ञानधनजेता** {होने से योगबल द्वारा विश्वविजेता अर्जुन} **ने इंद्रदेव-प्रदत्त** 'देवदत्त',
वृकोदरः भीमकर्मा	{सैकड़ों कौरवों-कीचकों-राक्षसों के अकेले हत्यारे} **भयंकर कर्म करने वाले** {और} भेड़िए जैसे {खदूस} पेट वाले **भीम ने** {महाविनाशकारी व्याघ्र की दहाड़ में}
पौण्ड्रं महाशंखं कुन्तीपुत्रो	**पौण्ड्र नामक महाशंख, कुंती माता के पुत्र** {जो अहिंसावादी धर्मयोद्धा थे, उन}
राजा युधिष्ठिरः अनन्तविजयं	{सत्यवादी मुख वाले} **राजा युधिष्ठिर ने** {सदा विजयदाता} **अनन्तविजय,**
नकुलः	{महाविषैले व्यभिचारी विदेशियों प्रति न्यौला-जैसे} **नकुल** {जो न देशी, न विदेशी रहे}
च सहदेवः	**और** {नानक-जैसे सदा देवात्माओं के सहयोगी&ह्यूमन गौशाला रक्षक} **सहदेव ने**
सुघोषा	{क्रमशः मनरूप अश्वों का वशकर्ता तथा गजगोर जैसी घोषणा-जैसा} **सुघोष** {और}
मणिपुष्पकौ दध्मौ	{आत्मा रूपी मणि जैसी गुरुद्वारी वाणी बोलने वाला मुख रूपी} **मणिपुष्पक** {शंख} **बजाए।**

आत्मा को रथी समझ और शरीर को रथ समझ, बुद्धि को सारथी समझ और मन को लगाम समझ, इन्द्रियों को घोड़े समझ। वो निराकार गीता-ज्ञानदाता अर्जुन के साकार शरीर रूपी रथ में प्रवेश करता है।

गी. 10/2- "**न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।**" मेरे उत्कृष्ट जन्म को न सतयुगी देव और न द्वापरयुगी महान ऋषिजन ही जानते हैं, जबकि कृष्ण के जन्म तो सामान्य मनुष्यों को भी ज्ञात है- सामान्य रूप से माता के गर्भ से जन्म हुआ था; परन्तु भगवान तो अगर्भा है; क्योंकि वो परकाया प्रवेश करता है। (गी. **11/54 "प्रवेष्टुं")** अर्थात प्रवेश करके ज्ञान का बीज डालता है। गी. 14/3 "**मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।**" मेरी योनि रूपी माता **महत्** (परमब्रह्म) है, जिसमें आकर मैं आत्म-ज्ञान का बीज डालता हूँ, महाविनाश के समय मनुष्य-सृष्टि वृक्ष के बीज/बाप(अर्जुन/आदम) की देह रूपा परमब्रह्मा में पड़े उस बीज से सब प्राणियों की नं. वार उत्पत्ति होती है। जिस गर्भ के बारे में अन्य शास्त्रों में ऋषि-मुनि भी उसे सच्चा-2 'हिरण्य गर्भ' कहते हैं। इस शब्द का प्रथमतः उल्लेख ऋग्वेद में आया है, जो अंडाकार ज्योति के समान है, जिससे सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। गी. 9/7 "**सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् । कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥**" हे कुंती-पुत्र! कल्पांतकाल में सब प्राणी मेरी निराकारी स्टेज धारण करने वाली इसी प्रकृष्ट शरीर रूपी कृति (शंकर) के अव्यक्त ज्योतिर्बिंदु आत्मिक भाव को पाते हैं और कल्प के आदिकाल से मैं उन्हें फिर से सृष्टि के लिए आत्मलोक से नं. वार छोड़ देता हूँ। गी. 2/17 "**अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् । विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥**" जिस मनुष्य-सृष्टि के बीज-रूप आदम या आदिदेव/शंकर के द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व विस्तार को पाया है, उसको तो अविनाशी जान। इस अव्यय पुरुष शंकर का विनाश करने के लिए कोई भी समर्थ नहीं है। जबकि कृष्ण को तो एक बहिलिये ने तीर मारा और उनकी मृत्यु हो गई। गी. **11/32** में बोला है- 'कालोऽस्मि' अर्थात् मैं काल हूँ। जो स्वयं कालों का

जगतगुरु का टाइटल लेकर, एकव्यापी भगवान को सर्वव्यापी बताकर सबसे बड़ा अधर्म करते हैं और जनता को भ्रमित किए हुए हैं। इन सब अधर्मियों और इनके द्वारा फैलाए अधर्म का नाश करने के लिए ही भगवान इस कलियुगांत की सृष्टि पर आते हैं और गीता-ज्ञान भीष्मपितामह-जैसे पवित्र सन्यासियों को, विद्वान-पंडितों जैसे द्रोण या कृपाचार्यों जैसे वेतनभोगियों को नहीं, अर्जुन-जैसे गृहस्थी को देते हैं। ऐसों की भी प्रत्यक्ष रिहर्सल/शूटिंग कराने वाली हैं ब्रह्माकुमारीज़। जो लगातार सत्य को दबाने के लिए करोड़ों रुपये सरकारी अफसरों और मीडिया वालों को दे रही हैं और अपना अल्पकालीन मान-मर्तबा बनाए रखना चाहती हैं। जिनके इन्हीं कर्मों के कारण, जिन ब्रह्मा बाबा (दादा लेखराज) को भगवान मानती हैं, उनकी ही बेअदबी करती हैं और उसके बताए रास्ते पर न चलकर, उनका ही मुँह बंद कर देती हैं और ब्रह्मा बाबा भी मौन रहकर ठीक उसीतरह समर्थन कर देते हैं, जैसे धृतराष्ट्र ने दुर्योधन-दुःशासन का किया था। इसी कारण आज संसार में ब्रह्मा के न मंदिर हैं, न मूर्ति और न ही लोग याद करते हैं। इन्हीं कौरव संप्रदाय का मुकाबला 5 उँगलियों के मुट्ठी भर पाण्डव, 'आध्यात्मिक विश्वविद्यालय(AIVV)' के रूप में कर रहे हैं। जिस आध्यात्मिक विश्वविद्यालय के सक्रिय सहयोगियों को समाप्त करने के लिए सन 1976 से ही ब्रह्माकुमारीज़ लगातार प्रयासरत हैं, एक के बाद एक हमले कराए जा रहे हैं, सरासर कई झूठे आरोप लगाने पर भी सफलता नहीं मिली, तो मात्र लाख रुपयों से बने AIVV कम्पिला U.P. के लाखा भवन में जैसे आग ही लगवा दी। ऐसे ही AIVV दिल्ली-85 में रह रही 200-250 कन्या-माताओं के निवासस्थान को दिल्ली नगर निगम वालों के द्वारा 2-2 बार पूरा ही तुड़वाने का भरसक प्रयास किया गया, ताकि वो सभी बेघर हो जाएँ और भाग जाएँ। ऐसे ही id/age प्रूफ दिखाने के बावजूद भी 48 बालिग कन्याओं को मिडियाज़ द्वारा भी नाबालिग बताकर सरकारी तबक्कों द्वारा ही 4 माह बंधक बना लिया गया। ऐसे अनेकों अपराध हैं, जिनको भारतीय प्रजातंत्र के कानून का

काल महाकाल है, उसको कोई काल खा नहीं सकता है। वो ही एकमात्र महाकाल सबको मन्मनाभव मन्त्र से अपने बुद्धिरूपी पेट में खा जाता है; इसीलिए न उनका जन्म दिखाया है, न ही मृत्यु। वो ही हीरो आत्मा सृष्टि रंगमंच पर साकार में भी शाश्वत सत्य है, जिसको 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' कहा जाता है। जिसके अमोघवीर्य शिवलिंग स्वरूप की पूजा प्रैक्टिकल कामजीते जगत्जीत के आधार पर सबसे जास्ती की जाती है। देश-विदेश में उसकी ही लिंगमूर्ति मिली है, सिर्फ नाम अलग दे दिए हैं। हिन्दू में 'आदिदेव', क्रिश्चियन्स 'एडम', मुसलमान 'आदम' और जैनियों में 'आदिनाथ' कहा जाता है। गी. 4/1 में बताया है- "**इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।**" मैंने यह अविनाशी ज्ञान सबसे पहले सूर्य को दिया, जिसको 'विवस्वत' कहा है; क्योंकि निराकार ज्ञान की रोशनी सबसे पहले साकार को देता है, उसके द्वारा फिर समस्त संसार को मिलती है; लेकिन उस परमपिता शिव समान गुप्त पार्टधारी को कोई पहचान नहीं पाते हैं। गी. **9/11 "अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।"**

मूर्ख लोग मानवीय शरीर का आधार लेने वाले मुझ ऊँची स्थिति समान कैलाशीवासी हीरो की अवज्ञा करते हैं। वो मूर्ख प्राणियों के ईश्वर-समान रूप को नहीं पहचान पाते हैं। इन सभी तथ्यों पर गौर करेंगे और गीता के श्लोकों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से आपको यह ज्ञात होगा कि महाभारत युद्ध अभी शुरू होने वाला है और गीता-ज्ञान भी भगवान के द्वारा दिया जा रहा है। हर 5000 वर्ष में कलियुग के अंत में उसी मुकर्रर रथधारी साकार आदिदेव में प्रवेश करके गीता-ज्ञान दे रहे हैं, कलियुग का अंत करके सतयुग की स्थापना कर रहे हैं।

यह सृष्टि काल सिर्फ 5000 वर्ष का है, परन्तु साधू, संत, पंडित, संन्यासियों ने लाखों वर्ष बता दिया, ताकि उसका कोई हिसाब पूछ न सके।

यह सत्य और असत्य की लड़ाई 'ब्रह्माकुमारीज़ विश्वविद्यालय' और 'आध्यात्मिक विश्वविद्यालय' के

जामा पहनाया गया है। फिर भी AIVV युधिष्ठिर जैसा युद्ध में आदि से लेकर अंत तक स्थिर रहता है, छोड़कर भागता नहीं; क्योंकि कहा है- "जाको राखे साईंया, मार सके न कोय। बाल न बाँका कर सके, जो जग वैरी होए।।" गीता में ही बताया- **"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।" (2/16)** सत्य पाण्डवों की मुट्ठी भर शक्ति-सेना का कभी विनाश नहीं होगा और कामचलाऊ झूठी प्रजापरस्त भ्रष्टाचारी सरकार और ब्रह्माकुमारीज़ की अक्षौहिणियों सेना का अस्तित्व भी नहीं रहेगा। महाभारत युद्ध के अंत में विजय तो पांडवों की ही होती है; क्योंकि गीता 18/78 में बताया है- "**यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥" अर्थात्** जहाँ भगवान हो और अर्जुन हो, वहीं विजय निश्चित है। तो यह 5000 वर्षीय चतुर्युगी ड्रामा में कलियुगान्त की रिहर्सल चल रही है। विलियम शेक्सपियर ने भी कहा- "यह विश्व एक रंगमंच है" और सभी आत्माएँ भिन्न-2 पात्र हैं, उनका आत्मलोक से प्रवेश और प्रस्थान होता है। 4 सीन की चतुर्युगी पर सभी पार्टधारी अपना-2 पार्ट बजा रहे हैं। हम सभी एक्टर्स हैं और डायरेक्टर सदा शिव (ज्योति) परदे के पीछे है जो दिखाई नहीं देता है। वो ही गीता-ज्ञानदाता है; क्योंकि वो निराकार है, जन्म-मरण से न्यारा है; इसलिए गीता में उसको अजन्मा, अकर्ता, अभोक्ता बताया है। कृष्ण के लिए अजन्मा, अकर्ता, अभोक्ता नहीं कहेंगे; क्योंकि उनका तो जन्म भी होता है, कर्म करते दिखाया भी है, सामान्य मनुष्यों की तरह जीवन के सभी सुखों को भोगते हुए दिखाया है और गीता तो पहले निराकारवादी रचना थी, बाद में कृष्ण उपासकों ने उसमें कृष्ण का नाम डाल दिया है जो बात देशी-विदेशी विद्वानों ने भी बताई है। वो निराकार भगवान (सदाशिव ज्योति) अर्जुन के (मुकर्रर शरीर रूपी) रथ में ही आकर प्रवेश करके गीता-ज्ञान देते हैं, कोई स्थूल रथ की बात नहीं है। कठोपनिषद् में बोला है- **आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च। इन्द्रियाणि हयानाहुः 1.3.3.4**

उत्तमौजाः सौभद्रो	{उत्तम ओज वाले} **उत्तमौजा,** {रुद्र-भगिनी} **सुभद्रा का पुत्र** {अभिमन्यु}
द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः	**और द्रौपदी के** {पाँचों} **पुत्र-**{ये} **सब ही** {हाथी पर सवार जैसे} **महारथी** हैं।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम। नायका मम सैन्यस्य सञ्ज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते।। 1/7

द्विजोत्तम त्वस्माकं ये विशिष्टा	**हे द्विजन्मा ब्राह्मणों में उत्तम! फिर हमारे जो विशिष्ट** {योद्धा हैं},
तान्निबोध मम सैन्यस्य नायका	**उन्हें** {भी आप} **जान लीजिए।** {वे} **मेरी कौरव सेना के नायक** {हैं}।
तान् ते संज्ञार्थं ब्रवीमि	**उन्हें आपके परिज्ञानार्थ बताता हूँ;** {पितामह के बाद आप ही महारथी हैं।}

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः। अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च।। 1/8

भवान् च भीष्मः	**आप** {स्वयं आचार्य हैं ही} **और भीष्मपितामह**
च कर्णः	**तथा कर्ण** {जो सबसे पहले और ज़्यादा भी ज्ञान सुनता-सुनाता है और ज्ञान-सूर्य शिव रूपी सारथी की तरह पण्डा बाप का सबसे बड़ा पुत्र धर्म जैसा भी साबित हो जाता है। बाप का नाम भी अधि+रथ अर्थात् शरीर रूपी रथ का अधिष्ठाता सारथी ज्ञान-सूर्यशिव।}
च समितिंजयः	**और** {आदि ना0 की तरह सारे संसार में एकमात्र सदा युद्ध में विजयी} **समितिजय,**
कृपः च तथा एव	{कुरू-राजपरिवार में निस्वार्थ (?) सेवा वाले} **कृपाचार्य, और उसी तरह** {आपका प्रिय पुत्र}
अश्वत्थामा	{मन रूपी सर्पमणि का प्राप्तकर्ता} **अश्वत्थामा**, {दुर्योधन के सामने ही कटाक्षकर्ता और}
विकर्णश्च	{चापलूस कर्ण की भाँति दुःशासन के भी विपरीत स्वभाव वाला} **विकर्ण और**

संन्यासियों का बहुत मान-सम्मान है। {नहीं तो पूंजीपति धृतराष्ट्रों द्वारा चलाई गई ------ बेकायदे प्रजातंत्र सरकार हम अधर्मियों के हाथों से निकल जाएगी और साक्षात् भगवान द्वारा गीता-ज्ञान से सिखाए राजयोग द्वारा इतिहास प्रसिद्ध जन्म-जन्मांतर के राजाओं का राज्य जल्दी ही फिर से आ जाएगा।}

तस्य सञ्जनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः। सिंहनादं विनद्य उच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्।। 1/12

तस्य हर्षं संजनयन् कुरुवृद्धः	**उस** {दुर्योधन} **को हर्ष उत्पन्न कराते हुए, कौरवों में वयोवृद्ध** {सम्माननीय}
प्रतापवान् पितामहः उच्चैः विनद्य	**प्रतापी पितामह भीष्म ने जोर से** {लाउडस्पीकर की आवाज़ द्वारा ज्ञान-सूर्य के प्रकाश को ढकने वाले बादलों-जैसा} **गरजकर,** {हिंसा करने वाले}
सिंहनादं	{जानवरों की दुनिया में} **शेर-जैसी दहाड़ मारते हुए,** {अपने जगद्गुरु के नशे में}
शंखं दध्मौ	{भगवान सर्वव्यापी की दीर्घकालीन अज्ञानता का मुख रूपी} **शंख बजाया।**

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः। सहसा एव अभ्यहन्यन्त स शब्दः तुमुलः अभवत्।। 1/13

ततः शंखाश्च भेर्यः	**तब** {अनेक प्रकार के तुंडे-2 मतिर्भिन्ना मुखों वाले ज्ञान} **-शंख और भेरियाँ**
पणवानक च गोमुखाः	**ढोल, नगाड़े और रणसिंगा** {जैसे ज्ञान-अज्ञान के बाजे, समाचार-पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो, टी0वी0 चैनल्स आदि मीडिया, समाज और सरकार के लोगों की आवाज़ें}
सहसैवाभ्यहन्यन्त सः तुमुलः शब्दोऽभवत्	**अचानक ही होने लगीं। उनका बड़ा भारी शोरगुल होने लगा।**

ततः श्वेतैः हयैः युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ। माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः।।1/14

पाण्डव-	भगवान को जानने, मानने और आदेशानुसार चलने वाले परमात्मा पंडा/पांडु के थोड़े से पुत्र अर्थात् कलियुग-अंत के संगमयुग में मुक्ति-जीवन्मुक्तिधाम का रास्ता बताने वाले पण्डा/पांडु शिवबाबा के पुत्र पांडव। जिनमें युधि+स्थिर जैसे पांडव भी हैं जो जीते जी स्वर्ग में जाते हैं।
पार्थ-	पृथिव्याः ईश्वरः-पृथ्वी का शासनकर्ता- विश्वविजयी अर्जुन (विश्वनाथ)। {जैसेः-1/25, 2/3}
सहदेव-	सह दीव्यति, क्रीड़ती वा-जो परमात्मा के साथ ही खेलते हैं या देवसहयोगी हैं। {जैसेः-1/16}
शाश्वतं-	सदाकाल रहने वाला। {जैसेः-2/20, 18/62} {तीनों काल में सदा रहने वाला महादेव/आदम।}
वार्ष्णेय-	वृष्णि वंश से उत्पन्न अर्थात् ज्ञानियों के कुल से उत्पन्न-वृष्णि का अर्थ है-ज्ञानवर्षा करने वाला मेघ; वरुणवंशी वार्ष्णेय। {जैसेः-1/41, 3/36}
वासुदेव-	धन-सम्पत्ति दाता परमात्मा वसुदेव अर्थात् ज्ञानधन/वसु दाता शिवपुत्र महादेव। {जैसेः-7/19, 10/37}
विभुं-	वि=विशेष रूप से+भूभवनं वा-विराट रूप में, विशेष रूप से प्रगट होता है। {जैसेः-10/12}
विभूति-	विविधं भवति सृष्टिः+अनया-जिससे विशेष प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होती है। अतिमानवशक्ति, समृद्धि
व्यास	{वि+आस्}-जो जीवन में ज्ञानमंथनार्थ विशेष रूप से बैठता है। {जैसेः-18/75}
यातयामं-	गतः उपभोगकालो यस्य तं-जिसका उपभोग काल समाप्त हो चुका है। {जैसेः-17/10}
युधिष्ठिर-	युधिः+स्थिरः-धर्मयुद्ध में स्थिर रहने वाला परंब्रह्म, जो पांडवों में सबसे प्रधान हैं और धर्मराज कहे जाते हैं। {जैसेः-1/16}

आचार्य तव धीमता	**आचार्य!** {विकारी मानवनिर्मित ढेर शास्त्रों का प्राचार्य} **अपने बुद्धिमान**
शिष्येण द्रुपदपुत्रेण व्यूढां पांडुपुत्राणां	**शिष्य द्रुपदपुत्र** धृष्टद्युम्न **द्वारा व्यूहरूप में सजाई गई पाण्डु-पुत्रों की**
एतां महतीं चमूं पश्य	**इस** {थोड़े समय में निर्मित} **विशाल** {पर्वताकार} **सेना को देखिए।**
अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि। युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः।।1/4	
अत्र युधि	**यहाँ** {इस पाण्डवीय सेना में धृष्टद्युम्न ही नहीं, बल्कि} **युद्ध में** {सभी कौरवों-कीचकों में}
भीमार्जुनसमा महेष्वासा	{भयंकरकर्मी} **भीम और अर्जुन के समान महाधनुर्धारी** {गदाधारी&शस्त्रधारी},
शूरा युयुधानो	**शूरवीर** {सत्यार्थ युद्धकर्ता सत्य ना0 जैसा सदा युद्ध-इच्छा वाला सात्यकि} **युयुधान**
च विराटःच	**और** {सृष्टि-वृक्ष के द्विदलीय बीज विष्णु जैसा मत्स्यदेश का राजा} **विराट तथा**
महारथः द्रुपदः	{द्रौपदीयज्ञकुण्ड का निर्माता} **महारथी द्रुपद है।** {जैसे उसका ऊँच पद पहले ही ध्रुव हो?}
धृष्टकेतुः चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्। पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः।। 1/5	
धृष्टकेतुश्च चेकितानश्च वीर्यवान्	**धृष्टकेतु और चेकितान तथा बलवान्** {अमोघवीर्य शंकर की नगरी}
काशिराजः पुरुजित् कुन्तिभोजः	**काशी का राजा,** {अनेक नगरों का विजेता} **पुरुजित्,** {यदुवंशी} **कुन्तिभोज**
च नरपुंगवः शैब्यः	**और मनुष्यों में श्रेष्ठ** {शिव भगवान का पुत्र पुरुषोत्तम जैसे} **शैब्य** {हैं}।
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्। सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः।। 1/6	
विक्रान्त युधामन्युश्च वीर्यवान्	{युद्धकला में माननीय महापराक्रमी} **विक्रमी युधामन्यु तथा वीर्यवान**

शास्त्रों में सभी नाम काम के आधार से हैं, जैसे यहाँ कुछ व्याख्याएँ दी हैं :-	
अदिति	अदिति-न दीयते खण्ड्यते ब्रहत्वात् इत्यिदिति अर्थात् जो खंडित नहीं की जाती। 'भारतमाता' तस्याः पुत्री भारती-सरस्वती वा। कुन्ती {कुं (भूमिं देहं वा)+उनत्ति+झिच्+ङीष्} कुन्तिभोज की पुत्री।
अनन्तं:	नास्ति अंतः गुणानामस्य-जिसके गुणों का अंत नहीं है अर्थात् महादेव। {जैसेः11/37}
अर्यमन्-	अर्य्यं-श्रेष्ठं मिमीते मा+कनिन-सूर्य। {जैसेः10/29} {सदा डिटैच चैतन्य ज्ञान-सूर्य शिवज्योति}
अश्वत्थं-	न अश्वश्चिरं तिष्ठति सृष्टिवृक्ष। (बंदर जैसा) चंचल मन रूपी अश्व तो हनुमान/पीपल है। {जैसेः15/1}
भीष्म-पितामह	भीष्म का अर्थ-भयंकर, जो सर्प की भाँति भयंकर विषैला शास्त्रीय ज्ञान उगलते हों। पितामह (1/11-12)-अर्थात् कलियुग अंत के उन भयंकर बाबाओं या साधुओं को भीष्मपितामह कहेंगे, जो 'परमात्मा सर्वव्यापी' का उल्टा ज्ञान सुनाकर खास भारत और आम सारे विश्व के लोगों की बुद्धि को भटका देते हैं। हद-बेहद के कांग्रेसी कौरवों, नेताओं और पूंजीवादी धृतराष्ट्रों द्वारा परबाबा की तरह उनका बहुत सम्मान किया जाता है। प्रजा से वोट और फिर नोट भी लेना है ना!
ब्रह्म-	बृंहति वर्धते बृहं+मनिन्-जो बड़े/वृद्ध रूप में माननीय है- परमब्रह्म। {जैसेः-3/15}
देव-	दीव्यति आनंदेन क्रीडती वा अर्थात् आनंद से जो खेल खिलाता है वह-देवता। {जैसेः11/14}
धेनु-	धीयते पीयते वत्सैःधेट्+नु+इच्च-बच्चों के द्वारा जिसका (ज्ञान) दूध पिया जाता है। {जैसेः10/28}

बीच चल रही है। यही रिहर्सल का समय है। जो आत्मा अभी जैसा पार्ट बजाएगी, वो शूटिंग में वैसा ही 5000 वर्ष के ड्रामा में नूँध होगा। युद्ध की शुरूआत में युधिष्ठिर ने कहा था- इस धर्म-अधर्म के युद्ध में सभी अपना-2 मार्ग चुन सकते हैं, उसी प्रकार अभी स्वयं भगवान आकर बता रहे हैं- चाहे तो कौरवों (तथाकथित ब्रह्माकुमारीज़) के तरफ जाएँ या भगवान की छत्रछाया में पाण्डवों (आध्यात्मिक विश्वविद्यालय) के तरफ आ जाएँ; क्योंकि हर आत्मा स्वतंत्र है, जीवात्मा ही अपना मित्र है और अपना शत्रु है, अपने कल्याण और अकल्याण का फैसला स्वयं कर सकते हैं। लेकिन उस भगवान के बताए रास्ते पर पूरा चलने वाले युधिष्ठिर-जैसे पाण्डव ही स्वर्ग में जाते हैं। जो धर्मयुद्ध से पीछे नहीं हटते हैं, चाहे सारा संसार ग्लानि करे, फिर भी दीये और तूफान की लड़ाई में टक्कर लेते हैं; पर सत्य का मार्ग नहीं छोड़ते हैं, सदा स्वर्ग जाने के अधिकारी बन जाते हैं।

भविष्यवाणी

कल्कि पुराण :- स्वतंत्रता के बाद भारत में एक ऐसे महापुरुष का उदय होगा जो वैज्ञानिकों का भी वैज्ञानिक होगा। वह आत्मा और परमात्मा के रहस्य को प्रगट करेगा। आत्मज्ञान उसकी देन होगी। उसकी वेश-भूषा साधारण होगी। उसका स्वास्थ्य बालकों जैसा, योद्धाओं की तरह साहसी, अश्विनी कुमारों की तरह वीर युवा व सुन्दर, शास्त्रों का प्रकाण्ड पण्डित व मानवतावादी होगा।

एण्डरसन(अमेरिका):- अरब राष्ट्रों सहित मुस्लिम बहुल राज्यों में आपसी क्रांतियाँ और भीषण रक्तपात होंगे। इस बीच भारतवर्ष में जन्मे महापुरुष का प्रभाव व प्रतिष्ठा बढ़ेगी। यह व्यक्ति इतिहास का सर्वश्रेष्ठ मसीहा होगा। वह एक मानवीय संविधान का निर्माण करेगा, जिसमें सारे संसार की एक भाषा, एक संघीय राज्य, एक सर्वोच्च न्यायपालिका, एक झण्डे की रूप-रेखा होगी।

धृतराष्ट्र-	धृतं राष्ट्रं येन सः (सबसे बड़े-2 पूँजीपति, जिन्होंने चालाकी से गरीबों की धन-सम्पत्ति नोटों से वोटों की राजनीति द्वारा हड़प ली हो)।
द्रोणाचार्य-	कलियुग-अंतकाल के धुरंधर पण्डित-विद्वान-आचार्य, जिनका उत्पत्ति स्थान है द्रोणः=कलशः। (मिट्टी का) द्रोण+अच् अर्थात् शास्त्रीय ज्ञान रूपी देहभान की मिट्टी से बनी बुद्धि का अज्ञान कलश।
दुः+र्योधन-	5 स्टार होटलों आदि में भ्रष्टाचारी कामेन्द्रिय का दुष्ट युद्ध करने-कराने वाले कलियुगी राजनीतिक नेताएँ, जो चुनाव काल में व्यक्तिगत ग्लानि से भरे जहरीले धर्म, राज्य, जाति और भाषा भेदी निष्फल और व्यर्थ भाषणबाज़ी के बॉम्ब बरसा कर बेकायदे बनी प्रजातंत्र सरकार में अपने ऊँचे-2 तबक्कों में बैठे निरीह प्रजा का शोषण करते और कराते हैं।
गाण्डीव-	गाण्डि ग्रन्थिरस्यरस्ति-वज्र की गांठ से बना हुआ लचीली देह का पुरुषार्थ रूपी धनुष, जो सोम, वरुण और अग्नि के पास भी रहा था। भिन्न-2 धर्म-खण्डों में बटे काँटों के संसार जंगल रूप खांडववन का संहार करने के लिए इसका निर्माण हुआ था और देव-रक्षित था। {जैसेः-1/30}
हृषीकेश-	ज्ञानेन्द्रियों रूपी घोड़ों के स्वामी। {जैसेः-1/15, 2/9}
ईश्वरः-	ईश+वरच्-महादेव, कामदेव, चैतन्यात्मा। {जैसेः-4/6, 15/8} {कामविकार अंदर है।}
जनार्दन-	जनैः+अर्द्यते-याच्यते पुरुषार्थ लाभाय-परमेश्वर। {जैसेः-1/36} {अवढरदानी महादेव}
जयद्रथ-	जयत्+रथः अर्थात् जिसका विशालकाय विधर्मी-विदेशी देह रूपी रथ ही जय पाता हो। {जैसेः11/34}
कौन्तेय-	कुन्त्याः अपत्यं अर्थात् कुंती पुत्र अर्जुन। {जैसेः-1/27, 2/14} {कुं देहं (भानं) दारयति}

ग्रेरार्ड क्राईसे (हॉलैंड):- भारत देश में एक ऐसे महापुरुष का जन्म हुआ है जो विश्व कल्याण की योजनाएँ बनाएगा।

जूलबर्ण:- संसार के सबसे समर्थ व्यक्ति का अवतरण हो चुका है। वह सारी दुनिया को बदल देगा। उसकी आध्यात्मिक क्रांति सारे विश्व में छा जाएगी।..... एक ओर संघर्ष होंगे, दूसरी ओर एक नई धार्मिक क्रांति उठ खड़ी होगी जो आत्मा और परमात्मा के नए-2 रहस्य को प्रगट करेगी। .....वह महापुरुष 1962 से पूर्व जन्म ले चुका है। उसके अनुयायी एक समर्थ संस्था के रूप में प्रगट होंगे और धीरे-2 सारे विश्व में अपना प्रभाव जमा लेंगे। असंभव दिखने वाले कार्य को भी वे लोग उस महापुरुष की कृपा से बड़ी सरलता से संपन्न करेंगे।

प्रोफेसर कीरो:- भारत का अभ्युदय एक सर्वोच्च शक्ति के रूप में हो जाएगा; पर उसके लिए उसे बहुत कठोर संघर्ष करने पड़ेंगे। देखने में यह स्थिति अत्यंत कष्टदायक होगी; पर इस देश में एक फरिश्ता आएगा जो हज़ारों छोटे-2 लोगों को इकट्ठा करके उनमें इतनी आध्यात्मिक शक्ति भर देगा कि वे लोग बड़े-2 बुद्धिजीवियों की मान्यता मिथ्या सिद्ध कर देंगे।

गोपीनाथ शास्त्री:- अवतारी महापुरुष द्वारा जबरदस्त वैचारिक क्रांति होगी जिसके फलस्वरूप शिक्षण पद्धति बदल जाएगी .....वर्तमान शिक्षा प्रणाली केवल पेट भरने तक ही सीमित है। .....कथित आत्मज्ञानहीन बुद्धिजीवियों से लोगों की घृणा होगी। ....भारतवर्ष का एक ऐसा धार्मिक संगठन नेतृत्व करेगा जिसका मार्गदर्शक स्वयं भगवान् होगा। धार्मिक आश्रम जन जागृति के केंद्र बनकर कार्य करेंगे।

- और गीताएँ-ग्रंथ आदि जो बनाते हैं तो उनमें कोई एडीशन वा कटकूट नहीं करते हैं, वही सुनाते हैं। यहाँ एड भी किया जाता है, कटकूट भी किया जाता है। रोज़-2 नई-2 प्वॉइण्ट्स मिलती हैं। नॉलेज बड़ी वण्डरफुल है। (मु.ता. 4.7.72 पृ.4 आदि)

कृष्ण-	कर्षत्यरीन्-कर्षति+अरीन महाप्रभाव शक्त्या अर्थात् जो शक्ति के महाप्रभाव से विकारों रूपी शत्रुओं की खिंचाई करता है। {जैसेः-1/28, 5/1} {आत्मस्थिति वालों का आकृष्टकर्ता त्रिनेत्री महादेव}
केशव-	केशाः प्रशस्ताः सन्त्यस्य-जिसके ज्ञान के केश फैले हुए हैं अर्थात् महादेव। {जैसेः1/31}
कौरव-	(कुत्सितं रवं यस्य) कौ+रव अर्थात् कौओं की तरह कुत्सित व्यर्थ भाषणबाज़ी का सरासर झूठा शोरगुल करने वाले (कांग्रेसी), जिन्होंने धर्महीन धर्म+निः+अपेक्ष सरकार बनाकर आचार-विचार, आहार-व्यवहार का **5** स्टार होटलों में सर्वथा त्याग कर दिया और जिन्होंने अवतरित परमात्मा को जानने पर भी, मानने से साफ इन्कार कर दिया है; जैसे (रावयते लोकान्) अर्थात् लोगों को रुलाने वाले, ('पंडित सोइ जोइ गाल बजावा') वाले रावण जैसी बोल-2 की भाषणबाज़ी बहुत करते हैं।
मधुसूदन	मधु-जैसे मीठे कामविकार रूपी दैत्य को मारने वाले कामनाथ शिव, मधु/शराब, तमोगुण से पैदा हुआ दैत्य। {जैसेः-1/35, 2/1}
मंत्र-	मन्त्र्यते, गुप्तं परिभाष्यते-गुप्त बातचीत, भाषणादि। {जैसेः-9/16}
नकुल-	नास्ति कुलं यस्य-जो न पांडव कुल के हैं, न कौरव यादव कुल के, कभी इधर और कभी उधर; इन्होंने पश्चिम दिशा {विदेशियों} पर विजय पाई थी और अत्यन्त सुंदर सुडौल हृष्टपुष्ट हैं। {जैसेः1/16}
नारद-	नारं परमात्मविषयकं ज्ञान ददाति-परमात्म विषयक नार=ज्ञान देने वाला अर्थात् नारद। {जैसेः10/13}
पंड-	पंडयति संचयति-इकट्ठा करता है। ज्ञान-धन की बात है। {अजन्मा/अगर्भा होने से अखूट ज्ञान भंडारी शिव का बड़ा बच्चा महादेव जो भगवान नहीं, बड़े-ते-बड़ा देव है।}

धृतराष्ट्र उवाच-धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः। मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय।। 1/1

धृतराष्ट्र उवाच संजय	{धृत+राष्ट्र-जिसने पण्डा शिव अर्थात् पाण्डु के पाँच उगलियों में गन्य अल्पसंख्यक **5** पाण्डवों की राज्य-संपत्ति को नोटों से वोटों वाली बेकायदे प्रजातंत्र सरकार द्वारा धर लिया है, ऐसे अन्याय से एकत्रित हुए धन, पद, मान-मर्तबे और जनबल के मद में अज्ञानान्धकार में पूरे ही अंधे हुए पूंजीवादी} **धृतराष्ट्र ने कहा-** हे **संजय!** {सं+जय}
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे	{इस तमोगुणी तामसी कलियुग-अंत में चल रहे हिंदू-मुस्लिमादि ''सर्वधर्मान् परित्यज्य'' (गीता 18-66) के अनुसार ढेरों साम्प्रदायिक} **धर्मों के युद्धक्षेत्र में** {और उन धर्मों के आधार पर आडम्बरित} **कर्मकाण्डों के कर्मक्षेत्र में**, {उन मठ-पंथ-संप्रदायों के विशाल रूप में}
समवेता युयुत्सवः	**एकत्रित हुए** {बाहुबल&तामसी बुद्धि की हिंसा पर उतारु} **युद्ध के लिए उत्कंठित**
मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत	**मेरे और पाण्डु के पुत्रों** {कौरव और पाण्डवों} **ने क्या किया?**

संजय उवाच-दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनः तदा। आचार्यं उपसङ्गम्य राजा वचनं अब्रवीत्।। 1/2

व्यूढं पांडवानीकं दृष्ट्वा तु तदा	**व्यूहाकार** {व्यवस्थित और नियंत्रित} **पांडवों की सेना को देखकर तो**
राजा दुर्योधनः आचार्यं	{भ्रष्टाचारी दुष्टयुद्धकर्ता} **दुर्योधन ने** {पण्डित-विद्वान} **आचार्य द्रोण के**
उपसंगम्य वचनं अब्रवीत्	**पास जाकर** {बड़े गर्व से एक राजा की तरह अपने गुरु से यह} **वचन बोला-**

पश्य एतां पाण्डुपुत्राणां आचार्य महतीं चमूं। व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता।। 1/3

यदा प्रजहाति आत्मना आत्मनि | जब भली-भाँति त्यागता है, अपने-आप से आत्मस्थिति में {या परमात्मस्मृति में}
एव तुष्टः तदा स्थितप्रज्ञः उच्यते | ही संतुष्ट रहता है, तब स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है। {बाकी इच्छामात्रमविद्या}

* 'इच्छामात्रमविद्या' (मु.ता.10/4/68 पृ.3 अंत) (गीता-6 / 4-18-24; 4-19 इत्यादि)

दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः। वीतरागभयक्रोधः स्थितधीः मुनिः उच्यते।। 2/56

दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः सुखेषु | दुःखों में उद्वेग-{बेचैनी} से रहित मन वाला, {लौकिक} सुखों में {अनासक्त या}
विगतस्पृहः वीतरागभयक्रोधः | इच्छारहित {और पुरुषोत्तम संगमयुग में खास} राग-भय-क्रोध से रहित,
मुनिः स्थितधीः उच्यते | {साक्षात् ईश्वरीय महावाक्यों में} मननशील व्यक्ति स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

यः सर्वत्र अनभिस्नेहः तत्तत्प्राप्य शुभाशुभं। नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। 2/57

यः सर्वत्र अनभिस्नेहः तत्-2 | जो {सिवा परमपिता+परमात्मा के} सब ओर से पूरा स्नेहरहित हुआ, उन-2
शुभाशुभं प्राप्य न अभिनन्दति न | शुभ या अशुभ को पाकर {साक्षीदृष्टा की भाँति} न पूरा आनंदित होता है, न
द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता | द्वेष करता है, उसकी {पारखी & निर्णयात्मक} बुद्धि दृढ़तापूर्वक स्थिर है।

यदा संहरते चायं कूर्मः अङ्गानि इव सर्वशः। इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। 2/58

च यदा अयं कूर्मः अंगानि इव | और जब यह {योगी} कछुए के अंगों की तरह {मन सहित श्रेष्ठ & भ्रष्ट दसों}
इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः सर्वशः | इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषय-भोगों {आदि} से सब ओर से {सदाकाल}
संहरते तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता | संपूर्ण खींच लेता है, {तब} उस योगी की बुद्धि दृढ़ता से स्थिर हो जाती है।

कामात् क्रोधः अभिजायते | विकारी कामना {प्रायः पूरी न होने} से क्रोध जोर से उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। 2/63

क्रोधात् सम्मोहः भवति सम्मोहात् | क्रोध से सम्पूर्ण मोह/मूढ़ता आती है, मूढ़ता {से भरपूर} जड़-जड़ीभूत बुद्धि से
स्मृतिविभ्रमः स्मृतिभ्रंशात् | स्मृति का नाश होता है, स्मृति के भ्रष्ट होने से {परख&निर्णयशक्तिरूपा}
बुद्धिनाशः बुद्धिनाशात् प्रणश्यति | बुद्धि नष्ट होती है {और} बुद्धि नष्ट होने से {अनिश्चय रूपी} मृत्यु होती है।

रागद्वेषवियुक्तैः तु विषयान् इन्द्रियैः चरन्। आत्मवश्यैः विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। 2/64

तु विधेयात्मा रागद्वेषवियुक्तैः | परंतु अनुशासित मन वाला, राग-द्वेष से विहीन {साक्षीदृष्टा राजयोगी}
आत्मवश्यैः इन्द्रियैः विषयान् | आत्मा की वशीभूत इन्द्रियों से {धर्मानुकूल हिंसाहीन समुचित} भोग
चरन् प्रसादं अधिगच्छति | भोगते हुए प्रसन्नता को प्राप्त करता है। {अर्थात् सुख ही देना है, सुख लेना है।}

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिः अस्य उपजायते। प्रसन्नचेतसो हि आशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।। 2/65

प्रसादे अस्य सर्वदुःखानां हानिरुपजायते | प्रसन्न होने पर इस{राजयोगी} के सब दुःखों का नाश हो जाता है;
हि प्रसन्नचेतसः बुद्धिः आशु पर्यवतिष्ठते | क्योंकि प्रसन्नचित्त की बुद्धि शीघ्र, अच्छे से {आत्मा में} स्थिर होती है।

नास्ति बुद्धिः अयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना। न चाभावयतः शान्तिः अशान्तस्य कुतः सुखं।। 2/66

अयुक्तस्य बुद्धिः न अस्ति च | जो योगी नहीं, उसकी बुद्धि नहीं होती और {बुद्धिमानों की बुद्धि शिव से दूर}
अयुक्तस्य भावना न चाभावयतः | भोगी व्यक्ति में भावना नहीं {होती} और {श्रद्धा-}भावनाहीन {मनुष्य} को

तस्मात् स्वबान्धवान् | इसलिए {विधर्मियों में कन्वर्टिड} अपने {ही स्वर्गीय जन्मों के} संबंधियों,
धार्तराष्ट्रान् हन्तुं वयं न अर्हाः हि स्वजनं हत्वा | {जो अभी राष्ट्र की सारी धन-संपत्ति धर बैठे हैं, ऐसे पूँजीपति} धृतराष्ट्रों के पुत्र {काँग्रेसी कौरवों} को मारना हमें योग्य नहीं; क्योंकि स्वजनों को मारकर
माधव कथं सुखिनः स्याम | हे माता पार्वती-पति! {इनके अनिश्चय की मौत में हम} कैसे सुखी होंगे?

यद्यपि एते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः। कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकं।। 1/38

यद्यपि लोभोपहतचेतसः | यद्यपि {अधर्मियों से प्राप्त हुए राज्य-धनादि के} लोभ से नष्ट हुए चित्त वाले
एते कुलक्षयकृतं दोषं च | ये लोग {विधर्मियों की हिंसा&व्यभिचार से पैदा} कुल के नाश का दोष और
मित्रद्रोहे पातकं न पश्यन्ति | मित्रों से भी द्रोह करने में पाप नहीं समझते हैं, {तो भी आधे-पूरे नास्तिकों के}

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापात् अस्मात् निवर्तितुं। कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिः जनार्दन।। 1/39

जनार्दन अस्मात् पापात् अस्माभिः | हे जनार्दन! इस {संसार में होने वाले महाविनाश के} पाप से हम
निवर्तितुं कथं न ज्ञेयं | अलग होने के लिए क्यों न विचार करें; {क्योंकि समूचे भारतीय}
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिः | कुल के भी नाश से होने वाले {त्वरित सन्नद्ध} पाप को {हम लोग} देख रहे हैं।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः। धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नं अधर्मः अभिभवति उत।। 1/40

कुलक्षये सनातनाः कुलधर्माः | कुल का नाश होने पर {परम्परागत} सनातन कुल की {अव्यभिचारी} धारणाएँ
प्रणश्यन्ति धर्मे नष्टे अधर्मः उत | नष्ट हो जाती हैं। धर्म-नाश होने पर {मुस्लिम आदि विपरीत} अधर्म भी

केशव गाण्डीवम् | हे ब्रह्मा के स्वामी {त्रिमूर्ति शिव बाबा}! गांडीव {नामक दैहिक पुरुषार्थ का} धनुष
हस्तात् स्रंसते च त्वक् एव | {बुद्धि रूपी} हाथ से गिरा जा रहा है तथा {बुखार आने जैसी} त्वचा भी
परिदह्यते च अवस्थातुं च | सब ओर से {मानों} दहक रही है और {इतना शिथिल हूँ कि} खड़े रहने में भी
न शक्नोमि मे मनः भ्रमतीव च | अशक्त हूँ। मेरा {किंकर्तव्यविमूढ़ बना} मन चकरा-सा रहा है और
विपरीतानि निमित्तानि पश्यामि | {ऐसा मोहान्धकार कि} विपरीत {फलसूचक} शकुन {मैं} देख रहा हूँ।

न च श्रेयः अनुपश्यामि हत्वा स्वजनम् आहवे।। 1/31 न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।

आहवे स्वजनं | धर्मयुद्ध में {विधर्मियों में कन्वर्ट हुए} अपने सगे-संबंधियों को {हिन्दू-मुस्लिमादि
हत्वा श्रेयश्च नानुपश्यामि | दैहिक गुरुओं में अनिश्चय की मौत} मारकर कल्याण भी {मुझे} नहीं दिखाई देता,
कृष्ण विजयं न | {जिससे} हे कामादिक शत्रुओं की खिंचाई करने वाले {शिवबाबा}! {मैं} विजय नहीं
काङ्क्षे राज्यं च सुखानि च न | चाहता, राज्य और {स्वर्गीय} सुखों को भी नहीं {चाहता}।

किम् नो राज्येन गोविन्द किम् भोगैः जीवितेन वा।। 1/32
येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च। त इमेऽवस्थिताः युद्धे प्राणान् त्यक्त्वा धनानि च।। 1/33

गोविन्द नो राज्येन किं भोगैर्वा | हे इन्द्रियों के शासनकर्ता! हमको राज्य से क्या? {ऐसे ही} भोगों वा
जीवितेन किं येषामर्थे नो राज्यं | जीवन से {भी} क्या {लाभ}? {क्योंकि} जिनके लिए हमने राज्य,
भोगाश्च सुखानि कांक्षितं तेमे प्राणान् | भोगों और सुखों को {घराती समझ} चाहा है, वही ये प्राणों

कृत्स्नम् कुलं अभिभवति | **समस्त कुल को चारों ओर से** {हिंसा और व्यभिचार दोष से} **दबा लेता है।**

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः। स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः।। 1/41

कृष्ण अधर्माभिभवात् | **हे विकार रूपी असुरों को खींचने वाले** {बाबा}! {बौद्धी-क्रिश्चियनादि} **विधर्मों के फैलने से**

कुलस्त्रियः प्रदुष्यन्ति | **कुल की स्त्रियाँ** {दैहिक संग का रंग लगने से} **दूषित** {व्यभिचारी} **हो जाती हैं।**

स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय वर्णसंकरः जायते | **स्त्रियों के दूषित होने पर** {दिखावटी ज्ञान-बरसात करने वाले (LONDAN) लेन+देन वासी यादवों} **वृष्णि-वंशियों की पैदाइश** {से} **व्यभिचारी प्रजा उत्पन्न होती है।**

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च। पतन्ति पितरो हि एषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।। 1/42

संकरो कुलस्य च कुलघ्नानां नरकायैव | **वर्णसंकर प्रजा कुल की और कुलनाशकों की दुर्गति हेतु** ही {होती है}**,**

हि एषां पितरः | **जिससे इनके** {ऊँ मण्डली वाले रुद्राक्ष रूप संसारबीज पूर्वज} **पितृगण** {भी}

लुप्तपिण्डोदकक्रियाः पतन्ति | **श्रद्धाभाव की क्रिया के लुप्त होने से** {निम्नवर्गीय परिवार में} **अधोगति पाते हैं।**

दोषैः एतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः। उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः।। 1/43

कुलघ्नानां एतैः वर्णसंकरकारकैः | {धर्मपरिवर्तन के स्वभावी} **कुलनाशकों के इन वर्णसंकरकारी**

दोषैः जातिधर्माः च शाश्वताः | **दोषों से जाति-धर्म** {जैसी 'चातुर्वण्यंमया..', (4-13) परम्पराएँ} **और स्थायी**

कुलधर्माः उत्साद्यन्ते | **कुल की धारणाएँ नष्ट हो जाती हैं।** {इसीसे आज समूचा भरतवंश विनाश के कगार में है}

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन। नरकेऽनियतं वासो भवति इति अनुशुश्रुम।। 1/44

च धनानि त्यक्त्वा युद्धे अवस्थिताः | **तथा धन को त्यागकर** {धर्म-अधर्म के} **युद्ध में जमकर खड़े हुए हैं।**

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः। मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बंधिनस्तथा।। 1/34

आचार्याः पितरः पितामहाः पुत्राः च तथा एव | **द्रोणादि आचार्य, काका, बाबाएँ, पुत्र और उसी प्रकार**

मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः तथा सम्बंधिनः | **मामाएँ, श्वशुरगण, पौत्र, साले और संबंधी** {भी हैं}।

एतान् न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन। अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते।। 1/35

मधुसूदन | **हे मधु जैसे मीठे काम विकार रूपी दैत्य को मारने वाले कामहन्ता** {शिवबाबा! मुझ पर}

घ्नतः अपि महीकृते नु किं | **वार करते हुए भी** {मैं समझता हूँ कि मेरे हैं, अतः} **पृथ्वी के लिए** {तो} **क्या,**

त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः अपि | {वस्तुतः मेरे में इनके लिए ऐसा प्यार भरा है कि} **त्रिलोकी के राज्य के लिए भी**

एतान् हन्तुं न इच्छामि | **इन्हें** {अपने-2 गुरुओं में अनिश्चय की मौत} **मारना नहीं चाहता।** {है ना देहदृष्टि का कमाल?}

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्यात् जनार्दन। पापं एव आश्रयेत् अस्मान् हत्वा एतान् आततायिनः।। 1/36

जनार्दन | **हे मनुष्यों द्वारा** {दुःखों से मुक्ति के लिए} **प्रार्थनीय मुक्तेश्वर!**

धार्तराष्ट्रान् निहत्य नः का | {पूंजीवादी} **धृतराष्ट्र के पुत्रों** {कौरवों} **को मारकर** {भी} **हमें क्या**

प्रीतिः स्यात् एतान् आततायिनः | **सुख होगा? इन** {बेसमझ और बच्चाबुद्धि} **आततायियों को**

हत्वा अस्मान् पापं एव आश्रयेत् | **मारकर** {तो} **हमको पाप ही लगेगा;** {क्योंकि क्षमा बड़ों को चाहिए....}

तस्मात् न अर्हाः वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान्। स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव।। 1/37

-सुनाई बातों पर ही भारतवासियों ने दुर्गति को पाया है, अभी भी पाते जा रहे हैं। (मु.ता.**30.1.71** पृ.4 आदि)

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला। समाधौ अचला बुद्धिः तदा योगमवाप्स्यसि।। 2/53

यदा ते श्रुतिविप्रतिपन्ना बुद्धिः समाधौ | **जब तेरी *श्रुतियों से भ्रमित बुद्धि** {साक्षात्} **परमात्म-स्मृति में**

निश्चला अचला स्थास्यति | **अविचल स्थिर होगी,** {तभी आत्मा रूपी रिकॉर्ड के अंदर 84 जन्मों के}

तदा योगं अवाप्स्यसि | {चक्र-चिंतन में रहेगी}**, तब योग** {की समाधिस्थ अवस्था} **को पा लेगा।**

*{इन शास्त्र आदि पढ़ने से (आजतक भी) किसको सद्गति नहीं मिली है। मनुष्य-आत्माओं की सद्गति का ज्ञान इन शास्त्रों में नहीं है। मानवीय गीता से भी किसी की सद्गति हो नहीं सकती।} (मुरली ता.20.5.92 पृ.1 आदि)

अर्जुन उवाच-स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव। स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किं।। 2/54

केशव | **('क'+ईश) अर्थात् हे 'ब्रह्मा' रूपी** {बेसमझ} **बैल के ईश्वर** {पशुपति नाथ}**!** {अभी ब्रह्मा के चारों मुख पशु हैं।} 5वाँ ऊर्ध्वमुखी परमब्रह्म पांडवों के साथ गुप्त है।

स्थितप्रज्ञस्य समाधिस्थस्य | **स्थिर बुद्धि की,** {अर्थात् सं+अधि+स्थस्य} **पूरी गहराई में स्थिरता की**

का भाषा स्थितधीः किं | **क्या परिभाषा है? स्थिर बुद्धि वाला** {आहार-विहार, रहन-सहन आदि में} **कैसे**

प्रभाषेत किं आसीत किं व्रजेत | **बोलता है, कैसे बैठता है** {और} **कैसे चलता है?** {सारी माहिती चाहिए}

भगवानुवाच-प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्। आत्मनि एव आत्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञः तदा उच्यते।। 2/55

पार्थ मनोगतान् सर्वान् कामान् | **हे पृथ्वीपति! मन** {के संकल्पों में} **चलने वाली सभी* कामनाओं को** {मनुष्य}

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः। रसवर्जं रसः अपि अस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।2/59

निराहारस्य देहिनः विषया विनिवर्तन्ते | **विषय-भोग-त्यागी देहधारी पुरुष के भोग विशेषतः** {भले} **हटते हैं;**

रसवर्जं अस्य | {किंतु} **रस लेने की आसक्ति नहीं हटती।** {जबकि} **इस** {राजयोगी} **की**

रसः अपि परं दृष्ट्वा निवर्तते | **आसक्ति भी** {अतीन्द्रिय सुख के} **परमार्थ को देखकर हट जाती है।**

यततो हि अपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः। इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।। 2/60

हि कौन्तेय यततः विपश्चितः | **क्योंकि हे** {देह-अभिमाननाशिनी} **कुन्ती के पुत्र! प्रयत्न करते हुए बुद्धिमान्**

पुरुषस्य अपि प्रमाथीनि | **पुरुष की भी अच्छे से मथ डालने वाली** {खास कामेन्द्रिय सहित अन्य}

इन्द्रियाणि मनः प्रसभं हरन्ति | **इन्द्रियाँ** {अर्जुन-रथ के चंचल कपिध्वज की तरह} **मन को बलपूर्वक खींच लेती हैं।**

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः। वशे हि यस्य इन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। 2/61

तानि सर्वाणि संयम्य मत्परः युक्तः | **उन सब** {इन्द्रियों} **को भली-भाँति वश करके मुझ** {शिवबाबा} **में मन**

आसीत हि यस्य इन्द्रियाणि वशे | **लगा; क्योंकि जिस** {मन-बुद्धि रूप ज्योतिबिंदु आत्मा} **की इन्द्रियाँ वश में** {हैं}**,**

तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता | **उसकी बुद्धि** {मन की एकाग्रता के अभ्यास से} **दृढ़तापूर्वक स्थिर रहती है।**

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषु उपजायते। सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधः अभिजायते।। 2/62

विषयान् ध्यायतः पुंसः तेषु संगः | **विषयों का ध्यान करने वाले पुरुष को उन** {विषयों} **में आसक्ति/लगाव**

उपजायते संगात् कामः संजायते | **उत्पन्न होता है। आसक्ति से** {मन में} **कामना भी भली-भाँति पैदा होती है,**

कामात्मानः स्वर्गपरा {वे स्वार्थी सांसारिक} **कामनाओं वाले हैं,** {अपना} **'सुख पाना ही परम पुरुषार्थ है',**
भोगैश्वर्यगतिं प्रति जन्मकर्म {परमार्थरहित} **सांसारिक भोगैश्वर्य प्राप्ति हेतु जन्म-जन्मांतर के कर्म**
फलप्रदां क्रियाविशेषबहुलां **फल-प्रदायी विशेष** {स्वाहा-2 जैसे} **क्रियाकाण्डादि की बहुत बातें** {कहते हैं}।
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तया अपहृतचेतसां। व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।। 2/44

तया अपहृतचेतसां भोगैश्वर्य- **उस** {मीठी वाणी} **से खिंचे चित्त वालों** {और दैहिक-भौतिक} **भोगैश्वर्य में**
प्रसक्तानां व्यवसायात्मिका **आसक्तजनों की** {ऐसी दिखावटी और झूठी परम्पराओं में} **निश्चयात्मक**
बुद्धिः समाधौ विधीयते न **बुद्धि,** {आत्मा के 84 चक्र की सम्पूर्ण गहराई रूप} **समाधि में स्थित नहीं होती।**
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।। 2/45

अर्जुन वेदा त्रैगुण्यविषया **हे अर्जुन! वेद 3 गुणों के विषय वाले हैं।** {अर्थात् रजो & तमोगुणी भी हैं। तू यहाँ}
निस्त्रैगुण्यः नित्यसत्त्वस्थः **3 गुणों से परे, सदा** {16 कलाओं से भी अतीत} **सत्वगुण में स्थिर रहने वाला,**
निर्द्वन्द्वः निर्योगक्षेम {सुख-दुखादि} **द्वन्द्वमुक्त, प्राप्ति वा सुरक्षारहित बन;** {क्योंकि 'योगक्षेमं वहाम्यहम्'}
आत्मवान् भव {गीता 9-22, अतः देहभान छोड़ सदाकाल} **आत्मस्थिति वाला बन जा।**
यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके। तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।। 2/46

सर्वतः सम्प्लुतोदके यावान् अर्थ **चारों ओर से सम्पूर्ण भरपूर** {ज्ञान-मान} **सरोवर मिले तो जितना प्रयोजन**
उदपाने तावान् विजानतः {छोटे-मोटे} **पोखरों में हो, उतना** {ही} **विशेष** {एडवांस ज्ञानसागर के} **ज्ञानी**

घी के माल बेचकर भी खुद ही खा जाते हैं। इसलिए इस गरीबों के जगत में पूरब के जगन्नाथ का भोग खाना है।}
इसीलिए मुरली ता. 26/6/70 में बोला – "सभी से फर्स्टक्लास शुद्ध खाना है- दाल(या कढ़ी), चावल, आलू।"

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते। तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलं।। 2/50

बुद्धियुक्तो इह उभे सुकृतदुष्कृते **बुद्धियोगी इस** {लोक} **में दोनों प्रकार के अच्छे** & **बुरे कर्म** {जैसे}
जहाति कर्मसु कौशलं {रिश्वत, चोरी-चकारी, हिंसा आदि भी} **छोड़ देता है। कर्मों में कुशलता** {ही}
योगः तस्मात् योगाय युज्यस्व **योग है। अतः** {क्षेत्ररूप मुकर्रर रथ & क्षेत्रज्ञ शिवज्योति के} **योग में जुट जा।**
कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः। जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्ति अनामयं।। 2/51

हि बुद्धियुक्ता मनीषिणः कर्मजं **क्योंकि** {शिवबाबा से} **बुद्धि लगाने वाले ज्ञानीजन कर्म से उत्पन्न हुए**
फलं त्यक्त्वा जन्मबंधविनिर्मुक्ताः **फल को त्यागकर, जन्म-मरणादिक बंधनों से विशेष रूप से मुक्त हुए,**
अनामयं पदं गच्छन्ति **पापरहित** {अतीन्द्रिय सुख के विष्णुलोकीय} **परमपद को प्राप्त करते हैं।**
यदा ते मोहकलिलं बुद्धिः व्यतितरिष्यति। तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।। 2/52

यदा ते बुद्धिः श्रोतव्यस्य **जब तेरी बुद्धि** {मीडिया-शास्त्र-[दैहिक गुरुओं] आदि की} **सुनी-सुनाई**
श्रुतस्य च मोहकलिलं {विधर्मियों की* अंधश्रद्धायुक्त झूठी} **बातों के मोह रूप कीचड़ को**
व्यतितरिष्यति तदा निर्वेदं गन्तासि **पार करेगी, तब** {मूसलों से भस्मीभूत दुनिया के} **वैराग्य को प्राप्त होगा।**
* {द्वापरादि के ढाई हज़ार वर्षों से स्लामादि विधर्मियों में कन्वर्टिड खास भारतवासियों की बात है कि} सुनी

मधुसूदन भीष्मं च द्रोणं **हे कामहंता! भीष्म** {जैसे बाबाओं} **और** {महान प्राचार्य जैसे} **द्रोण को**
संख्येऽहमिषुभिः कथम्प्रतियोत्स्यामि {धर्म-}**युद्ध में मैं** {ज्ञान-}**बाणों से** {कटाक्षपूर्वक} **कैसे युद्ध करूँगा?**
अरिसूदन पूजार्हौ **हे अरिमर्दन कामारि!** {वे मेरे बचपन से ही सम्माननीय और} **पूजनीय हैं।**
गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपि इह लोके। हत्वार्थकामान् तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्।। 2/5

महानुभावान् गुरून् अहत्वा हि **महानुभाव गुरुओं को** {उनके धर्म में अनिश्चय की मौत} **मारने की अपेक्षा**
इह लोके भैक्ष्यं भोक्तुं अपि श्रेयो **इस लोकमें भीख माँगकर खानाभी अच्छाहै;** {क्योंकि मान-मर्तबा लोलुप&}
अर्थकामान् गुरून् हत्वा तु इह **धन के इच्छुक गुरुओं को** {स्वधारणायुक्त जीवनशैली से} **मारकर तो यहाँ**
रुधिरप्रदिग्धान् भोगान् एव भुंजीय {विकल्पों के} **खून से सने** {आत्मग्लानि वाले} **भोगों को ही भोगूँगा।**
न चैतद्विद्मः कतरत् नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः। यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः।। 2/6

च नो कतरत् गरीयः वा यत् जयेम **और हमारे लिए क्या श्रेष्ठ है? अथवा कि हम** {धर्मयुद्ध में} **जीतेंगे**
वा यदि नो जयेयुः एतत् न विद्मः **अथवा यदि** {वे} **हमें जीतेंगे- यह** {भविष्यफल भी हम} **नहीं जानते।**
यान् हत्वा न जिजीविषामः एव **जिन्हें मारकर** {हम} **जीना ही नहीं चाहते,** {मनसा संकल्पों के मूल खून वाले}
ते धार्तराष्ट्राः प्रमुखेव अवस्थिताः **वे** {पूंजीवादी संबंधीजन} **धृतराष्ट्र-पुत्र** {कौरव} **सामने ही खड़े हैं।**
कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नं।। 2/7

जनार्दन **हे लोगों की याचनार्थ अवढरदानी शिवबाबा!** {धर्म से विचलित और}
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां **नष्ट हुए कुलधर्म वाले मनुष्यों का** {संगमी शूटिंग-प्रमाण चतुर्युगी में}
अनियतं नरके वासो भवति इत्यनुशुश्रुम **अनिश्चितकाल तक नरक में वास होता है, ऐसा {हमने} सुना है।**
अहो बत महत् पापं कर्तुं व्यवसिता वयं। यत् राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनं उद्यताः।। 1/45

अहो बत वयं महत्पापं कर्तुं व्यवसिताः **अरेरे! हम** {विशाल हत्या का} **भारी पाप करने के लिए तैयार हो गए हैं,**
यद्राज्यसुखलोभेन स्वजनं **जो राज्य-सुख के लोभ से अपने** {ही सगे-संबंधी} **जनों को**
हन्तुं उद्यताः {अपने-2 श्रद्धेयों में धर्म की धारणाओं में अनिश्चय की मौत} **मारने के लिए तैयार हो गए हैं।**
यदि मामप्रतीकारं अशस्त्रं शस्त्रपाणयः। धार्तराष्ट्रा रणे हन्युः तत् मे क्षेमतरं भवेत्।। 1/46

यदि अप्रतीकारं अशस्त्रं मां **यदि बदला न लेने वाले** {ज्ञान}**-शस्त्र रहित,** {कोई प्रतिवाद न करने वाले} **मुझको,**
शस्त्रपाणयः **हाथ में** {विदेशियों से प्रभावित अधर्म के} **हथियार लिए हुए,** {छलछिद्र से बने}
धार्तराष्ट्रा **पूंजीपतियों के पुत्र** {रूप कांग्रेसी कौरव, दीर्घकालीन राज्य-जाति-भाषादि की सिविलवार से पैदा}
रणे हन्युः {हिन्दू-मुस्लिमादि के सन्नद्ध धर्म-}**युद्ध में,** {साक्षात् ईश्वरीय गीता-ज्ञानदाता परमपिता & धर्म में अनिश्चय की मौत या तो दैहिक मौत से हिंसा करके भी} **मार डालें,**
तत् मे क्षेमतरं भवेत् **वह मेरे लिए विशेष कल्याणकारी होगा।** {ऐसे देह और दैहिक संबंधों के भान में स्थिर हो},
संजय उवाच-एवमुक्त्वा अर्जुनः सङ्ख्ये रथोपस्थ उपाविशत्। विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः।। 1/47

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः | {पापपूर्ण कलियुगी मन-बुद्धि की} दीनता के दोष से विकृत स्वभाव वाला,
धर्मसम्मूढचेताः त्वां पृच्छामि | धर्म की बातों में महामूर्ख {मैं} आप {त्रिकालदर्शी भगवान से} पूछता हूँ।
यच्छ्रेयः निश्चितं स्यात्तन्मे ब्रूहि | जो भलाई की {सद्धर्मानुकूल ऐसी} निश्चित् बात हो, वह मुझे बताएँ।
अहं ते शिष्यः त्वां प्रपन्नं मां शाधि | मैं आपका शिष्य हूँ, {हर प्रकार से} आपकी शरण में हूँ। मुझे शिक्षा दीजिए।
न हि प्रपश्यामि मम अपनुद्यात् यत् शोकं उच्छोषणं इन्द्रियाणां। अवाप्य भूमौ असपत्नं ऋद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यं।। 2/8

हि भूमौ असपत्नं ऋद्धं राज्यं च सुराणां | क्योंकि पृथ्वी पर शत्रुविहीन ऐश्वर्यवान राज्य और देवों का
आधिपत्यं अवाप्य अपि यत् इन्द्रियाणां | स्वामित्व पा करके भी, {आप सर्वशक्तिवान के सिवा} जो इन्द्रियों को
उच्छोषणं मम शोकं अपनुद्यात् न प्रपश्यामि | सुखाने वाले मेरे शोक को दूर करे, {वैसा मैं} नहीं देखता।
संजय उवाच-एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप। न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह।। 2/9

परंतप गुडाकेशः हृषीकेशं गोविन्दं | शत्रुतापक, निद्राजीत अर्जुन जितेन्द्रिय {ह्रूमन गौवेत्ता} गोविन्द से
एवम् उक्त्वा 'न योत्स्य इति' | ऐसा कहकर '{मैं गुरुजनों&साथियों से} युद्ध नहीं करूँगा'- इतना
ह उक्त्वा तूष्णीं बभूव | स्पष्ट कहकर {अभी-2 दुःख&संशयहर्ता को मानके भी, ना करके} चुप हो गया।
तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत। सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तं इदं वचः।। 2/10

भारत उभयोः सेनयोः मध्ये | हे भरतवंशी राजा! {यादव सेना-साथी कौरवों&पाण्डवों} दोनों सेनाओं के बीच में
विषीदन्तं तं हृषीकेशः | शोकाकुल उस {अकेले मायूस हुए अर्जुन} से इंद्रियजित {अमोघवीर्य} शिवबाबा

एवं उक्त्वा शोकसंविग्नमानसः | ऐसा कहकर, शोक से व्याकुल हुए चित्त वाला, {मन-बुद्धि से भ्रमित हुआ,}
अर्जुनः संख्ये सशरं | {अपनी आत्मज्योति भूला हुआ} अर्जुन धर्मयुद्ध-भूमि में {ज्ञान}-बाणों सहित,
चापं विसृज्य | {इन्द्रियों के दैहिक पुरुषार्थ रूपी} धनुष को छोड़कर, {बुद्धि की थैली में ज्ञानबाणों को भूल,}
रथोपस्थ उपाविशत् | {शरीर रूपी} रथ के ऊपर {माया से पूरा ही पस्त हुआ, हिम्मत हारकर} बैठ गया।
संजय उवाच-तं तथा कृपया आविष्टं अश्रुपूर्णाकुलेक्षणं। विषीदन्तं इदं वाक्यं उवाच मधुसूदनः।। 2/1

मधुसूदनः तथा कृपयाविष्टं | मधु जैसे मीठे काम के हन्ता {शिवबाबा ने} इस प्रकार करुणा से भरे हुए,
अश्रुपूर्णाकुलेक्षणं | अश्रुपूर्ण व्याकुल नेत्रों वाले {और देह के सम्बन्धियों की याद में}
विषीदन्तं तं इदं वाक्यमुवाच | विषाद करते हुए उस {अर्जुन} को {समझाते हुए} यह वचन बोले।
भगवानुवाच-कुतस्त्वा कश्मलं इदं विषमे समुपस्थितं। अनार्यजुष्टं अस्वर्ग्यं अकीर्तिकरं अर्जुन।। 2/2

अर्जुन विषमे अनार्यजुष्टं अस्वर्ग्यं इदं | हे अर्जुन! असमय में अनायसेवित, स्वर्ग में न ले जाने वाली यह
अकीर्तिकरं कश्मलं त्वा कुतः समुपस्थितं | अपकीर्तिकारक मलिनता, {क्षत्रिय होते हुए भी} तुझे कहाँ से आ गई?
क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वयि उपपद्यते। क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ परन्तप।। 2/3

पार्थ क्लैब्यं मा स्म गमः एतत् त्वयि उपपद्यते | हे पृथ्वीराज! नपुंसक मत बनो। ये तुम्हारे {कुल के} योग्य
न परंतप क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ | नहीं है। हे शत्रुतापक! क्षुद्र हृदय की दुर्बलता छोड़कर उठो।
अर्जुन उवाच-कथं भीष्मं अहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन। इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हौ अरिसूदन।। 2/4

अभिहिता तु योगे इमां शृणु | कही गई है और {अब} कर्मयोग में इस {मत} को {मेरे से} सुन।
यया बुद्ध्या युक्तः कर्मबन्धं प्रहास्यसि | जिस {श्रेष्ठतम} मत से युक्त हुआ {तू} कर्मों के बंधन को नष्ट कर देगा।
न इह अभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते। स्वल्पमपि अस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।। 2/40

इह अभिक्रमनाशः न अस्ति प्रत्यवायः | इस {योग} में पुरुषार्थ का {पुनर्जन्म में} नाश नहीं होता, उल्टा फल {भी}
न विद्यते अस्य धर्मस्य स्वल्पं अपि | नहीं होता। इस {योग की} धारणा का अल्पांश भी {जन्म-जन्मान्तर में भी}
महतः भयात् त्रायते | महान भय से रक्षण करता है। {योग-ऊर्जा से ही सारे काम होते हैं।}
व्यवसायात्मिका बुद्धिः एका इह कुरुनन्दन। बहुशाखा हि अनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनां।। 2/41

कुरुनन्दन इह व्यवसायात्मिका | हे कुरुवंश के प्रह्लाद! इस {योग} में निश्चयात्मक {ज्ञान 1 से आता है; अतः}
बुद्धिः एका च अव्यवसायिनां | {श्री}मत् 1 {शिवबाबा की} ही {है}, जबकि {धर्मनिरपेक्ष} अनिश्चयी लोगों की
बुद्धयः हि बहुशाखा अनन्ताः | मतें निश्चय ही अनेक {सांप्रदायिक} शाखाओं की असंख्य हैं।
यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्ति अविपश्चितः। वेदवादरताः पार्थ नान्यत् अस्ति इति वादिनः।। 2/42

पार्थ वेदवादरताः अन्यत् नास्ति | हे पार्थ! वेदवाद में लिप्त रहने {सिवाय} दूसरा {मार्ग} नहीं-(गी.2-45)
इति वादिनः अविपश्चितः यां इमां | ऐसा कहने वाले {मंदिर-मूर्ति-पूजाहीन ब्रह्मानुगामी} अविवेकीजन हैं, जो ये
पुष्पितां वाचं प्रवदन्ति | फली-फूली मीठी-2 वाणी बोलते हैं। {पश्चिम के श्रीनाथ में मालपूए खाने वाले हैं।}
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदां। क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।। 2/43

ब्राह्मणस्य सर्वेषु वेदेषु | ब्राह्मण का सभी {ब्रह्मामुखनिसृत} वेदवाक्यों {जैसी मुरलियों} में होता है।
कर्मण्येवाधिकारः ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुः भूर्मा ते सङ्गोऽस्तु अकर्मणि।। 2/47

ते कर्मणि एव अधिकारः फलेषु कदाचन | तेरा {श्रीमदनुसार} कर्मयोग में ही अधिकार है, फल में कभी {भी}
मा कर्मफलहेतुः मा भूः | नहीं; {इसलिए} कर्मफल का कारण मत बनो। {गी. 3-19 से 30 अतः}
ते अकर्मणि संगः मा अस्तु | तुम्हारी कर्मत्याग में {भी} आसक्ति न हो। {कर्मयोगी ही बनना है।}
योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय। सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। 2/48

धनंजय | हे {सच्चीगीता एडवांस} ज्ञानधनजेता {धनं+जयति} अर्जुन!
संगं त्यक्त्वा योगस्थः | {दैहिक पदार्थों & सम्बन्धियों की} आसक्ति को त्यागकर, योगारूढ़ हुआ,
सिद्ध्यसिद्ध्योः समः भूत्वा | सफलता वा असफलता में समान होकर, {कर्मफल से निःसंकल्प हो}
कर्माणि कुरु समत्वं योगः उच्यते | कर्मों को कर। {हर प्रकार के द्वंदों में} समत्व {ही} योग कहा जाता है।
दूरेण हि अवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय। बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।। 2/49

धनंजय बुद्धियोगात् हि कर्म | हे ज्ञानधनजेता {अर्जुन! 1 ऊँच-ते-ऊँच में} बुद्धियोग लगाने सिवा केवल कर्म करना
दूरेण अवरं बुद्धौ शरणं | अत्यन्त नीचा है। बुद्धिमान {लोगों की भी बुद्धि 'त्रिनेत्री शिवबाबा'} की शरण
अन्विच्छ फलहेतवः कृपणाः | ले। कर्मफल के इच्छुक कंजूस* हैं, {विश्व-कल्याणार्थ कुछ नहीं देते।}

*{कंजूस} {पश्चिमी सभ्यता के प्रतीक श्रीनाथ की भाँति लोक-कल्याण लिए कुछ भी त्यागना नहीं चाहते, सारे

तत्र का परिदेवना	उसमें क्या शोक करना? {किंतु पु. संगम में 100% आत्मस्थ हो जाने से}

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चित् एनं आश्चर्यवत् वदति तथैव चान्यः। आश्चर्यवत् चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥ 2/29

एनं कश्चित् आश्चर्यवत् वदति चान्यः	इस {हीरो}* को कोई {नं. वार जानकार} आश्चर्य से बताता है और दूसरा
तथैव आश्चर्यवत् पश्यति च अन्यः	वैसे ही आश्चर्य से देखता है और दूसरा {कोई कुछ-न-कुछ जानकर}
एनं आश्चर्यवत् शृणोति च कश्चित्	इसको आश्चर्य से सुनता है और कोई {अनास्थावान नास्तिक तो}
श्रुत्वा अपि एनम् न वेद	सुनकर भी इसे नहीं जान पाता। {इसीलिए संसार में नं. वार सुख भोगी हैं।}

*{शंकर क्या करते हैं? उनका पार्ट ऐसा वण्डरफुल है जो तुम विश्वास कर न सको।}(मु.ता.14.5.70)

देही नित्यं अवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत। तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥ 2/30

भारत अयं देही सर्वस्य देहे	हे अर्जुन! यह {सृष्टि-बीज} परम+आत्मा सबके शरीरों में {पु. संगम के
नित्यं अवध्यः तस्मात् त्वं	नं. वार पुरुषार्थ से प्राप्त ऊर्जारूप होने से} सदा अवध्य है। इसलिए तू
सर्वाणि भूतानि शोचितुं न अर्हसि	{इस सृष्टिमंच के} सभी प्राणियों का शोक करने के लिए योग्य नहीं है।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि। धर्म्यात् हि युद्धात् श्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते॥ 2/31

च स्वधर्मं अपि अवेक्ष्य विकम्पितुं	इसके अलावा {हर} आत्मा के धर्म को भी देखकर {तू} विचलित होने
न अर्हसि हि धर्म्यात् युद्धात्	योग्य नहीं है; क्योंकि {4 वर्णों में विशेष रूप से} धर्मयुद्ध के सिवाय
क्षत्रियस्य अन्यत् श्रेयः न विद्यते	क्षत्रिय के लिए {राजयोग से मिले राज्य सुख सिवा कोई} दूसरा कल्याण नहीं है।

बहुमतो भूत्वा लाघवम्यास्यसि	बहुत मान है, {वे ही भारतीय सनातनी लोग तुझको} तुच्छ समझेंगे।

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः। निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किं॥ 2/36

च तव अहिताः तव सामर्थ्यं	और तेरे {ढाई हज़ार वर्षों से निरंतर कन्वर्टिड} विरोधी तेरे सामर्थ्य की
निन्दन्तः बहून् अवाच्यवादान्	निंदा करके बहुत-सी {गन्दी&असहनीय ग्लानि भरी} अनकहनी बातें
वदिष्यन्ति ततः दुःखतरं नु किं	बोलेंगे, उससे बढ़कर {सांसारियों से मुँह छुपाने जैसा} और क्या दुःख होगा?

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीं। तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥ 2/37

कौन्तेय वा हतः स्वर्गं प्राप्स्यसि	हे कुन्तीपुत्र! या {हौसले से लड़ते-2} मौत पाई {तो} स्वर्ग को पाएगा
वा जित्वा महीं भोक्ष्यसे तस्मात्	अथवा जीतकर {अद्वैतवादी स्वर्गीय} धरणी को भोगेगा; इसलिए
युद्धाय कृतनिश्चयः उत्तिष्ठ	युद्धार्थ निश्चय कर उठ खड़ा हो। {विश्वविजय तेरा ही जन्मसिद्ध अधिकार है।}

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापं अवाप्स्यसि॥ 2/38

सुखदुःखे लाभालाभौ जयाजयौ	सुख-दुःख को, लाभ-हानि को {और} जय-पराजय {रूप इन सभी द्वंदों} को
समे कृत्वा ततः युद्धाय युज्यस्व	समान {मान} करके, {स्वयं स्थिर हो} बाद में {धर्म-}युद्ध के लिए तैयार हो जा।
एवं पापं न अवाप्स्यसि	इस तरह {देहधारियों के बेलगाव से (गी.18-17)} पाप नहीं लगेगा।

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे तु इमां शृणु। बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥2/39

पार्थ एषा बुद्धिः ते सांख्ये	हे अर्जुन! यह मत तेरे {ही आदिरूप कपिलमुनि के} सांख्यशास्त्र में

विनाशं कर्तुं कश्चित् न अर्हति	विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है। {कल्पांत में भी अकालमूर्त है।}

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः। अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्मात् युध्यस्व भारत॥ 2/18

नित्यस्य अनाशिनः अप्रमेयस्य	{ऐसे तो} नित्य, अविनाशी, माप न करने योग्य {अणुरूप अतिसूक्ष्म अन्य सभी}
शरीरिणः इमे देहाः अन्तवन्तः	देहधारी आत्माओं के ये शरीर {चतुर्युगी के जन्म-जन्मान्तर में भी} नाशवान्
उक्ताः तस्मात् भारत युध्यस्व	कहे हैं, अतः हे भरतवंशी! {धर्म-}युद्ध कर। {क्योंकि सत्य सनातन धर्म और उसका स्थापक इस पुरु. संगमयुग में सदासत, कालों का काल अकालमूर्त महादेव ही है।}

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतं। उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥ 2/19

य एनं हन्तारं वेत्ति च यः एनं	जो इस {आत्माओं और परमात्मा} को मारने वाला समझता है और जो इसे
हतं मन्यते तो उभौ न विजानीतः	मरा हुआ मानता है, वे दोनों {ही ठीक} नहीं जानते। {वो बीज ऑलराउंडर है।}
अयं न हन्ति न हन्यते	यह {आत्मा कल्पांत में भी} न {किसी को} मारता है {और} न मारा जाता है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः। अजः नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ 2/20

अयं कदाचिन्न जायते वा न म्रियते	यह कभी न जन्मता है और न मरता है, {हाँ सहज-2 देहरूप वस्त्र उतारता है}
वा भूत्वा भूयः न भविता	अथवा होकर फिर से {सृष्टि रंगमंच पर} नहीं होगा- {ऐसे भी नहीं है}।
अजः नित्यः शाश्वतः पुराणोऽयं	अजन्मा, नित्य, सनातन, {कल्प पूर्व का सदा स्थायी} पुरातन यह
शरीरे हन्यमाने न हन्यते	{हीरो पार्टधारी}, देह हनन होने पर {भी} नहीं मारा जाता।

प्रहसन् इव इदं वचः उवाच	प्रसन्न होते हुए के समान {उसका उमंग-उत्साह बढ़ाने लिए} यह वचन कहने लगे।

भगवानुवाच-अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे। गतासूनगतासूनंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥ 2/11

त्वं अशोच्यान् अन्वशोचः च	तू अशोचनीय {विनाशी दैहिक संबंधों का} शोक कर रहा है तथा
प्रज्ञावादान् भाषसे पण्डिताः	ज्ञानियों-जैसे वचन बोलता है। विद्वानलोग {देहधारियों के अनिश्चय में}
गतासूंश्च अगतासून् नानुशोचन्ति	मरने और {उनके आधार पर निश्चय में} जीने का शोक नहीं करते।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः। न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परं॥ 2/12

अहं जातु न आसं न एव त्वं न	मैं {आत्मज्योति शिव} कोई भी समय न था- {ऐसा} नहीं है, उसी तरह तू नहीं
इमे जनाधिपाः न च अतः परं	{था अथवा} ये नेतागण नहीं {थे} और अब बाद में {बेहद ड्रामा के चेतनात्म-स्टारूप}
वयं सर्वे न भविष्यामः न	हम सब नहीं होंगे- {ऐसा भी} नहीं {है। सभी आत्माएँ अविनाशी हैं, देह विनाशी है}।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा। तथा देहान्तरप्राप्तिः धीरस्तत्र न मुह्यति॥ 2/13

यथादेहिनोऽस्मिन्देहे कौमारं यौवनं	जैसे आत्मा की इस देह में {उत्तरोत्तर} कुमार, युवावस्था {और}
जरा तथा	बुढ़ापा है, वैसे ही {चतुर्युगी में दैहिक दसों इन्द्रियों के विनाशी सुख भोगने से}
देहांतरप्राप्तिः	दूसरे-2 {उत्तरोत्तर सत-रज-तामसी क्षीणायु} शरीरों की प्राप्ति होती है।
धीरः तत्र न मुह्यति	धैर्यवान् {आत्मस्थ ब्रह्मावत्स ब्राह्मण} उस विषय में मोह नहीं करते।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः। आगमापायिनोऽनित्याः तान् तितिक्षस्व भारत॥ 2/14

कौन्तेय मात्रास्पर्शाः तु शीतोष्ण- | **हे कुंती-पुत्र!** {कर्म-}**इन्द्रियों के विषय तो** {घड़ी-2 परिवर्तनशील,} **सर्दी-गर्मी,**

सुखदुःखदाः आगमापायिनः | **सुख-दुःख-दाता हैं, आने-जाने वाले हैं** {और स्वर्गीय सुखों की भेंट में}

अनित्याः भारत तान् तितिक्षस्व | **अनित्य हैं। हे भरतवंशी! उनको** {तू अपनी तिकड़म बिना} **सहन कर।**

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ। समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।। 2/15

पुरुषर्षभ समदुःखसुखं | **हे आत्मारूप पार्टधारियों में सर्वश्रेष्ठ! दुःख-सुख में समान** {स्थिति में रहने वाले}

यं धीरं पुरुषमेते न व्यथयन्ति | **जिस धैर्यवान पुरुष को ये** {विषय-भोग कर्म करते भी} **व्यथित नहीं करते,**

सः हि अमृतत्वाय कल्पते | **वह** {आत्मज्योति में एकाग्र व्यक्ति} **अवश्य ही अमरत्व के लिए योग्य बनता है।**

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टः अंतः तु अनयोः तत्त्वदर्शिभिः।। 2/16

असतः भावः न विद्यते तु सतः | **असत का अस्तित्व नहीं होता एवं** {कोई भी} **सत्य का** {कल्पांत में भी}

अभावः न विद्यते | **अभाव नहीं होता।** {जैसे सृष्टि-बीज/महादेव/आदम सदाकाल है & रहेगा।}

अनयोरुभयोरप्यन्तः तत्त्वदर्शिभिर्दृष्टः | **इन** {सदसत} **दोनों का भी निर्णय तत्वज्ञानियों द्वारा देखा गया है।**

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततं। विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।। 2/17

येन इदं सर्वं ततं | **जिस** {मानव-बीज महादेव} **द्वारा यह सारा** {अश्वत्थ नाम का सृष्टि-वृक्ष} **फैला है,**

तत्त्वविनाशि विद्धि अस्याव्ययस्य | **उसको तो अविनाशी जान। इस अविनाशी** {जगत्पिता स्वरूप बीज} **का**

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययं। कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कं।। 2/21

पार्थ य एनं नित्यं अजं अव्ययं | **हे पृथ्वीपति! जो इस** {अणुरूप आत्मा} **को नित्य, जन्मरहित, अक्षय**

अविनाशिनं वेद स पुरुषः | {और} **अविनाशी जानता है, वह** {विश्वकल्याणकारी जगत्पिता परम+}**आत्मा**

कं कथं घातयति कं हन्ति | **किसको कैसे मरवाता है** {और 'वसुधैव कुटुंब' का पिता} **किसको मारता है?**

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।। 2/22

यथा नरः जीर्णानि वासांसि विहाय अपराणि | **जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे**

नवानि गृह्णाति तथा जीर्णानि शरीराणि | **नए ग्रहण करता है, उसी प्रकार पुराने शरीरों को**

विहाय देही अन्यानि नवानि संयाति | **छोड़कर** {यह} **आत्मा दूसरे नए** {शरीरों} **को ग्रहण करती है।**

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्ति आपः न शोषयति मारुतः।। 2/23

एनं शस्त्राणि न छिन्दन्ति एनं पावकः | **इस** {आत्मा} **को शस्त्र नहीं काटते, इसको** {जड़त्वमयी} **अग्नि**

न दहति एनं मारुतः न शोषयति च | **नहीं जलाती, इसको** {अदर्शनीय} **हवा भी नहीं सुखाती और**

आपः न क्लेदयन्ति | **पानी नहीं भिगोता।** {प्रत्येक चतुर्युगी पूर्व महाविनाश की भी यही बात है।}

अच्छेद्यः अयं अदाह्यः अयं अक्लेद्यः अशोष्यः एव च। नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। 2/24

अयं अच्छेद्यो अयं अदाह्यः अक्लेद्यः | **यह** {आत्मज्योतिरूप} **अकाट्य है और जलता नहीं, न भीगता**

चैव अशोष्यः अयं नित्यः स्थाणुः | **और निस्संदेह सूखता नहीं। यह नित्य** {अविनाशी} **है, स्थितशील है।**

सर्वगतः सनातनः अचलः | {मन-बुद्धि रूप ज्योति होने से} **सर्वगामी है, सनातन** {और} **अचल है।**

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते। तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुं अर्हसि।। 2/25

अयं अव्यक्तः अयं अचिन्त्यः अयं | **यह अव्यक्त है। यह अचिन्त्य है। यह** {विनाशी पंचभूतों की विस्मृति में रहने से}

अविकार्यः उच्यते तस्मात् एनं एवं | **निर्विकारी बताई जाती है। इसलिए इसको ऐसा** {पञ्चभूतों से पृथक्}

विदित्वा अनुशोचितुं न अर्हसि | **जानकर** {भी तू} **शोक करने के योग्य नहीं है;** {क्योंकि आत्मा सुखरूप है।}

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतं। तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि।। 2/26

अथ च एनं नित्यजातं वा नित्यं मृतं मन्यसे | **और यदि इसे सदा जन्मने वाला अथवा नित्य मरने वाला मानता है,**

तथापि महाबाहो त्वमैवं शोचितुं नार्हसि | **तो भी हे दीर्घबाहु! तू इस तरह शोक करने योग्य नहीं है;**

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।। 2/27

हि जातस्य मृत्युः ध्रुवः च मृतस्य | **क्योंकि जन्मने वाले की मृत्यु निश्चित है और** {देह द्वारा} **मरने वाले का**

जन्म ध्रुवं तस्मादपरिहार्ये अर्थे | **जन्म निश्चित है;** {दैहिक स्मृति है तो जन्म-मृत्यु भी रहेगी}। **अतः न टलने योग्य बात में**

त्वं शोचितुं अर्हसि न | **तू शोक करने के योग्य नहीं है।** {कल्प-2 जन्ममृत्यु की हूबहू पुनरावृत्ति होती है।}

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।। 2/28

भारत भूतानि आदीनि अव्यक्तः | **हे भरतवंशी!** {सृष्टि के आदिकाल में भी} **प्राणियों का आदि अदृश्य है।**

व्यक्तमध्यानि अव्यक्तनिधनान्येव | **मध्य** {जीवन} **व्यक्त है। मृत्यु बाद** {या कल्पान्त} **में भी अव्यक्त हैं।**

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारं अपावृतं। सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशं।। 2/32

यदृच्छया उपपन्नं च अपावृतं स्वर्गद्वारं | **अनायास प्राप्त हुए और** {सिविलवार द्वारा} **खुले हुए स्वर्ग के द्वार वाले**

ईदृशं युद्धं पार्थ सुखिनः क्षत्रियाः लभन्ते | **ऐसे** {महाभारत} **युद्ध को हे पृथ्वीपति! सुखी क्षत्रियजन** {ही} **पाते हैं।**

• {जो मायावी विकारों के युद्ध के मैदान में देह वा देहभान को छोड़ेंगे, वे स्वर्ग में आवेंगे।} (मुरली ता.6.5.67 पृ.1 अंत)

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि। ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।। 2/33

अथ चेत् त्वम् इमं धर्म्यं संग्रामं | **किन्तु यदि तू** {गेट वे टू हैविन वाला} **यह धार्मिक** {अहिंसक महाभारत} **युद्ध**

न करिष्यसि ततः स्वधर्मं च कीर्तिं | **नहीं करेगा, तो** {अल्लाह अव्वलदीन के सत्य सनातन} **स्वधर्म और कीर्ति को**

हित्वा पापं अवाप्स्यसि | **नष्ट करके** {द्वैतवादी दैत्यों के हिंसक धर्मवृद्धि के} **पाप का** {ही} **भागी बनेगा**

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययां। सम्भावितस्य चाकीर्तिः मरणादतिरिच्यते।। 2/34

च भूतानि अव्ययां ते अकीर्तिं कथयिष्यन्ति च | **और** {दुःखी-अशांत} **लोग निरंतर तेरी अपकीर्ति करेंगे और**

सम्भावितस्य अकीर्तिः मरणात् अपि अतिरिच्यते | **सम्मानित व्यक्ति के लिए अपकीर्ति मौत से भी बढ़कर है।**

{''स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः''} (गीता 3/35) {धन गया तो कुछ नहीं, धर्म गया तो सब गया।}

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः। येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवं।। 2/35

महारथाः त्वां भयात् रणात् | **महारथी तुझको** {क्षत्रिय योद्धा होते हुए भी विरोधियों के} **भय से** {धर्म-}**युद्ध से**

उपरतं मंस्यन्ते येषां त्वं | **विमुख हुआ मानेंगे। जिनके** {मन में} **तेरा** {महानतम धनुर्धर होने का}

कृत्वा अपि न निबध्यते | **करके भी** {सदा आत्मस्टार की याद में रहने से कर्म-}**बँधन में नहीं पड़ता।**

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः। यज्ञाय आचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।। 4/23

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञान- | **आसक्ति-रहित, बन्धनमुक्त,** {शिव की सच्चीगीता एडवांस} **ज्ञान में**
अवस्थितचेतसः यज्ञाय | **दृढ़ बुद्धि वाला** {और तन-मन-धन की शक्ति द्वारा} **यज्ञ-सेवाभाव से**
आचरतः समग्रं कर्म प्रविलीयते | **चलने वाले के सारे** {अच्छे-बुरे} **कर्म पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं।**

ब्रह्म अर्पणं ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतं। ब्रह्म एव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।। 4/24

अर्पणं ब्रह्म ब्रह्मणा | {तन-धनादि सब-कुछ} **अर्पित हुआ परंब्रह्म है। ब्रह्मा द्वारा** {पंचम ऊर्ध्वमुखी}
ब्रह्माग्नौ हुतं हविः | **परंब्रह्म* की योगाग्नि में अर्पित हवि** {सब प्रकार की अच्छी-बुरी वस्तुएँ भी}
ब्रह्म ब्रह्मकर्मसमाधिना | **ब्रह्म हैं। ब्रह्म तत्वाग्नि में** {मनसा, वाचा या} **कर्मणा** {यज्ञसेवा} **से समाधिस्थ,**
तेन ब्रह्म एव गन्तव्यं | **उस** {ब्रह्म-ज्ञान} **से** {भरपूर इसी सृष्टि में सम्पन्न हुआ} **ब्रह्मलोक ही गंतव्य है।**

*{मूर्तिमान् रूहानी शंकर के बीजरूप पंचतत्वों की देह का अणु-2 योगबल की अखूट ऊर्जा से सोमनाथ मंदिर का लाल-2 लिंग-रूप आग का गोला बन जाता है, जिसको यहूदी लोग भी पूजते थे। बीच में हीरा, सुप्रीम बाप सदाशिव-ज्योति के समान योगबल से बनी हीरो आत्मा जगत्पिता/आदम की यादगार है।}

दैवं एव अपरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते। ब्रह्माग्नौ अपरे यज्ञं यज्ञेन एव उपजुह्वति।। 4/25

अपरे योगिनः दैवं यज्ञं एव | **दूसरे योगीजन** {ब्रह्मा-कुमारकादि भोगी} **देवों की यज्ञ-सेवा से ही** {पृथक-2}

प्राणे* अपानं जुह्वति | **प्राणवायु में अपान वायु की** {ज्ञानयोगाग्नि-कुंड में} **आहुति देते हैं,** {जबकि अन्य}
प्राणापानगती रुद्ध्वा | **प्राण-अपान, दोनों की गति को रोककर** {अर्थात् सर्वथा निस्संकल्प होकर}
प्राणायामपरायणाः | {बुद्धि रूपी कुम्भ के शक्तिकारक कुम्भक रूप} **प्राणायाम के** {ही} **आश्रय में रहते हैं।**

*यहाँ प्राणवायु रूपी शुद्ध संकल्प और अपानवायु रूपी अशुद्ध संकल्पों की बात है। अर्थात् दैहिक वायु तत्व को रोकने-छोड़ने के शारीरिक हठयोग की बात नहीं है। ऐसे प्राणायाम & दैहिक आसन तो देहभान ही बढ़ाएँगे।

अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति। सर्वे अपि एते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः।। 4/30

अपरे नियताहाराः प्राणान् | **अन्य** {उपवासादि} **नियमित आहार वाले प्राणों** {रूप शुद्ध संकल्पों} **को**
प्राणेषु जुह्वति यज्ञक्षपित- | {परमात्म-स्मृति की} **प्राणवायु में हवन करते हैं। यज्ञ-सेवाओं से क्षीण हुए**
कल्मषाः सर्वेऽप्येते यज्ञविदो | **पाप वाले← ये सब** {भिन्न-2 प्रकार के योगी} **भी** {रुद्र-}**यज्ञ के ज्ञाता हैं।**

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनं। न अयं लोकः अस्ति अयज्ञस्य कुतः अन्यः कुरुसत्तम।। 4/31

यज्ञशिष्टामृतभुजो सनातनं | {ईश्वरीय सेवा में आहुति के बाद} **यज्ञ से बचे अमृततुल्य को भोगने वाले अनादि**
ब्रह्म यान्ति कुरुसत्तम | **परंब्रह्म को जाते हैं;** {परन्तु} **हे** {भ्रष्टकर्मी} **कुरुओं में** {धर्मानुकूल} **उत्तम!**
अयज्ञस्य अयं लोकः | **यज्ञसेवाविहीन** {नास्तिकों-जैसे स्वार्थियों} **को** {तो} **यह संसार** {भी सुखदायी}
न अस्ति अन्यः कुतः | **नहीं है,** {फिर} **दूसरे** {अतीन्द्रिय सुख के विष्णु या स्वर्गलोक सुखदाई} **कैसे होंगे?**

एवं बहुविधा यज्ञा विंतता ब्रह्मणो मुखे। कर्मजान् विद्धि तान् सर्वान् एवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे।। 4/32

मता चेत् तत् केशव घोरे | **मानते हो, तो हे ब्रह्मा के स्वामी** {शिवबाबा! अघोरियों-जैसे भ्रष्ट} **घोर**
कर्मणि मां किं नियोजयसि | **कर्म में मुझे क्यों लगा रहे हो?** {अघोरियों को तो कोई नहीं चाहता।}

व्यामिश्रेण इव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे। तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयां।। 3/2

व्यामिश्रेण इव वाक्येन मे बुद्धिं | **परस्पर मिले हुए-से** {दुहरा अर्थ देने वाले ब्रह्म-}**वाक्यों से मेरी बुद्धि**
मोहयसीव तत् निश्चित्य एकं | **भ्रमित-सी कर रहे हो। तो** {कर्मयोग-बुद्धियोग में से} **निश्चय करके एक बात**
वद येन अहं श्रेयः आप्नुयां | **कहो, जिससे मैं** {भी 'निश्चयबुद्धि विजयते' बन सकूँ}**, श्रेष्ठता को प्राप्त करूँ।**

भगवानुवाच-लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनां।। 3/3

अनघ मया अस्मिन् पुरा लोके | **हे निष्पाप! मैंने इस पुराने** {कलि+सतयुग=पु. संगम की शूटिंग के} **लोक में**
द्विविधा निष्ठा प्रोक्ता ज्ञानयोगेन | **दो तरह की योगनिष्ठा/प्रणाली कही थी-** {मनन-चिंतन सहित} **ज्ञानयोग द्वारा**
सांख्यानां योगिनां कर्मयोगेन | {कपिलमुनि-जैसे} **ज्ञानियों की** {और} **कर्म सहित योग द्वारा कर्मयोगियों की।**

न कर्मणामनारम्भात् नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते। न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।। 3/4

पुरुषः कर्मणां अनारम्भात् नैष्कर्म्यं | **व्यक्ति कर्मों के आरम्भ न करने से कर्महीनता** {रूप संन्यास} **को**
न अश्नुते च संन्यसनात् एव | **नहीं पाता, वैसे ही** {समुचित & आवश्यक कर्मों के} **सम्पूर्ण त्याग से भी**
सिद्धिं न समधिगच्छति | {मुक्ति-जीवन्मुक्ति रूप} **सिद्धि संपूर्णतया नहीं प्राप्त हो सकती।**

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठति अकर्मकृत्। कार्यते हि अवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैः गुणैः।। 3/5

शांतिः न अशांतस्य सुखं कुतः | **शान्ति नहीं होती; अशांत व्यक्ति को सुख कहाँ होगा?** {नहीं हो सकता।}

इन्द्रियाणां हि चरतां यत् मनोऽनुविधीयते। तत् अस्य हरति प्रज्ञां वायुः नावमिवाम्भसि।। 2/67

यत् मनः चरतां इन्द्रियाणां | **जो मन** {भोगों में} **विचरण करती हुई** {कोई भी ज्ञान या कर्म}**-इन्द्रियों का**
अनुविधीयते तत् वायुः अम्भसि | **अनुसरण करता है, वह** {मन तीव्रगति से बहती} **वायु द्वारा पानी में**
नावं इव अस्य प्रज्ञां हरति | **नाव की तरह इस** {बेलगाम दौड़ते मनरूप अश्व की} **बुद्धि को हर लेता है।**

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः। इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।2/68

महाबाहो तस्मात् यस्य इन्द्रियाणि | **हे** {सहयोगियों रूपी} **लम्बी भुजाओं वाले! इसलिए जिसकी इन्द्रियाँ**
इन्द्रियार्थेभ्यः सर्वशः निगृहीतानि | **इन्द्रिय-भोगों से** {मनसा-वाचा-कर्मणा} **सब प्रकार से रोक ली गई हैं,**
तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता | **उस** {संयमित मन वाले राजयोगी की} **बुद्धि भली-भाँति स्थिर है।**

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।। 2/69

सर्वभूतानां या निशा तस्यां संयमी | **सभी** {मानवीय} **प्राणियों के लिए जो** {आध्यात्म} **रात्रि है, उसमें योगी**
जागर्ति यस्यां भूतानि जाग्रति | **जागता है। जिस** {भौतिकता} **में प्राणी** {स्वर्गीय दिन समझ} **जागता है,**
सा पश्यतः मुनेः निशा | **वह** {सच्चीगीता एडवांस ज्ञान में मंथनकर्ता} **मननशील मुनि के लिए रात्रि है।**

आपूर्यमाणं अचलप्रतिष्ठं समुद्रं आपः प्रविशन्ति यद्वत्। तद्वत् कामाः यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिं आप्नोति न कामकामी।। 2/70

आपूर्यमाणं अचलप्रतिष्ठं समुद्रं यद्वत् | **चारों ओर से भरपूर अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में जैसे** {और जब}

हि कश्चित् क्षणमपि अकर्मकृत् | निःसन्देह कोई भी {व्यक्ति} क्षण भर भी {अनिवार्य} कर्म किए बिना
न जातु तिष्ठति हि प्रकृतिजैः | नहीं रह पाता; क्योंकि प्रकृति से पैदा {सर्वकालीन सत-रज-तम में से 1 या 3}
गुणैः अवशः सर्वः कर्म कार्यते | गुणों के कारण, {इन्द्रियाँ हैं तो} बरबस ही सबको कर्म करने पड़ते हैं।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्। इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।। 3/6

यः विमूढात्मा कर्मेंद्रियाणि संयम्य | जो महामूर्ख पुरुष {प्रबल बनी} कर्मेन्द्रियों को {जबरियन} रोककर,
इन्द्रियार्थान् मनसा स्मरन् | {इन्द्रियों से भी प्रबल} मन से इन्द्रियों के भोगों को याद करता हुआ
आस्ते स मिथ्याचारः उच्यते | {निष्क्रिय होकर} बैठा रहता है, वह मिथ्याचारी=ढोंगी कहा जाता है।

यः तु इन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन। कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।। 3/7

अर्जुन तु यः मनसा इन्द्रियाणि नियम्यासक्तः | हे अर्जुन! परंतु जो मन से इन्द्रियाँ वश करके, अनासक्त हुआ
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगं आरभते स विशिष्यते | कर्मेन्द्रियों से कर्म करते हुए योगी है, वह श्रेष्ठ है, {सराहनीय है}।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो हि अकर्मणः। शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।। 3/8

त्वं नियतं कर्म कुर्वकर्मणः कर्म हि ज्यायो | तू नियत किए हुए कर्मों को कर। कर्म न करने से कर्म ही श्रेष्ठ है
चाकर्मणः ते शरीरयात्रापि न प्रसिद्ध्येत् | और कर्म से रहित तेरा शारीरिक निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः। तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।। 3/9

यज्ञार्थादन्यत्र कर्मणोऽयं लोकः कर्मबंधनः | {रुद्रज्ञान} यज्ञ के सिवा दूसरे किसी कर्म से यह {नरकलोक} कर्मबंधन है।

आपः प्रविशन्ति तद्वत् यं सर्वे कामाः* | जलधाराएँ प्रवेश पाती हैं, वैसे ही जिसकी {अच्छी-बुरी अपनी} सब इच्छाएँ
प्रविशन्ति | {ज्ञान-सागर समदर्शी शिवबाबा की श्रेष्ठतम मत में} प्रवेश पाती हैं,
स शांतिं आप्नोति कामकामी न | वह शांति को पाता है; {*सांसारिक} कामनाओं का इच्छुक नहीं पाता है।
*{तुम बच्चे जानते हो हमको बाप (भगवान) मिला तो सब-कुछ मिला।} (मु.ता.27/6/1965 पृ.2 आदि)

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमान् चरति निःस्पृहः। निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति।। 2/71

यः पुमान् सर्वान् कामान् विहाय | जो पुरुष सारी {श्रीमतविहीन सांसारिक, भौतिक} कामनाओं को छोड़कर,
निःस्पृहः निर्ममः निरहंकारः | लालसारहित, ममताहीन {और} निरहंकारी {निर्मान–नम्रचित} भाव का
चरति सः शांतिं अधिगच्छति | आचरण करता है, वह {दीर्घकालीन नैष्ठिकी} शांति प्राप्त करता है।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति। स्थित्वा अस्यां अन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणं ऋच्छति।। 2/72

पार्थ एषा ब्राह्मी स्थितिः | हे अर्जुन! यह परंब्रह्म से उत्पन्न {सर्वोत्कृष्ट अव्यक्त और अविनाशी} अवस्था है।
एनां प्राप्य न विमुह्यति | इसे प्राप्त करके {मनुष्य किसी व्यक्ति या वस्तु के} मोह में नहीं पड़ता {और}
अन्तकाले अपि अस्यां स्थित्वा | {महाविनाश की} महामृत्यु में भी इस {अव्यक्त और अविनाशी अवस्था} में स्थिर हो
ब्रह्मनिर्वाणं ऋच्छति | {भिन्न-2 पंचमुखी ब्रह्माओं में से ऊर्ध्वमुखी} परंब्रह्म के निर्वाणधाम को पाता है।

अर्जुन उवाच-ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिः जनार्दन। तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।। 3/1

जनार्दन ते कर्मणः बुद्धिः ज्यायसी | {जनैरर्द्यते=याच्यते} हे अवढरदानी! आप कर्मयोग से बुद्धियोग श्रेष्ठ

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्प- | जिस {व्यक्ति} के {लौकिक-अलौकिक} सब कार्य कामविकार के संकल्प
वर्जिताः तं बुधाः ज्ञानाग्नि- | से रहित हैं, उसको बुद्धिमान् लोग ज्ञानाग्नि से {अनेक जन्मों के अपने}
दग्धकर्माणं पंडितं आहुः | {पाप-}कर्मों को जलाने वाला {पु. संगमयुग का} पंडित कहते हैं।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः। कर्मणि अभिप्रवृत्तः अपि नैव किञ्चित् करोति सः।। 4/20

निराश्रयः कर्मफलासंगं त्यक्त्वा | {शिव सिवा किसी के} आश्रयहीन, कर्मफल की आसक्ति त्यागकर
नित्यतृप्तः सः कर्मणि अभिप्रवृत्तः | सदा संतुष्ट हुआ वह {योगी व्यक्ति} कर्म में अच्छी तरह लगा रहने पर
अपि किंचित् एव न करोति | भी कुछ नहीं करता; {मुझ शिवज्योति समान अकर्ता रहता है।}

निराशीः यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः। शारीरं केवलं कर्म कुर्वन् न आप्नोति किल्बिषं।। 4/21

निराशीः यतचित्तात्मा | आशारहित, अपने {मन-बुद्धि रूप} चित्त का वशकर्ता, {एकाग्र भाव से}
त्यक्तसर्वपरिग्रहः | सब प्रकार के स्वामित्व का त्यागी, {मुझ शिवज्योति अभोक्ता समान}
केवलं शारीरं कर्म | {सांसारिक इच्छामात्रमविद्या होकर} केवल अनिवार्य शारीरिक कार्य
कुर्वन् किल्बिषं न आप्नोति | करता हुआ पाप को नहीं पाता; {पतित देह & दुनियाँ में भी सदा निष्पाप है।}

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः। समः सिद्धौ असिद्धौ च कृत्वा अपि न निबध्यते।। 4/22

यदृच्छालाभसंतुष्टः द्वन्द्वातीतः | संयोगवश प्राप्ति से संतुष्ट रहने वाला, {सुख-दुःखादि} द्वन्द्वों से परे,
विमत्सरश्च सिद्धौ असिद्धौ समः | ईर्ष्याहीन और {अपने ही किए कर्मों की} सफलता-असफलता में समानता

पर्युपासते अपरे यज्ञेन यज्ञं एव | उपासना करते हैं, {जबकि} अन्य {केवल} रुद्र ज्ञानयज्ञ से रुद्र-यज्ञसेवा को ही
ब्रह्माग्नौ उपजुह्वति | परंब्रह्म-योगाग्नि में होम करते हैं। {ऐसे एक की अव्यभिचारी उपासना ही श्रेष्ठ है।}

श्रोत्रादीनि इन्द्रियाणि अन्ये संयमाग्निषु जुह्वति। शब्दादीन् विषयान् अन्ये इन्द्रियाग्निषु जुह्वति।। 4/26

अन्ये श्रोत्रादीनि इन्द्रियाणि संयमाग्निषु | अन्य {लोग} कर्ण {चक्षु} आदि इन्द्रियों की संयम रूपी अग्नि में
जुह्वति अन्ये शब्दादीन् विषयान् | आहुति देते हैं, {जबकि} अन्य {गृहस्थ} शब्दादि विषय-भोगों को
इन्द्रियाग्निषु जुह्वति | इन्द्रियों की आग में {साक्षात् ईश्वरीय याद द्वारा ही} आहुति देते हैं।

सर्वाणि इन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि च अपरे। आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।। 4/27

अपरे सर्वाणि इन्द्रियकर्माणि च प्राणकर्माणि | दूसरे सभी इन्द्रिय-कर्मों वा {श्वासोच्छवास} प्राण-कर्मों को
ज्ञानदीपिते आत्मसंयम योगाग्नौ जुह्वति | ज्ञान से प्रदीप्त आत्म-संयम की योगाग्नि में आहुति देते हैं।

द्रव्ययज्ञाः तपोयज्ञाः योगयज्ञाः तथा अपरे। स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः।। 4/28

द्रव्ययज्ञाः तपोयज्ञाः | पदार्थों की सेवाएँ, {भ्रूमध्य में ज्योतिबिंदु आत्मा की स्मृति का} तपयज्ञ, {या}
योगयज्ञाः तथा अपरे स्वाध्याय | {परमात्म}-योगी तथा दूसरे आत्म {रिकॉर्ड में 84 जन्मों के} अध्ययन के
ज्ञानयज्ञाः यतयः संशितव्रताः | ज्ञानयज्ञ-सेवी; {ऐसे तपस्वी मननशील} योगीजन तीक्ष्णव्रत वाले हैं।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणे अपानं तथा अपरे। प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।। 4/29

अपरे अपाने प्राणं तथा | अन्य {योगी साक्षात् परमात्मस्मृति द्वारा} अपान वायु में प्राणवायु की तथा

पुनः जन्म न एति | **फिर से** {इस नारकीय संसार में} **जन्म नहीं लेता;** {स्वर्गीय संसार में ही जाता है।}

{परमेश्वर के परकाय प्रवेश के प्रमाणों के लिए भगवतगीता के अलावा 'आदीश्वर रहस्य' में भी देखिए 'शिव का दिव्यजन्म' वृद्ध ब्रह्मा, 'सिंधुरथ', 'परकाया' प्रवेशादि। प्रकरण-5, पृष्ठ 131 से 152} {U TUBE 'AIVV' में}

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मां उपाश्रिताः। बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावं आगताः।। 4/10

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मां | {पहले भी हर कल्प में} **राग-भय-क्रोधरहित, मेरे में ध्यानमग्न** {एवं} **मेरे**

उपाश्रिताः बहवो ज्ञानतपसा | **पूरे ही आश्रित बहुत** {लोगों ने} **ज्ञान-**{योग रूपी} **तप से,** {मेरी याद शक्ति से}

पूता मद्भावं आगताः | **पवित्र बन मेरे** {शासकीय/राजाई} **भाव को** {नं. वार पुरुषार्थ अनुसार} **पाया है।**

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजामि अहं। मम वर्त्म अनुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।। 4/11

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव | **जो जैसे** {संबंधों से} **मुझको समर्पित होते हैं, उनको उसी** {सम्बन्ध से}

अहं भजामि पार्थ मनुष्याः | **मैं अपनाता हूँ। हे पृथ्वीपति!** {अच्छे} **लोग** {मेरी डाली गई परम्परानुसार}

सर्वशः मम वर्त्म अनुवर्तन्ते | **सब रीति मेरे मार्ग का अनुकरण करते हैं।** {'महाजनेन येन गतः स पन्थाः'}

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः। क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिः भवति कर्मजा।। 4/12

इह कर्मणां सिद्धिं कांक्षन्तः | **इस** {पु. संगमयुगी} **लोक में कर्मों की सफलता के इच्छुक** {व्यक्ति}

देवताः यजन्त हि मानुषे लोके | **देव-यज्ञसेवा करते हैं; क्योंकि** {यहीं साक्षात् मनु के पुत्ररूप} **मनुष्यलोक में**

कर्मजा सिद्धिः क्षिप्रं भवति | **कर्म से उत्पन्न सफलता शीघ्र होती है,** {देवलोक या नरकलोक में नहीं।}

किं कर्म किं अकर्म इति | **क्या कर्म है** {और क्या विकर्म है}**, क्या अकर्म है- ऐसे** {कर्मथ्योरी के}

अत्र कवयः अपि मोहिताः | **यहाँ** {बड़े-2 न्यायाधीश/काजी आदि} **विद्वान लोग भी चकरा गए हैं।**

तत् ते कर्म प्रवक्ष्यामि यत् | **इससे तुझे कर्म**{अकर्म-विकर्म का स्वरूप} **बताता हूँ, जिसे** {अच्छे-से}

ज्ञात्वा अशुभात् मोक्ष्यसे | **जानकर** {सत-त्रेता के आधाकल्प के लिए} **अशुभ** {कर्मों} **से मुक्त हो जाएगा।**

कर्मणो हि अपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः। अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।। 4/17

कर्मणो बोद्धव्यं च विकर्मणः अपि | **कर्म को जानना चाहिए और विपरीत कर्म** {अर्थात् विकर्म} **को भी**

बोद्धव्यं च अकर्मणः बोद्धव्यं | **जानना चाहिए और** {आत्मस्मृति का} **अकर्म** {भी} **जानने योग्य है;**

हि कर्मणः गतिः गहना | **क्योंकि कर्म-गति** {अति} **गहन है।** {जो केवल मैं शिव ज्योति ही जानता हूँ}

कर्मणि अकर्म यः पश्येत् अकर्मणि च कर्म यः। स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।। 4/18

यः कर्मणि अकर्म | **जो** {व्यक्ति आत्मस्मृति से} **कर्म में अकर्म को** {निस्संकल्प बिन्दुरूप होकर}

पश्येत् च यः अकर्मणि | **देखता है और जो कर्मत्याग में** {भी सदाकाल संकल्प-शून्य रहते हुए}

कर्म स मनुष्येषु बुद्धिमान् | {मनसा से} **कर्म** {देखता है}**, वह मनुष्यों में** {अवश्य ही} **समझदार** {ब्रह्मापुत्र} **है।**

स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् | {और} **वह योगी सम्पूर्ण** {श्रेष्ठ 'सर्वसंकल्पसंन्यासी' जैसा} **कर्म करने वाला है।**

• बाप (तुम बेहद के संन्यासियों को) कर्म-अकर्म-विकर्म की गति समझाते हैं। (मुरली ता.2.7.68 पृ.2 मध्य)

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः। ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तं आहुः पण्डितं बुधाः।। 4/19

इह यः एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयति | **इस** {पु. *संगम} **में जो ऐसे चलाए गए चक्र का अनुसरण नहीं करता,**

पार्थ सायुः इन्द्रियारामः मोघं जीवति | **हे पृथापुत्र! वह पापायु इन्द्रिय-सुखों में मग्न व्यर्थ जीवित है;**

*{यह पु0 संगमयुगी ब्रह्मा-पुत्रों की बात है; सभी जन्मों की बात नहीं है कि मनुष्य-जन्म श्रेष्ठ है। जो रामायण में भी है- ''बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर नर मुनि सब ग्रंथन गावा।''} (मनोरपत्यमिति (मनुष्य); आदम की प्रत्यक्ष औलाद आदमी)

यः तु आत्मरतिः एव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः। आत्मनि एव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।। 3/17

तु यः मानवः आत्मरतिरेव चात्मतृप्तश्च | **परंतु जो मनुष्य** {ज्योतिबिंदु} **आत्मा में ही प्रीति वाला, आत्म-तृप्त है,**

आत्मन्येव संतुष्टः स्यात्तस्य कार्यं न विद्यते | **वैसे ही आत्मा में ही सन्तुष्ट है, उसके लिए कोई कार्य नहीं रहता।**

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेन इह कश्चन। न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः।। 3/18

इह तस्य कृतेन एवाकृतेन कश्चनार्थः | **यहाँ उसको करने से, ऐसे ही न *करने से कोई प्रयोजन** {नहीं है}

च न सर्वभूतेष्वस्य कश्चिदर्थव्यपाश्रयः | **और न किसी प्राणी पर इस** {ब्राह्मण} **का कोई कार्य निर्भर है।**

*{जैसे स्वर्ग में सारे कार्य प्रकृति ही करेगी, वैसे ही सच्चे ब्राह्मण-देवों की पालना भगवान बाप करते-कराते हैं} {साक्षात् ईश्वर के सेवाधारी ब्रह्मावत्स भूख नहीं मरेंगे।} कुरान में भी है-''कयामत में खुदा के बन्दे बड़े मौज में रहेंगे।''

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। असक्तो हि आचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः।। 3/19

तस्मात् असक्तः सततं कार्यं | **इससे अनासक्त हुआ, निरंतर करने योग्य** {यज्ञसेवा-अर्थ, विश्व-कल्याण के}

कौन्तेय मुक्तसंगः तदर्थं कर्म समाचर | **हे कुन्तीपुत्र! आसक्ति छोड़ उस** {रुद्रज्ञानयज्ञ-}**अर्थ कर्म कर।**

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेषः वः अस्तु इष्टकामधुक्।। 3/10

पुरा सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा | **आदिकालीन** {संगमी शूटिंग में} **यज्ञ सहित** {मानसी} **प्रजा पैदा करके**

प्रजापतिरुवाच अनेन प्रसविष्यध्वं | **प्रजापति ने कहा- इस** {रुद्र-ज्ञानयज्ञ} से {सत्त्वप्रधान सृष्टि की} **वृद्धि करो।**

एषः वः इष्टकामधुगस्तु | **यह** {यज्ञ} **तुम्हारी** {स्वर्गीय सुखों वाली} **इष्ट कामना की** कामधेनु **हो।**

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।। 3/11

अनेन देवान् भावयत ते देवा | **इस** {यज्ञ} **से** {9 कुरी के ब्राह्मण सो} **सूक्ष्म देवों को सन्तुष्ट करो। वे देवता**

वः भावयन्तु परस्परं | **तुमको** {सूक्ष्म देह द्वारा इष्ट भोगादि से} **सन्तुष्ट करें।** {ऐसे} **एक-दूसरे को**

भावयन्तः परं श्रेयः अवाप्स्यथ | {परस्पर सहयोग द्वारा} **तृप्त करते हुए परम् कल्याण को प्राप्त करो।**

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। तैः दत्तानप्रदाय एभ्यः यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।। 3/12

हि यज्ञभाविताः देवा वः इष्टान् | **क्योंकि यज्ञसेवा से संतुष्ट हुए** {ब्राह्मण सो सूक्ष्म} **देव तुमको इच्छित**

भोगान् दास्यन्ते तैः दत्तानेभ्यः | **भोग देंगे। उनके द्वारा** {सूक्ष्म पराशक्ति से} **दिए हुए** {भोग} **उन्हें**

अप्रदाय यः भुंक्ते सः स्तेनः एव | **अर्पण किए बिना जो** {ब्राह्मणजन/ब्रह्मापुत्र} **भोगता है, वह चोर ही है।**

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्ति आत्मकारणात्।। 3/13

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तः सर्वकिल्बिषैः | {रुद्र-}**यज्ञसेवा से बचे हुए को खानेवाले संतपुरुष सब पापों से**

कर्म समाचर ह्यसक्तः पूरुषः | **कर्मों का** {तू} **आचरण कर; क्योंकि अनासक्त पुरुष** {यज्ञार्थ सेवा-}
कर्म आचरन् परं आप्नोति | **कर्मों का आचरण करता हुआ** {विष्णुलोकीय} **परमपद को प्राप्त करता है;**
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिताः जनकादयः। लोकसङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।। 3/20
हि जनकादयः कर्मणैव संसिद्धिं | **क्योंकि जनक** {जन्मकर्ता जगत्पिता} **आदि कर्म द्वारा ही संपूर्ण सिद्धि को**
आस्थिताः लोकसंग्रहं सम्पश्यन् | **प्राप्त हुए थे।** {विश्व-नवनिर्माणार्थ} **लोकसंग्रह को भली-भाँति देखते हुए**
अपि कर्तुं एव अर्हसि | **भी** {महारुद्र सदाशिव भगवान का यज्ञकर्म} **करने लिए ही योग्य है।**
यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। 3/21
श्रेष्ठः यत्-2 आचरति तत्-2 एव | {हीरोपार्टधारी} **पुरुषोत्तम शिवबाबा जो-2 आचरण करता है, वैसा ही**
इतरः जनः सः यत् प्रमाणं | **दूसरे** {श्रेष्ठ} **लोग** {भी करते हैं}। **वह** {हीरो} **जैसा** {श्रीमत से} **प्रमाणित**
कुरुते लोकः तत् अनुवर्तते | **कर्म करता है,** {अच्छे} **लोग उस** {कार्य} **का** {ही} ***अनुसरण करते हैं।**
*{जैसा कर्म हम करेंगे, हमको देख और करेंगे। (मु.ता.6.6.90 पृ.2 आदि)} {'महाजनेन येन गतः स पंथः।'}
न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन। नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।। 3/22
पार्थ त्रिषु लोकेषु मे किंचन | **हे पृथ्वीपति!** {सुख-दुःख-शांतिधाम} **तीनों लोकों में मुझको कुछ** {भी}
कर्तव्यं न अस्ति न अवाप्तव्यं | **करने योग्य कर्म न ही है,** {और मुझे तीनों लोकों में} **पाने योग्य** {भी कुछ} **नहीं है**
अनवाप्तं चैव कर्मणि वर्त | **जो न प्राप्त हो, तो भी** {अनासक्त हो} **कर्मों में लगा हूँ।** {ताकि लोग फॉलो करें।}

मुच्यन्ते ये आत्मकारणात् पचन्ति | **मुक्त हो जाते हैं। जो** {अर्पण किए बिना} **अपने लिए ही पकाते हैं,**
ते पापाः त्वघं भुंजते | {वे पूर्वी सभ्यता के त्यागी ब्राह्मण नहीं बनते।} **वे पापी लोग तो पाप भोगते हैं।**
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः। यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।। 3/14
अन्नाद्भूतानि भवन्ति पर्जन्यात् | {आत्मस्मृति रूपी} **भोजन से** {नौधा ब्राह्मणरूप} **प्राणी होते हैं,** {ज्ञान-}**वर्षा से**
अन्नसम्भवः यज्ञात्पर्जन्यः | {योग का आत्मिक} **भोजन होता है, यज्ञसेवा से** {ज्ञानमंथन द्वारा ज्ञान-}**वर्षा**
भवति यज्ञः कर्मसमुद्भवः | **होती है।** {रुद्र-}**यज्ञ** {अच्छे-बुरे किए गए वैसे ही फलित} **कर्मों से उत्पन्न हुआ है।**
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवं। तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितं।। 3/15
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि | {सात्विक, राजसी या तामसी} **कर्म को** {नं. वार पंचमुखी} **ब्रह्मा से उत्पन्न हुआ जान।***
ब्रह्म अक्षरसमुद्भवं | {ऊर्ध्वमुखी 1 नं.} **ब्रह्मा अविनाशी** {अव्यक्त* स्थिति के शिवबाबा} **से पैदा हुआ है।**
तस्माद्यज्ञे सर्वगतं | **इसलिए** {ज्ञान-}**यज्ञ में सर्वगामी** {संगठित हुए 4 मुखों का चतुर्मुखी सूक्ष्म देह का}
ब्रह्म नित्यं प्रतिष्ठितं | **ज्ञान-चंद्र ब्रह्मा** {भी अर्जुन-ध्वजा में हनुमान रूप से कथाओं में} **सर्वदा उपस्थित है।**
*{जैसे बुद्ध-क्राइस्ट-गुरुनानक आदि सभी धर्मपिताओं के चेहरे से निराकारी अव्यक्तस्थिति स्पष्ट झलकती है वैसे ही अल्लाह अव्वलदीन जगत्पिता की बात है।} {*जो साकार रूप में ब्रह्मा-बाप ने जैसा किया, जो किया, वही सात्विक (कर्म) करना है। फॉलो फादर करना है। (अव्यक्त वाणी ता.19.12.84 पृ.75 मध्य)}
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयति इह यः। अघायुः इन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।। 3/16

*{जैन और वैदिक सृष्टि प्रक्रिया के अनुसार, पापी कलियुग-अंत में ही धर्म की सम्पूर्ण ग्लानि होती है} {देखिए आदीश्वर चरित्र पृ.110&111 (फुटनोट), {U TUBE 'AIVV' में}। इसके अलावा महाभारत वनपर्व (188-25,26,29,30), भागवत पु.(12-2-31) और हरिवंश पु.(2-8-14) में 1250 वर्षीय कलियुगी आयु के पक्के प्रमाण हैं।}
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। 4/8
साधूनां परित्राणाय दुष्कृतां | {मैं} **साधु-सन्तों की रक्षा के लिए, कर्म-इन्द्रियों से हिंसारत दुराचारियों के**
विनाशाय च धर्मसंस्थापनार्थाय | **विनाश के लिए और** {यहाँ ही 100% सत्} **धर्म की संपूर्ण स्थापना अर्थ**
युगे-युगे सम्भवामि | {कलियुगांत+सतयुगादि के} **दो युगों के बीच** {दिव्य प्रवेशनीय} **जन्म लेता हूँ।**
{गीता के इन 4-7,8 और 18-66 के अनुसार सभी धर्मों की उपस्थिति और ग्लानि भी पापी कलियुग के अंत में ही हो रही है & सारे विश्व में 9 कुरी के मानसी ब्रह्मापुत्र भी प्रैक्टिकल बन रहे हैं।} {निराकार शिवज्योति को नं. वार युगानुकूल 4-5 ब्रह्मा मुख मौखिक गीता-ज्ञान श्रावणार्थ 100 वर्ष तो चाहिए ना! जैसे सभी धर्मपिताओं ने सुनाया।}
जन्म कर्म च मे दिव्यं एवं यो वेत्ति तत्त्वतः। त्यक्त्वा देहं पुनः जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।। 4/9
अर्जुन एवं मे दिव्यं | **हे अर्जुन! इस प्रकार मेरे दिव्य** {प्रवेशरूप को, और गीता-4-9 में उद्धृत}
जन्म च कर्म यः | **जन्म और कर्मों को, जो** {व्यक्त अर्जुन-रथ को, गीतावर्णित 13-5 के इन्द्रियादि 23}
तत्त्वतः वेत्ति सः देहं | **तत्त्वों सहित** {गीताज्ञान के सार 13-2,3 को} **जानता है, वह देह** {रूप देहभान} **को**
त्यक्त्वा मां एति | **त्यागकर मुझ** {सद्गतिदाता सदाशिव ज्योति सुप्रीम, बाप, टीचर} **को पाता है** {और}

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारं अपि मां विद्धि अकर्तारं अव्ययं।। 4/13
मया गुणकर्मविभागशः | {कल्प पहले भी हर व्यक्ति के स्वभावनुकूल} **मैंने गुण-कर्म के विभागानुसार**
चातुर्वर्ण्यं सृष्टं तस्य | **चार वर्णों को रचा था। उसका** {मेरी ही श्रीमत से मेरे समान बने साकार लिंग-रूप}
कर्तारं अपि अकर्तारं | **कर्ता होने पर भी** {निराकार शिवज्योति} **अकर्ता** {अभोक्ता-अगर्भजन्मा}
मां अव्ययं विद्धि | **मुझ अक्षर** {सदाशिव} **को** {मूर्तिमान शंकरभोगी आत्मा महादेव} **समझ लेते हैं।**
{निराकार शिवज्योति सदा अभोक्ता परमधामवासी है; शंकर काशी-कैलाशीवासी साकारी दुनियाँ का वासी है।}
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा। इति मां यः अभिजानाति कर्मभिः न स बध्यते।। 4/14
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले | **न मुझको** {अच्छे-बुरे} **कर्मों का बंधन है, न मुझे कर्मों के फल में**
स्पृहा इति यः मां अभिजानाति | **इच्छा है। ऐसे जो भली-भाँति मुझ** {निर्लिप्त रूप को} **जान लेता है,**
स कर्मभिः न बध्यते | **वह** {स्वर्ग में सत-त्रेतायुगी आधाकल्प} **कर्मों से नहीं बँधता।**
एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैः अपि मुमुक्षुभिः। कुरु कर्म एव तस्मात् त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतं।। 4/15
एवं ज्ञात्वा पूर्वैः मुमुक्षुभिरपि | **ऐसा जानकर पूर्व** {कल्प} **के** {पु. संगमयुगी} **मुक्ति के अभिलाषियों ने भी**
कर्म कृतं तस्मात्त्वं | **कर्म किया था, इसलिए** {हर कल्प के ज्यों के त्यों हूबहू पुनरावृत्ति नियम से} **तू**
पूर्वैः पूर्वतरं कृतं कर्मैव कुरु | **पूर्व से पूर्वतर** {हर चतुर्युगी में} **किए हुए कर्मों को** {मुझे पहचानकर} **ही कर।**
किं कर्म किं अकर्म इति कवयः अपि अत्र मोहिताः। तत् ते कर्म प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा मोक्ष्यसे अशुभात्।। 4/16

तु यः बुद्धेः परतः सः | किंतु जो {शंकर रूप} बुद्धि से परे है, वह {तेरे रथ में शिव की ही ज्योति} है।
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना। जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदं।। 3/43
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा | ऐसे बुद्धि {रूप त्रिनेत्री शंकर} से {जो} प्रबल है, {उसे शिवबाबा} जानकर,
आत्मानं आत्मना | अपनी {ज्योतिबिंदु} आत्मा को अपने {भृकुटि में, अपने मन-बुद्धि} द्वारा
संस्तभ्य महाबाहो दुरासदं | संपूर्ण स्थिर करके, हे दीर्घबाहु! कठिनाई {पूर्वक अभ्यास} से वश होने वाले
कामरूपं शत्रुं जहि | काम-विकार रूपी {अपने अंदर के इस रावण-दुर्योधन रूपी} शत्रु को मार डाल।
श्रीभगवानुवाच-इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहं अव्ययं। विवस्वान् मनवे प्राह मनुः इक्ष्वाकवे अब्रवीत्।। 4/1
अहं इमं अव्ययं योगं | {निराकार सदाशिव ज्योति स्वरूप} मैंने यह अविनाशी {ऊर्जा रूप} योग {कल्पपूर्व भी}
विवस्वते प्रोक्तवान् | ज्ञानसूर्य {त्रिनेत्री शंकर/विवस्वत} को, {पुरुषोत्तम संगमयुग में प्रविष्ट होकर} कहा था,
विवस्वान् मनवे प्राह | ज्ञानसूर्य ने {वृषभ रूप बैलबुद्धि} मनुआ {संगठित चतुर्मुखी सूक्ष्मशरीरी ब्रह्मा} को कहा,
मनुः इक्ष्वाकवे अब्रवीत् | मनु ने {कामेच्छाधारी पुत्र} इक्ष्वाकु को कहा। {जिसने तक्षकदंश से अकालमृत्यु पाई}
एवं परम्पराप्राप्तं इमं राजर्षयो विदुः। स कालेन इह महता योगो नष्टः परन्तप।। 4/2
एवं परम्पराप्राप्तं इमं | इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस {प्राचीन योग} को {विक्रमादित्यादि}
राजर्षयः विदुः परंतप स योगः महता | राजर्षियों ने {द्वापर में} जाना। हे शत्रुतापक! वह योग लम्बे {2500 वर्षीय
कालेन इह नष्टः | द्वैतवादी दैत्यों के द्वापरयुगी} काल से {ही} यहाँ {पापी कलियुग में} नष्ट हो गया।

परंतप | {हे कामादिक} शत्रु-तापक {कामारि महान देवात्मा}! {अभी अंतिम तामसी जन्म में}
त्वं न वेत्थ | तू नहीं जानता। {जन्मांतरण में आने से सुख भोगमें पूर्वजन्म की बातों को भूल जाता है।}
*{हर 5000 वर्ष की चतुर्युगी में ड्रामा हूबहू रिपीट होता है; क्योंकि हरेक स्टार-जैसी आत्मा रूपी रिकॉर्ड में अपना-2 अनादि निश्चित पार्ट भरा हुआ है जो कल्प-2 की चतुर्युगी में बारंबार हूबहू रिपीट होता है।}
अजः अपि सन् अव्ययात्मा भूतानां ईश्वरः अपि सन्। प्रकृतिं स्वां अधिष्ठाय सम्भवामि आत्ममायया।। 4/6
अव्ययात्मा | {अभोक्ता-अकर्ता होने कारण देह में सदा अनासक्त}, कभी क्षरित न होने वाला,
अजः सन् अपि | {गर्भ से} अजन्मा होते हुए भी {आत्मिक प्यार से भरपूर मैं निराकार शिवज्योति},
भूतानां ईश्वरः सन् अपि | {देहभाव से सदाशून्य} प्राणियों का श्रेष्ठतम {सदा अहिंसक} शासनकर्ता होते हुए भी,
स्वां प्रकृतिं अधिष्ठाय | अपने {मुकर्रर अर्जुन/आदम/एडम की रथ रूपी} प्रकृति को आधीन करके,
आत्ममायया सम्भवामि | {सदा अव्यक्त} आत्मशक्ति से {गीता-11/54 में 'प्रवेष्टुम्' अनुसार ही} जन्म लेता हूँ।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिः भवति भारत। अभ्युत्थानं अधर्मस्य तदा आत्मानं सृजामि अहं।। 4/7
भारत यदा-2 धर्मस्य | हे भरतवंशी! जब-2 {तामसप्रधान कलियुगांत में सात्विक} धर्म की
ग्लानिः अधर्मस्य अभ्युत्थानं | ग्लानि {और मन-वचन-कर्म से हिंसक स्लाम-क्रिश्चियनादि} विधर्म की वृद्धि
भवति तदा हि | होती है, तब ही {तो गी.18-66 में कहे 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' अनुसार ही}
अहं आत्मानं सृजामि | मैं {शिव, साकार अर्जुन/आदम महान देवात्मा में} प्रत्यक्ष होता हूँ।

नित्यमनुतिष्ठन्ति तेऽपि कर्मभिः मुच्यन्ते | सदा पालन करते हैं, वे भी कर्मबंधन से छूट जाते हैं;
ये तु एतत् अभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतं। सर्वज्ञानविमूढान् तान् विद्धि नष्टानचेतसः।। 3/32
तु ये अभ्यसूयन्तः मे एतद्मतं | किन्तु जो ईर्ष्या करने वाले {लोग} मेरी इस {उपर्युक्त} श्रीमत का
नानुतिष्ठन्ति तान् अचेतसः सर्वज्ञान- | पालन नहीं करते, उन बुद्धुओं को सम्पूर्ण {सच्चीगीता-एडवांस} ज्ञान से
विमूढान् नष्टान् विद्धि | {नास्तिक या अर्धना0 जैसा} विशेष अंधा {और} नष्ट हुआ जान।
सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेः ज्ञानवानपि। प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।। 3/33
ज्ञानवान् अपि स्वस्याः | ज्ञानी मनुष्य भी अपनी {पूर्वजन्मानुसार की गई पु0संगमी-शूटिंग के निश्चित}
प्रकृतेर्सदृशं चेष्टते भूतानि प्रकृतिं | स्वभाव-अनुसार चेष्टा करता है, प्राणी {अपनी} प्रकृति की ओर
यान्ति किं निग्रहः करिष्यति | जाते हैं। {इसमें तू} क्या रोकथाम करेगा? {सारे उपक्रम नाकाम साबित होंगे।}
इन्द्रियस्य इन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ। तयोः न वशमागच्छेत् तौ हि अस्य परिपन्थिनौ।। 3/34
इन्द्रियस्य रागद्वेषौ इन्द्रियस्यार्थे | {भोग वाली} इन्द्रियों का राग और द्वेष {उस} इन्द्रिय के विषय-{भोग} में
व्यवस्थितौ तयोर्वशं नागच्छेत् | होता है, उन दोनों {राग-द्वेष} के वश में न आए; {समत्वं योग उच्यते, गी. 2-48}
हि तौ अस्य परिपन्थिनौ | क्योंकि वे दोनों इस आत्मा के शत्रु हैं। {उदासीन वदासीन; गी.9-9;14-23}
श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।। 3/35
स्वनुष्ठिताद्विगुणः स्वधर्मः | स्वधर्म का पालन करने से गुणविहीन {निराकार-चेतन} आत्मा का धर्म

यदि हि अहं न वर्तेयं जातु कर्मणि अतन्द्रितः। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।। 3/23
हि यदि अहं जातु कर्मणि अतन्द्रितः न | क्योंकि जो मैं कदाचित् कर्मों में आलस्यहीन होकर न
वर्तेयं पार्थ मनुष्याः सर्वशः मम वर्त्मानुवर्तन्ते | लगा रहूँ, {तो} हे पार्थ! लोग सब प्रकार से मेरा मार्ग ही पकड़ेंगे।
उत्सीदेयुः इमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहं। सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यां इमाः प्रजाः।। 3/24
अहं कर्म न कुर्यां चेदिमे | मैं {विश्व-नवनिर्माण के संगठन का} कार्य न करूँ, तो ये {सुख-दुख-शांतिधाम के}
लोकाः उत्सीदेयुश्च संकरस्य | लोक नष्ट हो जायँ और {मैं वृष्णिवंशी क्रिश्चियन्स-जैसी} वर्णसंकर प्रजा का
कर्ता स्यामिमाः प्रजाः उपहन्यां | कर्ता बनूँ {और} इस {नौधा} ब्राह्मण {सो देव संगठन} का विनाशकारी बनूँ।
सक्ताः कर्मणि अविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत। कुर्यात् विद्वान् तथा असक्तः चिकीर्षुः लोकसङ्ग्रहं।। 3/25
भारत अविद्वांसः यथा कर्मणि सक्ताः कुर्वन्ति | हे भरतवंशी! अज्ञानी लोग जैसे कर्म में आसक्त हो कर्म करते हैं,
तथा विद्वान् असक्तः लोकसंग्रहं चिकीर्षुः कुर्यात् | वैसे ही ज्ञानी अनासक्त हो संसार-संगठन की इच्छा से कर्म करे।
न बुद्धिभेदं जनयेत् अज्ञानां कर्मसङ्गिनां। जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।। 3/26
कर्मसंगिनां अज्ञानां बुद्धिभेदं | {4 वर्णों में विभक्त} कर्मों में आसक्त अज्ञानियों की बुद्धि में {ऊँच-नीच का} भेद
न जनयेत् युक्तः विद्वान् | पैदा न करे; {अपना-2 सहज कर्म करने दे}। कर्मयोगी-विद्वान {स्वयं भी}
सर्वकर्माणि समाचरन् जोषयेत् | {कोई भी वर्ण के} सब कार्यों को भली-भाँति करते हुए {यज्ञसेवा में} लगाए।
प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।। 3/27

कर्माणि सर्वशः प्रकृतेर्गुणैः क्रियमाणानि | सब कार्य सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किए जा रहे हैं; {परन्तु}
अहंकारविमूढात्मा अहं कर्ता इति मन्यते | अहंकार से विशेषतः मूढ़ बना पुरुष 'मैं करने वाला हूँ'- ऐसा मानता है।
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः। गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।। 3/28
तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोर्तत्त्ववित् गुणाः | किंतु हे दीर्घबाहु! गुण वा कर्म के विभाग का तत्व जानने वाला गुण
गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा सज्जते न | गुणों में आवर्तन करते हैं, ऐसा मानकर आसक्त नहीं होता।
{पु. संगम में शिवबाबा & प्रकृति ने प्राणियों के स्वगुणों & कर्मानुसार पार्ट निश्चित किए थे। (दे. गी. 3-27; 4-13)}
प्रकृतेः गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु। तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नवित् न विचालयेत्।। 3/29
प्रकृतेः गुणसम्मूढाः गुणकर्मसु | {त्रिगुणा} प्रकृति से गुणभ्रान्त नर {द्वैतवादी द्वापर से दैहिक} गुणकर्मों में
सज्जन्ते तानकृत्स्नविदः मन्दान् | आसक्त हो जाते हैं। उन अधकचरी समझ वाले मन्दबुद्धि लोगों को
कृत्स्नवित् न विचालयेत् | सम्पूर्ण ज्ञानी {पु. संगमी शूटिंग का ज्ञाता ब्रह्माकुमार कभी} विचलित न करे।
मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा। निराशीः निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।। 3/30
अध्यात्मचेतसा मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य | आध्यात्मिक बुद्धि से मेरे में सब {यज्ञार्थ श्रेष्ठ} कर्मों को अर्पण कर,
निराशीः निर्ममः भूत्वा विगतज्वरः युध्यस्व | आशाहीन, ममतारहित & शोकरहित होकर तू {धर्म-}युद्ध कर।
ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः। श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः।। 3/31
ये श्रद्धावन्तः मानवाः अनसूयन्तः मे इदं मतं | जो श्रद्धावान् मनुष्य ईर्ष्यारहित हुए मेरी इस श्रीमत का

परधर्माच्छ्रेयान् स्वधर्मे निधनं | {जड़} प्रकृति के धर्म से श्रेष्ठ है। अपने धर्म में मरना {देह-त्याग भी}
श्रेयः परधर्मः भयावहः | श्रेष्ठ है, {स्लामादि विधर्मी} देहाभिमानियों का धर्म {अत्यंत} खतरनाक है।
अर्जुन उवाच-अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः। अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलात् इव नियोजितः।। 3/36
वार्ष्णेय अनिच्छन् अपि अथ | वृष्णिवंशी *यादवों में जन्मे हे बं-बं महादेव! इच्छा न होते भी पीछे से
बलात् नियोजितः इव अयं पूरुषः | बलपूर्वक लगाए हुए की तरह यह पुरुष {बौद्धी-स्लामी-क्रिश्चियनादि में से}
केन प्रयुक्तः पापं चरति | किसकी प्रेरणा से पाप करता है? {द्वैतवादी द्वापुर से क्या यही निमित्त है?}
*{वृष्णिवंशी यादवों के बुद्धि रूपी पेट के मूसल ही लोहे के मिसाइल्स हैं, जो रजोगुणी काम-क्रोध की अंतिम परिणति है।}
श्रीभगवानुवाच-काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्धि एनम् इह वैरिणं।। 3/37
रजोगुणसमुद्भवः एष काम | {द्वापुर के ढाई हज़ार वर्ष में} रजोगुण से उत्पन्न यह कामविकार {वा}
एष क्रोध महाशनः महापाप्मा | यह क्रोध बहुत भोगी है {और} बड़ा पापी है; {क्योंकि कामांग विनाशी देह का
इह एनं वैरिणं विद्धि | अंग है।} इस {द्वैतवादी विधर्मियों-विदेशियों के संसार} में इसको वैरी समझ।
{ऐसे तो सत-त्रेतायुग में देवगण भी श्रेष्ठ ज्ञानेन्द्रियों से भोगी ही हैं; किंतु वे तो मन-बुद्धिरूप आत्मा के संग ही हैं।}
धूमेनाव्रियते वह्निः यथा आदर्शः मलेन च। यथा उल्बेनावृतो गर्भः तथा तेन इदं आवृतं।। 3/38
यथा धूमेन वह्निश्च आदर्शः मलेन | जैसे धुएँ से अग्नि और {मनदर्पणरूप} शीशा {गंदे कर्म के} मैल से
आव्रियते यथा गर्भः उल्बेनावृतः | ढक जाता है {तथा} जैसे गर्भ {मूत-पलीती जैसी} थैली से ढका रहता है,

तथा तेन इदं आवृतं | वैसे उस {भ्रष्ट कामेन्द्रिय की मनसा द्वारा} यह {बुद्धि का ज्ञान} ढका है।
आवृतं ज्ञानं एतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा। कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।। 3/39
कौन्तेय ज्ञानिनः नित्यवैरिणा च दुष्पूरेण | हे कुन्ती-पुत्र! ज्ञानी का नित्य शत्रु-जैसा तथा कठिनाई से पूर्ति वाली
एतेन कामरूपेण अनलेन ज्ञानमावृतं | इस *कामविकार रूपी आग से {चंचल मन में} ज्ञान ढका रहता है।
*{इसीलिए सच्चीगीता एडवांस ज्ञान के साप्ताहिक पाठ में नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य अनिवार्य है; अन्यथा असुर ही बनेंगे।}
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः अस्य अधिष्ठानमुच्यते। एतैः विमोहयति एषः ज्ञानमावृत्य देहिनं।। 3/40
इन्द्रियाणि मनः बुद्धिः अस्य | {दस} इन्द्रियाँ, मन {और} बुद्धि इस {काम} का {द्वैतवादी द्वापुरयुग से ही}
अधिष्ठानं उच्यते एषः एतैः | आश्रयस्थान कही जाती हैं। यह {काम} इन {प्रबल शक्तियों} के द्वारा
ज्ञानं आवृत्य देहिनं विमोहयति | ज्ञान को ढककर देहधारी {आत्मा को} विशेष रूप से मूढ़ बनाता है।
तस्मात् त्वं इन्द्रियाणि आदौ नियम्य भरतर्षभ। पाप्मानं प्रजहि हि एनं ज्ञानविज्ञाननाशनं।। 3/41
भरतर्षभ तस्मात्त्वमादौ इन्द्रियाणि नियम्य ज्ञान | हे भरतश्रेष्ठ! अतः तू पहले इंद्रियों को नियंत्रित कर, ज्ञान
विज्ञाननाशनं एनं पाप्मानं हि प्रजहि | & योग के नाशक इस {अंदरूनी} पापी को अवश्य मार दे।
इन्द्रियाणि पराणि आहुः इन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिः यः बुद्धेः परतस्तु सः।। 3/42
इन्द्रियाण्याहुः पराणि मनः इन्द्रियेभ्यः | इन्द्रियों को कहते हैं {कि बड़ी} प्रबल हैं; {प्रधान} मन इन्द्रियों से
परं बुद्धिः मनसस्तु परा | प्रबल है; {त्रिनेत्री शंकर जगत्पिता जैसी} बुद्धि मन से भी प्रबल है;

{पहले संगमी शूटिंग में ब्रह्मर्षियों ने, फिर देवर्षियों ने और अंत में द्वैतवादी द्वापुर से विक्रमादित्य-जैसे राजर्षियों ने जाना है।} {अभी राजयोगी सदास्वाधीन राजाओं का राज्य है या सदापराधीन प्रजातंत्र राज्य है?}
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः। भक्तः असि मे सखा च इति रहस्यं हि एतत् उत्तमं।। 4/3
मे भक्तः च सखा असि इति स एव | {कलियुगान्त में तू} मेरा भक्त और सखा है, इस कारण से वो ही {हर चतुर्युगी के आदि में}
अयं पुरातनः योगः मया अद्य ते | यह {परम प्रसिद्ध} प्राचीन {कल्पपूर्व का} योग मैंने आज तुझको {मुर्करर रथधारी}
प्रोक्तः एतत् हि उत्तमं रहस्यं | {संगमी शूटिंग में} कहा है। यह निश्चय ही श्रेष्ठतम {त्रिकालदर्शिता का} रहस्य है।
अर्जुन उवाच-अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः। कथं एतत् विजानीयां त्वं आदौ प्रोक्तवान् इति।। 4/4
विवस्वतः जन्म परं भवतः | {ज्ञानसूर्य} शिवनेत्री का जन्म परंपूर्वकाल {कल्प के आदि} में {और} आपका
जन्म अपरं त्वं आदौ | अब {कलियुगांत} बाद में हुआ है, {तो} आपने '{कल्प के} आदिकाल में हुआ',
एतत् प्रोक्तवान् इति कथं विजानीयां | ऐसे कहा- यह कैसे मानूँ? {यह तो दो विपरीत बातें हो गईं।}
श्रीभगवानुवाच-बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन। तानि अहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।। 4/5
अर्जुन मे च तव | अर्जुन! {दिव्यजन्मा प्रवेश योग्य शिवज्योतिरूप} मेरे और तेरे {5000 वर्षीय}
बहूनि जन्मानि व्यतीतानि | असंख्य {कल्पों में असंख्य} जन्म बीते हैं। {कलियुगांत में} {यदा-2 हि धर्मस्य (4/7),
तानि सर्वाणि | ''कल्प-2 लगि प्रभु* अवतारा''} उन सब {कल्पों में हुए जन्मों} को
अहं वेद | {हूबहू पुनरावृत्ति से} मैं {त्रिकालज्ञ शिव अजन्मा होने कारण} जानता हूँ,

छिन्नाभ्रम् इव कच्चित् न नश्यति | फटे बादल की तरह कहीं {पागलों की जैसी स्थिति में} नष्ट तो नहीं हो जाता?
एतत् मे संशयं कृष्ण छेत्तुं अर्हसि अशेषतः। त्वदन्यः संशयस्य अस्य छेत्ता न हि उपपद्यते।। 6/39
कृष्ण मे एतत् संशयं अशेषतः | हे आकर्षणमूर्त! मेरे इस सन्देह को {जो दुबारा न उठे- ऐसे} पूरी तरह
छेत्तुं अर्हसि हि अस्य संशयस्य | नष्ट करने में समर्थ हो; क्योंकि {ऊँचे-से-ऊँचे आप भगवंत-जैसा} इस संशय का
छेत्ता त्वदन्यः न उपपद्यते | नाश करने वाला आपके सिवा दूसरा {संसारभर में कोई} नहीं मिल सकता।
श्रीभगवानुवाच-पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते। न हि कल्याणकृत्कश्चित्दुर्गतिं तात गच्छति।। 6/40
पार्थ तस्य न इह अमुत्र एव | हे पृथ्वीपति! उस {योगी} का न इस {लोक} में, परलोक में भी
विनाशः न विद्यते हि तात कश्चित् | विनाश नहीं होता; क्योंकि हे तात! कोई भी {कल्याणकारी शिव बाप की}
कल्याणकृत् दुर्गतिं न गच्छति | कल्याणकारी {आत्मज्योतिस्वरूप औरस संतान} दुर्गति में नहीं जाती।
प्राप्य पुण्यकृतां लोकान् उषित्वा शाश्वतीः समाः। शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टः अभिजायते।। 6/41
योगभ्रष्टः पुण्यकृतां लोकान् | योगभ्रष्ट व्यक्ति {पापात्माओं के लोक में नहीं जाता}, पुण्यात्माओं के लोकों को
प्राप्य शाश्वतीः समाः उषित्वा | पाकर, अनेक वर्षों तक {साधारण समझे गए प्रजावर्ग में} रहकर,
शुचीनां श्रीमतां गेहेऽभिजायते | {युगानुरूप 1 नारी सदा ब्रह्मचारी} पवित्र श्रीमन्तों के घर में जन्म लेता है
अथवा योगिनां एव कुले भवति धीमतां। एतत् हि दुर्लभतरं लोके जन्म यत् ईदृशं।। 6/42
अथवा धीमतां योगिनां कुले | अथवा बुद्धिमान {एडवांस बीजरूप रुद्राक्षगणों के मध्य} योगियों के कुल में

अधिकः मतः च कर्मिभ्यः योगी अधिकः | श्रेष्ठ माना है और कर्मकाण्डियों से {तो} राजयोगी बड़ा है {ही};
तस्मात् अर्जुन योगी भव | इसलिए हे अर्जुन! {तू तपस्वी-ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ} योगी बन।
योगिनां अपि सर्वेषां मद्गतेन अन्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।। 6/47
सर्वेषां योगिनामपि यः श्रद्धावान् | सब योगियों में भी जो {दिल+दिमागयुक्त} श्रद्धा-भावना वाला {योगी}
मद्गतेन अन्तरात्मना मां | मेरे {साकार बड़ा रूप लिंग+शिवज्योति} में लगाई मन-बुद्धि द्वारा मुझको
भजते स मे युक्ततमः मतः | याद करता है, उसे मैं सबसे श्रेष्ठ {समझू & भावपूर्ण} योगी मानता हूँ।
श्रीभगवानुवाचः-मयि आसक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन् मदाश्रयः। असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तत् शृणु।। 7/1
पार्थ मदाश्रयः मयि आसक्तमनाः | पृथ्वीश्वर! मेरा आश्रय लेने वाला, मेरे में आसक्त हुए मन वाला,
योगं युंजन् मां समग्रं यथा | योग लगाते हुए मेरे {व्यक्त+अव्यक्त} सम्पूर्ण स्वरूप को जिस प्रकार
असंशयं ज्ञास्यसि तत् शृणु | संशयहीन हुआ जानेगा, उसे {विस्तारपूर्वक मेरे से सन्मुख होकर} सुन।
ज्ञानं ते अहं सविज्ञानं इदं वक्ष्यामि अशेषतः। यत् ज्ञात्वा न इह भूयः अन्यत् ज्ञातव्यं अवशिष्यते।। 7/2
अहं ते सविज्ञानं इदं ज्ञानं अशेषतः | मैं तुझे विशेषज्ञान={योग} सहित इस {सच्चीगीता} ज्ञान को पूरी तरह
वक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा भूयः | बताऊँगा, जिसे जानकर {स्व+दर्शन+चक्रधारी बने तेरे लिए} पुनः
इह अन्यत् ज्ञातव्यं न अवशिष्यते | इस {संसार} में अन्य {वेद-शास्त्रादि} जानने योग्य बाकी नहीं बचेगा।
मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये। यततां अपि सिद्धानां कश्चित् मां वेत्ति तत्त्वतः।। 7/3

भस्मसात् कुरुते तथा | जलाकर राख कर देती है, वैसे ही {अखूट ज्ञानाग्नि के भंडारी}
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते | {शिवबाबा की} ज्ञानाग्नि सब {प्रकार के पाप} कर्मों को भस्म कर देती है।
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रं इह विद्यते। तत् स्वयं योगसंसिद्धः कालेन आत्मनि विन्दति।। 4/38
इह ज्ञानेन सदृशं पवित्रं | इस {संसार} में {सच्चीगीता एडवांस} ज्ञान समान {परमोत्कृष्ट} पवित्रतम {तो कोई धर्मशास्त्रों में}
हि न विद्यते योगसंसिद्धः | कुछ भी नहीं है। ईश्वरीय याद से सम्पूर्ण सिद्ध स्वरूप {हीरो पार्टधारी विश्वपिता/}
कालेन आत्मनि | {जगत्पिता आदम/अर्जुन भी पुरुषार्थ परिपूर्ण होने पर या} समय आने पर अपनी आत्मा में
स्वयं तत् विन्दति | *स्वयं उस {संज्ञान} को पाता है {जिससे 'भूतल देखहिं शैलवन भूतलभूरिनिधान'}।
*बाप को निरंतर याद करने से ज्ञान आपे ही इमर्ज हो जाता है। (अ.वा.24.1.70 पृ.3 आदि)
श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः। ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिं अचिरेण अधिगच्छति।। 4/39
श्रद्धावान् तत्परः | श्रद्धावान् {ब्रह्मचर्य सहित ज्ञान-योग से इन्द्रियों को साधने में} सदा प्रयत्नशील {और}
संयतेन्द्रियः ज्ञानं लभते | संपूर्ण इन्द्रियदमनशील {ही} ज्ञान लेता है। {दृढ़तापूर्वक इन्द्रियवशकर्ता}
ज्ञानं लब्ध्वा अचिरेण | ज्ञान प्राप्त कर शीघ्र ही {इस पुरुषोत्तम संगमयुग में इसी संसार में रहते हुए}
परां शांतिं अधिगच्छति | {इसी जन्म में} परमधाम की शांति पाता है। {या परमब्रह्मलोक यहीं उतार लेता है।}
अज्ञश्च अश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति। न अयं लोकः अस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।। 4/40
अज्ञश्च अश्रद्दधानश्च संशयात्मा | अज्ञानी & अश्रद्धालु तथा संशयालु {राजयोग से राजाई के देवपद प्राप्ति से}

एवं ब्रह्मणो मुखे बहुविधा यज्ञा | इसी प्रकार {संगठित चतुर्मुखी} ब्रह्मामुख से अनेक भाँति के यज्ञों का
वितता तान्सर्वान्कर्मजान्विद्धि | विस्तार हुआ है। उन सब यज्ञों को {कुरुवंशियों के} कर्म से उत्पन्न जान।
एवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे | ऐसा जानकर {तू कुरुवंशियों के उन कर्मों से भी} मुक्त हो जाएगा।
श्रेयान् द्रव्यमयात् यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परन्तप। सर्वं कर्म अखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।। 4/33
परंतप द्रव्यमयात् यज्ञात् | हे शत्रुपीड़क! {नाशवान} भौतिक पदार्थों से किए गए {भौतिक अग्नि द्वारा चालित} यज्ञ से
ज्ञानयज्ञः श्रेयान् | {अविनाशी अश्वमेध रुद्र} *ज्ञान-यज्ञ अधिक अच्छा है, {जो ज्ञान-योगाग्नि से चालित है}।
पार्थ अखिलं सर्वं | {क्योंकि} हे पृथ्वीश्वर! अखिल {विश्व-धर्मों के} सारे {भक्तिमार्गीय अंधश्रद्धायुक्त}
कर्म ज्ञाने परिसमाप्यते | कर्मकाण्ड {तार्किक & श्रद्धाभावनायुक्त रुद्र} ज्ञान-यज्ञ में समाप्त हो जाते हैं।
*{①'राजस्व:'-स्व अर्थात् आत्मा का सच्चा स्वराज्य प्रदातायज्ञ। ②'अश्वमेधः'-मनरूपी अश्व मारा जाता है। ③'अविनाशी:'-भौतिक यज्ञ तो भौतिक पदार्थों से नाशवान हैं; परंतु इसमें मन-बुद्धि रूपी अविनाशी आत्मा की ही प्रधानता है। ④'रुद्र-ज्ञान-यज्ञ'=साक्षात् महारुद्र शिव-शंकर की ज्ञान+योगाग्नि से कलियुगान्त में कल्पान्तकारी महाविनाश की अन्तिम आहुति डाली जाती है। जिसकी यादगार मात्र है- शंकर महादेव की अंतिम आहुति।}
तत् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः।। 4/34
प्रणिपातेन सेवया परिप्रश्नेन | परमादरपूर्वक, {यज्ञ-}सेवा द्वारा, {व्यक्तिगत साप्ताहिक कोर्स में} प्रश्नोत्तरपूर्वक
तत् विद्धि तत्त्वदर्शिनः | उस {यज्ञ} को {तू} जान ले। {एडवांस सच्चीगीता के} तत्त्वदर्शी {परमब्रह्मावत्स}

विनश्यति संशयात्मनः न अयं | नष्ट हो जाता है। संशयालु व्यक्ति को न यह {नारकीय क्षणभंगुर सुख का}
लोकः न परः अस्ति न सुखं | संसार है, न पार-{लोक का स्वर्गीय और} न {वैकुण्ठ का अतीन्द्रिय} सुख है।
योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयं। आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।। 4/41
धनंजय आत्मवन्तं योगसंन्यस्तकर्माणं | हे ज्ञानजयी! आत्मा में स्थिर याद से संपूर्ण कर्मबंधन का त्यागी,
ज्ञानसंछिन्नसंशयं कर्माणि न निबध्नन्ति | {गीता} ज्ञान से सारे संशयों के छेदक को कर्म बिल्कुल नहीं बाँधते;
तस्मात् अज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिना आत्मनः। छित्त्वा एनं संशयं योगं आतिष्ठ उत्तिष्ठ भारत।। 4/42
तस्मात् भारत अज्ञानसम्भूतं एनं हृत्स्थं संशयं | इसलिए हे भारत! अज्ञान से उत्पन्न हुए इस हृदय में स्थित संशय को
आत्मनः ज्ञानासिना छित्त्वा योगमातिष्ठोत्तिष्ठ | आत्मा की ज्ञानकटारी से काटकर योग में जुट जा {और} उठ खड़ा हो।
अर्जुन उवाच-सन्न्यासं कर्मणां कृष्ण पुनः योगं च शंससि। यत् श्रेयः एतयोः एकं तत् मे ब्रूहि सुनिश्चितं।। 5/1
कृष्ण कर्मणां संन्यासं च पुनः | हे आकर्षणमूर्त! कर्मों के समुचित त्याग/संन्यास की और फिर {कभी}
योगं शंससि एतयोः यत् श्रेयः | कर्मयोग की प्रशंसा करते हो। इन दोनों में से जो {और जैसे} श्रेष्ठ हो,
तत् एकं सुनिश्चितं मे ब्रूहि | उस एक को भली-भाँति निश्चित कर मुझे बताइए, {जिससे एक मार्ग पर चलूँ}
श्रीभगवानुवाच-सन्न्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरौ उभौ। तयोः तु कर्मसन्न्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते।। 5/2
संन्यासः च कर्मयोगः उभौ | संपूर्ण कर्मत्याग और कर्म के साथ योग, {ये साधु या गृहस्थी} दोनों प्रति
निःश्रेयसकरौ तु तयोः कर्म- | परमकल्याणकारी हैं; किन्तु उन दोनों में संपूर्ण {सहज होने की दृष्टि से} कर्म-

ज्ञानिनः ते ज्ञानं उपदेक्ष्यन्ति | ज्ञानीजन तुझे {साक्षात् ब्रह्मामुख निसृत वेदवाक्यों के} ज्ञान का उपदेश करेंगे।
यत् ज्ञात्वा न पुनः मोहं एवं यास्यसि पांडव। येन भूतानि अशेषेण द्रक्ष्यसि आत्मनि अथो मयि।। 4/35
पाण्डव यत् ज्ञात्वा पुनः | हे पण्डा रूप पाण्डु के पुत्र! जिस {जगत्पिता} को जानकर फिर से {संसार में}
एवं मोहं न यास्यसि अथो | इस तरह {अल्पकालीन संबंधियों के} मोह को {तू} नहीं पाएगा, फिर तो
येन आत्मनि अशेषेण भूतानि | जिस {जगत्पिता} से {लिंगसहित हीरा-जैसी} आत्मा में समस्त प्राणियों को
मयि द्रक्ष्यसि | {बुद्धि से} मुझ {बीजरूप ज्योतिर्लिंग} में {समाए सृष्टिवृक्ष की तरह} देखेगा।
अपि चेत् असि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः। सर्वं ज्ञानप्लवेन एव वृजिनं सन्तरिष्यसि।। 4/36
चेत् सर्वेभ्यः पापेभ्यः अपि | चाहे सब पापियों से भी {महाधोखेबाज & महापापी अजामिल-जैसा}
पापकृत्तमः असि | अधिक पापी {तू क्यों न} हो, {तो भी दया के भंडार शिवबाबा पुत्र महादेव}
ज्ञानप्लवेन एव सर्वं | त्रिनेत्री *{शंकर-चाप} जहाज से निस्सन्देह सारे ही {63 जन्मों से आधाकल्प के}
वृजिनं संतरिष्यसि | पाप-समुद्र को {तू देहरूप नाव में बैठा ज्ञान-योग बल से} तैरकर पूरा पार कर जाएगा।
*{'शंकरचाप जहाज, जेहि चढ़ि उतरहिं पार नर। बूढ़ि सकल संसार'} {'नानक नाम जहाज'} {'चन्द्रकांत वेदांत जहाज'} शिवबाबा की पत्नी-जैसी अविनाशी लचीली देह को धनुष/चाप/नवैया/जहाज कहा है।
यथा एधांसि समिद्धः अग्निः भस्मसात् कुरुते अर्जुन। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।। 4/37
अर्जुन यथैधांसि समिद्धोऽग्निः | हे अर्जुन! जिस रीति {होली में विकारों के} ईंधन को जलाई हुई अग्नि

वायोः इव सुदुष्करं मन्ये | {कभी भी न रोकी जाने वाली प्राण-} वायु समान अति कठिन मानता हूँ।
श्रीभगवानुवाच-असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। 6/35
असंशयं महाबाहो चलं मनः दुर्निग्रहं तु | निस्संदेह हे महाबाहु! {तीव्रधावी} चंचल मन {कृष्णबच्चा} दुराग्रही है; किन्तु
कौन्तेय वैराग्येण चाभ्यासेन गृह्यते | हे कुन्ती-पुत्र! {एटामिक विनाश के} वैराग्य&योगाभ्यास से वश में आता है।
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः। वश्यात्मना तु यतता शक्यः अवाप्तुं उपायतः।। 6/36
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप | असंयत {इच्छाओं से भरे-पूरे} मन वाले के लिए योग की प्राप्ति कठिन है,
इति मे मतिः तु यतता उपायतः | ऐसा मैं मानता हूँ; किंतु प्रयत्नपूर्वक {अभी-2 बताए} उपायपूर्वक
वश्यात्मना अवाप्तुं शक्यः | वशीभूत मन {निरंतर 'मामेकं' की अव्यभिचारी याद} से हाथ आ सकता है।
अर्जुनोवाच-अयतिः श्रद्धया उपेतो योगात् चलितमानसः। अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति।। 6/37
कृष्ण योगात् श्रद्धया उपेतः | हे आकर्षणमूर्त {शिवबाबा}! योग से श्रद्धायुक्त; किंतु {विषय-भोगों से}
चलितमानसः अयतिः योगसंसिद्धिं | विचलित मन वाला अयोगी/{भोगी व्यक्ति} योग की संपूर्ण सिद्धि
अप्राप्य कां गतिं गच्छति | न पाकर {यदि सर्वोत्तम नहीं; तो उत्तम, मध्यम या नीच} किस गति को जाता है?
कच्चित् न उभयविभ्रष्टः छिन्नाभ्रम् इव नश्यति। अप्रतिष्ठः महाबाहो विमूढः ब्रह्मणः पथि।। 6/38
महाबाहो ब्रह्मणः पथि विमूढः | हे विशालभुजी अष्टमूर्ति शिवबाबा! परंब्रह्म के मार्ग में भूला हुआ {सर्वथा}
अप्रतिष्ठः उभयविभ्रष्टः | स्थितिभ्रष्ट योगी {संन्यास और कर्मयोग} दोनों से भ्रष्ट हुआ {टूटे दिलवाला}

एव भवति हि ईदृशं यत् | ही पैदा होता है; किन्तु इस प्रकार का {साक्षात् महेश्वरी शिव-परिवार में} जो
जन्म एतत् लोके दुर्लभतरं | जन्म है, वह {संगमी शूटिंग के} लोक में {कई जन्म लेने के कारण} अधिक कठिन है।
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकं। यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।। 6/43
तत्र पौर्वदेहिकं तं बुद्धिसंयोगं लभते | वहाँ पूर्वजन्म से प्राप्त वह {एडवांस रुद्रगणों का} बुद्धि-संयोग पाता है
च ततः कुरुनन्दन | और फिर हे कर्म {घमंडी विधर्मियों के भी} आनंददाता अर्जुन!
भूयः संसिद्धौ यतते | पुनः {एडवांस ब्राह्मण परिवार में} सम्पूर्ण सिद्धि हेतु यत्न करता है।
पूर्वाभ्यासेन तेन एव ह्रियते हि अवशः अपि सः। जिज्ञासुः अपि योगस्य शब्दब्रह्म अतिवर्तते।। 6/44
तेन पूर्वाभ्यासेन एव सः अवशः | उस पूर्वजन्म के अभ्यास द्वारा ही वह {कन्वर्टिड विधर्मी आत्मा} विवश होकर
ह्रियते योगस्य जिज्ञासुः अपि | {योगसिद्धि हेतु} खिंचता है। {और} राजयोग का ज्ञान पाने का इच्छुक भी
शब्दब्रह्म अतिवर्तते | झाँझ-मजीरा की आवाज़ वाले {भक्तिमार्गी चतुर्मुखी} ब्रह्मा के पार चला जाता है;
प्रयत्नात् यतमानः तु योगी संशुद्धकिल्बिषः। अनेकजन्मसंसिद्धः ततो याति परां गतिं।। 6/45
तु प्रयत्नात् यतमानः योगी संशुद्धकिल्बिषः | किन्तु प्रयत्नपूर्वक योगाभ्यासी योगी सम्पूर्ण पाप के धुल जाने पर,
अनेकजन्मसंसिद्धः ततः परां गतिं याति | 84वें जन्म में सम्पूर्ण सिद्ध हुआ, बाद में परमगति को पाता है।
तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिकः योगी तस्मात् योगी भवार्जुन।। 6/46
योगी तपस्विभ्यः अधिकः ज्ञानिभ्यः अपि | राजयोगी {आत्मस्मृति वाले} तपस्वियों से बढ़कर है, ज्ञानियों से भी

अधिकं न मन्यते यस्मिन् स्थितः | अधिक {अच्छा} नहीं मानता, जिस{विष्णुलोकीय वैकुण्ठ सुख में} स्थित हुआ
गुरुणा दुःखेन अपि विचाल्यते न | {महाविनाश की महामृत्यु के} महान दुःख से भी विचलित नहीं होता;
तं विद्यात् दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितं। स निश्चयेन योक्तव्यो योगः अनिर्विण्णचेतसा।। 6/23
दुःखसंयोगवियोगं तं योगसंज्ञितं | दुःखों की प्राप्ति से दूर करने वाले उस {सुख} को {सहजराज} 'योग' नाम से
विद्यात् अनिर्विण्णचेतसा | जानना चाहिए। {जन्म-जरा-मरण&दरिद्रतादि से भरे} दुःखरहित चित्त से
स योगः निश्चयेन योक्तव्यः | वह योग निश्चयपूर्वक लगाना चाहिए; {क्योंकि निश्चयबुद्धि विजयते।}
सङ्कल्पप्रभवान् कामान् त्यक्त्वा सर्वान् अशेषतः। मनसा एव इन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।। 6/24
संकल्पप्रभवान्सर्वान्कामान् अशेषतः त्यक्त्वा | संकल्प से पैदा सब कामनाओं को {निःसंकल्प हो} पूरी तरह त्यागकर
मनसा एव इन्द्रियग्रामं समंततः विनियम्य | मन से ही इन्द्रियों-समूह को सब ओर से विशेष नियमित कर,
शनैः शनैः उपरमेत् बुद्ध्या धृतिगृहीतया। आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चित् अपि चिन्तयेत्।। 6/25
शनैः-2 मनः धृतिगृहीतया बुद्ध्या | धीरे-2 मन {100 वर्षीय पु. संगमयुग में से 80-90 वर्ष में} धैर्य वाली बुद्धि से
उपरमेत् आत्मसंस्थं कृत्वा | {सहज-2} उपराम हो जाए & {मन-बुद्धिबल वाली} आत्मबिंदु में पूरा स्थिर करके
किंचित् अपि न चिन्तयेत् | {शिवबाबा=शिवज्योति+स्वर्ण लिंगरूप बाबा सिवाय} कुछ भी चिंतन न करे।
यतो यतो निश्चरति मनः चञ्चलं अस्थिरं। ततः ततः नियम्य एतत् आत्मनि एव वशं नयेत्।। 6/26
अस्थिरं चंचलं मनः यतः-2 | अस्थिर, चंचल मन जहाँ-2 {अपनी देह, देह के संबन्धियों या पदार्थों} से

प्रणश्यामि न च स मे प्रणश्यति न | दूर नहीं होता और वह {खास पु. संगम में} मेरे से {भी} अदृश्य नहीं होता।
सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वं आस्थितः। सर्वथा वर्तमानः अपि स योगी मयि वर्तते।। 6/31
एकत्वं आस्थितः यः सर्व | {पु. संगम के मुकर्रर} साधारण तन में एकव्यापी को जो {योगी} सब
भूतस्थितं मां भजति स योगी | प्राणियों में {नं. वार योग-ऊर्जा से} स्थित मुझे भजता है, वह {श्रेष्ठ} योगी
सर्वथा वर्तमानः अपि मयि वर्तते | सब प्रकार से व्यवहार करते भी मेरे {हीरो पार्टधारीरूप दिल} में है।
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति यः अर्जुन। सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।। 6/32
अर्जुन यः सर्वत्र आत्मौपम्येन सुखं यदि वा | अर्जुन! जो पशु आदि सब प्राणियों में आत्मभाव से सुख को वा
दुःखं समं पश्यति स योगी परमः मतः | दुःख को समान देखता है, वह योगी {आत्म-दृष्टि वाला} परमश्रेष्ठ मान्य है।
अर्जुन उवाच-यः अयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन। एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिरां।। 6/33
मधुसूदन त्वया साम्येन योऽयं | हे मधु {जैसे मीठे काम के} हर्ता {शिवबाबा}! आपने साम्यता द्वारा जो यह
योगः प्रोक्तः एतस्य चंचलत्वात् | योग कहा, उसके लिए {मन की} चंचलता {या अपनी आसक्तियों} के कारण
स्थिरां स्थितिं अहं पश्यामि न | कोई स्थिर आधार मुझे दिखाई नहीं देता। {जन्म-2 का देहभाव आत्मदृष्टि में विघ्न है।
चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवत् दृढं। तस्य अहं निग्रहं मन्ये वायोः इव सुदुष्करं।। 6/34
कृष्ण मनः चंचलं प्रमाथि | हे आकर्षणमूर्त शिवबाबा! मन चंचल है, {इन्द्रियाँ} मथ डालता है, {यह तो बड़ा}
बलवत् दृढं हि अहं तस्य निग्रहं | बलवान है, हठी है; क्योंकि मैं इस {सात्विक बुद्धि रहित बेलगाम घोड़े} का रोकना

ब्रह्मणि आधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः। लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रं इव अम्भसा।। 5/10
यः ब्रह्मण्याधाय संगं त्यक्त्वा कर्माणि करोति | जो {एकमात्र} परंब्रह्म-आश्रयी आसक्ति त्यागकर कर्म करता है,
स अम्भसा पद्मपत्रं इव पापेन लिप्यते न | वह पानी से कमल-पत्र की तरह पाप से लिप्त नहीं होता।
कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैः इन्द्रियैः अपि। योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वा आत्मशुद्धये।। 5/11
योगिनः कायेन मनसा बुद्ध्या | योगीजन तन से, मन से, बुद्धि द्वारा {और समय-सम्बन्ध-संपर्क से,}
केवलैः इन्द्रियैः अपि आत्मशुद्धये | केवल इन्द्रियों द्वारा भी, आत्मा की {पञ्चविकारों से} शुद्धि हेतु
संगं त्यक्त्वा कर्म कुर्वन्ति | आसक्ति को त्यागकर {आत्मज्योतिबिन्दु की स्मृति में} कर्म करते हैं।
युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिं आप्नोति नैष्ठिकीं। अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते।। 5/12
युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा नैष्ठिकीं | योगी {पु. संगमी शूटिंग में अनादिनिश्चित} कर्मों के फल को त्यागकर निश्चल
शांतिं आप्नोति अयुक्तः काम- | शांति को पाता है; {परंतु} अयोगी=भोगी {आसक्ति भरी} कामनाओं के
कारेण फले सक्तः निबध्यते | कारण से {कर्म}-फल में आसक्त हो {भली-भाँति दैहिक इन्द्रियों में} बँध जाता है।
सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्य आस्ते सुखं वशी। नवद्वारे पुरे देही न एव कुर्वन् न कारयन्।। 5/13
वशी देही मनसा सर्वकर्माणि | {इन्द्रियों का} वशकर्ता {निरंतर भ्रूमध्य आत्मा में स्थित हो,} मन से सब कर्मों को
संन्यस्य नवद्वारे पुरे न कुर्वन् | सम्पूर्ण त्यागकर, नौ द्वार वाले {शरीर रूपी} नगरे में {मानों कुछ} न करता हुआ
न कारयन् सुखं एव आस्ते | {और} न {मन सहित कर्मेन्द्रियों द्वारा} कराता हुआ सुखपूर्वक ही रहता है।

संन्यासात् कर्मयोगः विशिष्यते | त्याग से कर्म करते हुए याद {गृहस्थियों के लिए} विशेष अच्छी है।
ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति। निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात् प्रमुच्यते।। 5/3
महाबाहो यः न द्वेष्टि | हे सहयोगी रूपी दीर्घ भुजाओं वाले! जो न {प्राणीमात्र से} द्वेष करता है,
न कांक्षति स नित्यसंन्यासी | न इच्छा करता है, {गीता 6-4} वही {कर्मों का} सदा त्यागी संन्यासयोगी
ज्ञेयः हि निर्द्वन्द्वः बन्धात्सुखं प्रमुच्यते | जाना जाता है; क्योंकि द्वन्द्वरहित कर्मबंधन से पूरा ही सुखसे छूट जाता है।
साङ्ख्ययोगौ पृथक् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः। एकं अपि आस्थितः सम्यक् उभयोः विन्दते फलं।। 5/4
सांख्ययोगौ* पृथक् बालाः | *सांख्ययोग {केवल ज्ञान} और कर्मयोग- ये दोनों अलग हैं, {ऐसे} बालबुद्धि
प्रवदन्ति पण्डिताः न एकं अपि | कहते हैं; विद्वान लोग नहीं कहते। {सांख्य & कर्मयोग, दोनों से} एक में भी
सम्यक् आस्थितः उभयोः फलं विन्दते | भली प्रकार स्थित हुआ {सांख्य&योग} दोनों का फल पाता है।
*{सांख्य=(सं+आख्या)=संपूर्ण विस्तार से व्याख्या।} कांपिल्यवासी कपिलमुनि का मनन-चिन्तन ही 'सांख्य' है।
यत् साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तत् योगैः अपि गम्यते। एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति। 5/5
सांख्यैः यत् स्थानं प्राप्यते तत् | ज्ञान द्वारा जो पद मिलता है, वही {पद कर्मेन्द्रियों से कर्म करते I बाबा की याद में}
योगैः अपि गम्यते सांख्यं च | {अर्थात्} कर्मयोग द्वारा भी {वही राजपद} प्राप्त होता है। {अतः} सांख्य और
योगं यः एकं पश्यति स पश्यति | कर्मयोग को जो {गीता संविधान-अनुसार} एक देखता है, वह {सत्य} देखता है।
सन्न्यासः तु महाबाहो दुःखं आप्तुं अयोगतः। योगयुक्तो मुनिः ब्रह्म नचिरेण अधिगच्छति।। 5/6

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः। न कर्मफलसंयोगं स्वभावः तु प्रवर्तते।। 5/14

प्रभुः लोकस्य न कर्तृत्वं {अकर्ता & अर्जुन-देह में अनासक्त} **प्रभु** {भी} **सांसारिक कर्तापने के,** {अहंकार का}
न कर्माणि न कर्मफलसंयोगं **न कर्मों का** {और निरंतर आत्मस्थ सदाशिव की याद होने से} **न कर्मफल-संयोग का**
सृजति तु स्वभावः प्रवर्तते **सृजनकर्ता है; किंतु** {शूटिंग* में भी भोग वादी प्राणी}**-स्वभाव प्रवर्तित होता है।**

*{देखिए गीता 4-13 में पु.संगमयुग में ही कल्प-2 की शूटिंगप्रमाण ''चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।''}

न आदत्ते कस्यचित् पापं न च एव सुकृतं विभुः। अज्ञानेन आवृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।। 5/15

विभुः कस्यचित् न पापं च न **विशिष्ट जन्मा** {हल्का-फुल्का, अनासक्त} **प्रभु किसी के न पाप को और न**
सुकृतं एव आदत्ते अज्ञानेन **पुण्य को लेता है।** {खास आद्यशंकराचार्य द्वारा वितत सर्वव्यापी के} **अज्ञान से**
ज्ञानं आवृतं तेन जन्तवः मुह्यन्ति **ज्ञान ढका है, उससे** {पैदा हुए कलियुगी मोहान्धकार से} **प्राणी मोहित हैं;**

ज्ञानेन तु तत् अज्ञानं येषां नाशितं आत्मनः। तेषां आदित्यवत् ज्ञानं प्रकाशयति तत्परं।। 5/16

तु ज्ञानेन येषां आत्मनः **किंतु** {एकमात्र श्वेतवाहन अर्जुन-रथ में व्यापी के} **ज्ञान द्वारा जिनका आत्मा**
तदज्ञानं नाशितं तेषां तत् ज्ञानं {सो परमात्मा} **का वह अज्ञान नष्ट हो गया, उनका वह** {अव्यभिचारी} **ज्ञान**
परं आदित्यवत् प्रकाशयति **परम**{पिता शिव} **को** {अखूट ज्ञानप्रकाश का भंडारी} **सूर्य-जैसा दिखाता है।**

तद्बुद्धयः तदात्मानः तन्निष्ठाः तत्परायणाः। गच्छन्ति अपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः।। 5/17

तद्बुद्धयः तदात्मानः तन्निष्ठाः **उस** {कल्प-2 के एकव्यापी मुकर्रर अर्जुनरथ} **में बुद्धि से तृप्त हो, उसमें निष्ठावान**

महाबाहो संन्यासः तु अयोगतः **हे सहयोगियों रूपी महाबाहु! संन्यास तो कर्मयोग** {के प्रयोगात्मक अनुभव} **बिना,**
दुःखं आप्तुं योगयुक्तो मुनिः **दुःखपूर्वक प्राप्त होता है। योगयुक्त मननशील व्यक्ति** {कपिलमुनि की भाँति}
ब्रह्म नचिरेण अधिगच्छति **परंब्रह्म को शीघ्र ही पाता है।** {जैसे राजा जनक ने भी 1 सै. में जीवन्मुक्ति पाई थी।}

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः। सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन् अपि न लिप्यते।। 5/7

योगयुक्तः विशुद्धात्मा विजितात्मा **योगयुक्त,** {चित्त से} **विशेष शुद्ध, चंचल मन पर** {बुद्धि द्वारा} **विजयी,**
जितेन्द्रियः सर्वभूतात्मभूतात्मा **जितेन्द्रिय** {और अच्छे-बुरे} **सब प्राणियों में आत्मभाव वाला** {व्यक्ति}
कुर्वन् अपि लिप्यते न {कर्म} **करता हुआ भी** {उस अच्छे-बुरे कर्म में} **आसक्त नहीं होता।**

न एव कञ्चित् करोमि इति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्। पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन्।। 5/8
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन् उन्मिषन् निमिषन् अपि। इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्।। 5/9

युक्तः तत्त्ववित् इन्द्रियाणि **शिवबाबा की यादमग्न, तत्त्वों का जानकार,** {प्रकृतिकृत मुखादि} **इन्द्रियाँ,**
इन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् **इन्द्रियों के** {स्वाभाविक} **भोगों में लगी हुई हैं- ऐसा निश्चय करके**
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गच्छन् **देखते, सुनते, छूते, सूँघते, खाते, जाते,** {अर्थात् कर्मेन्द्रियों अथवा
स्वपन् श्वसन् प्रलपन् विसृजन् **सोते, श्वाँस लेते, बोलते,** {मल-मूत्र} **त्यागते,** ज्ञानेन्द्रियों से कुछ भी
गृह्णन् उन्मिषन् निमिषन् अपि {कुछ} लेते हुए, आँखें खोलते {और} **बन्द करते भी,** करते हुए अकर्ता है।}
किंचित् एव न करोमि इति मन्येत **कुछ भी नहीं करता, ऐसे मानता है।** {आत्मज्योति में स्थिर योगी अकर्ता है।}

निःस्पृहः युक्त इति उच्यते **इच्छा-रहित हुआ** {सहजराज} **'योगयुक्त', ऐसा कहा जाता है।**

यथा दीपो निवातस्थो न इङ्गते सा उपमा स्मृता। योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगं आत्मनः।। 6/19

यथा निवातस्थः दीपः न इंगते **जैसे वायुहीन स्थान में दीपक** {या सूक्ष्मदेहधारियों से, आत्मस्थ} **हिलता नहीं है,**
यतचित्तस्य आत्मनः योगं {वैसे ही} **वशीभूत मन-बुद्धि वाली आत्मा का लगाव** {परमात्मा से}
युंजतः योगिनः सा उपमा स्मृता **जुड़े** {पु. संगमयुगी} **योगी की वह** {दीपक की} **उपमा याद की जाती है।**

यत्र उपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया। यत्र च एव आत्मना आत्मानं पश्यन् आत्मनि तुष्यति।। 6/20

यत्र योगसेवया निरुद्धं चित्तं **जिस** {अवस्था} **में योगाभ्यास द्वारा नितान्त वशीभूत चित्त**
उपरमते च यत्र आत्मना **उपराम हो और जहाँ अपने मन-बुद्धि से** {भ्रूमध्य ज्योतिबिंदु}
आत्मानं पश्यन् आत्मनि एव तुष्यति **आत्मा को देखता हुआ आत्मा**{-परमात्मा} **में ही संतुष्ट होता है;**

सुखं आत्यन्तिकं यत् तत् बुद्धिग्राह्यं अतीन्द्रियं। वेत्ति यत्र न च एव अयं स्थितः चलति तत्त्वतः।। 6/21

बुद्धिग्राह्यं यत् आत्यन्तिकं अतीन्द्रियं **बुद्धिग्राह्य जो उत्कृष्टतम** {विष्णुलोकीय वैकुण्ठ के} **अतीन्द्रिय**
सुखं तत् अयं यत्र वेत्ति च स्थितः **सुख को यह** {योगी} **जहाँ जानता है &** {वहीं पर} **स्थिर हुआ,**
तत्त्वतः न एव चलति **तात्विक रूप से** {गीता-उद्धृत 23 तत्वों द्वारा} **कभी विचलित नहीं होता;**

यं लब्ध्वा च अपरं लाभं मन्यते न अधिकं ततः। यस्मिन् स्थितः न दुःखेन गुरुणा अपि विचाल्यते।। 6/22

च यं लब्ध्वा ततः अपरं लाभं **और जो** {अतीन्द्रिय सुख} **पाकर उससे दूसरे** {क्षणिक सांसारिक} **लाभ को**

निश्चरति ततः-2 एतत् **चलायमान हो, वहाँ-2 से इस** {मन} **को** {भली-भाँति प्रयत्नपूर्वक}
नियम्य आत्मनि एव वशं नयेत् **नियमित करके** {स्टार-जैसी ज्योतिबिंदु} **आत्मा के ही वश में ले आए;**

प्रशान्तमनसं हि एनं योगिनं सुखं उत्तमं। उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतं अकल्मषं।। 6/27

हि प्रशान्तमनसं शांतरजसं **क्योंकि भली-भाँति शान्त मन वाले & शांत रजोगुण वाले** {राजधारी}
एनं योगिनं ब्रह्मभूतकल्मषमुत्तमं सुखमुपैति **इस योगी को परंब्रह्मजनित&दोषरहित सर्वोत्तम सुख होता है।**

युञ्जन् एवं सदा आत्मानं योगी विगतकल्मषः। सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शं अत्यन्तं सुखं अश्नुते।। 6/28

एवं सदा आत्मानं युंजन् विगतकल्मषः योगी **ऐसे सदैव आत्मा को** {शिवबाबा से} **संयुक्त, पापरहित योगी**
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शं अत्यन्तं सुखं अश्नुते **सुख से परंब्रह्म का संपूर्ण स्पर्शयुक्त आत्यन्तिक सुख भोगता है।**

सर्वभूतस्थं आत्मानं सर्वभूतानि च आत्मनि। ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।। 6/29

योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः **परमात्मा की याद में लगा हुआ सर्वत्र समान* भाव होकर,** {दे. गीता* 5-18}
सर्वभूतस्थं आत्मानं च **सब प्राणियों में स्थित** {ज्योतिबिंदु में भरे रिकॉर्ड रूप} **आत्मा को अथवा**
सर्वभूतानि आत्मनि ईक्षते **सब प्राणियों को** {स्टार-जैसे} **आत्मरूप में** {बुद्धिनेत्र से} **देखता है।**

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्य अहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।। 6/30

यो सर्वत्र मां पश्यति च मयि **जो** {प्रेमी-जैसा} **सर्वत्र मुझे देखता है और** {बीज में वृक्ष-जैसे} **मुझ** {शिव+बाबा} **में**
सर्वं पश्यति अहं तस्य **सबको देखता है,** {जो हर आत्मा सो परमात्मा के अज्ञान से दूर है}**, मैं उससे** {कभी}

बंधुः आत्मा आत्मनः तस्य येन आत्मा एव आत्मना जितः। अनात्मनः तु शत्रुत्वे वर्तेत आत्मा एव शत्रुवत्।। 6/6

येनात्मनात्मा जितः तस्यात्मैव | जिसने अपनी मन-बुद्धि द्वारा ज्योतिबिंदु आत्मा को जीता है, उसकी आत्मा ही

आत्मनः बन्धुः त्वनात्मनः | अपना मित्र है, {अन्य कोई मित्र-शत्रु नहीं}; किंतु अनात्मस्थ देहाभिमानी का

आत्मैव शत्रुवत् शत्रुत्वे वर्तेत | मन-बुद्धि रूप आत्मा ही शत्रु की तरह शत्रुता करने में तत्पर रहता है।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः। शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः।। 6/7

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा | आत्मजयी परमशांत पुरुष की {परमपार्टधारी हीरो आत्मा} *{गीता15-17}

शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः समाहितः | सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख में तथा मान-अपमान में सन्तुष्ट रहती है।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः। युक्त इति उच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः।। 6/8

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थः | ज्ञान, विशेष ज्ञान=योग से तृप्त आत्मा, {परम्ब्रह्म के ऊँचे} शिखर पर स्थिर,

विजितेन्द्रियः समलोष्टाश्मकांचनः | विशेष कामेन्द्रिय को भी जीतने वाला, मिट्टी, पत्थर, स्वर्ण आदि में समान

योगी युक्तः इति उच्यते | योगी योगनिष्ठ है- ऐसा कहा जाता है। {ऐसों का ही 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' (गी.9-22)}

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु। साधुषु अपि च पापेषु समबुद्धिः विशिष्यते।। 6/9

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थ द्वेष्यबन्धुषु | स्नेही, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी वा बंधुजनों में,

साधुषु च पापेष्वपि समबुद्धिः विशिष्यते | साधू और पापियों में भी समान बुद्धि वाला विशेष माना गया है।

योगी युञ्जीत सततं आत्मानं रहसि स्थितः। एकाकी यतचित्तात्मा निराशीः अपरिग्रहः।। 6/10

मच्चित्तः मत्परः युक्त आसीत | मेरे में चित्त सहित आश्रित हो, {अव्यभिचारी इन्द्रियों सहित बाबा से} योग लगाए।

युञ्जन् एवं सदा आत्मानं योगी नियतमानसः। शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थां अधिगच्छति।। 6/15

नियतमानसः योगी एवं सदा | नियमित मन वाला योगी {अभी-2 बताया} ऐसे, सदैव {ज्योतिबिंदु}

आत्मानं युंजन मत्संस्थां | आत्मा को {शिवबाबा में} जोड़ता हुआ मुझमें स्थित {सदाकालीन अखूट}

निर्वाण परमां शान्तिं अधिगच्छति | निर्वाणधाम की परमशान्ति को {नं. वार पुरुषार्थानुसार} पा लेता है।

न अति अश्नतः तु योगः अस्ति न च एकान्तं अनश्नतः। न च अति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो न एव च अर्जुन।। 6/16

अर्जुन न तु अति अश्नतः च न | हे अर्जुन! न तो {बहुत आलस्य/नींद आने कारण} अधिक खाने वाले का और न

एकान्तं अनश्नतः योगः अस्ति च | {सभी भोगियों को भूख सताने से} बिल्कुल उपवास वाले का योग लगता है तथा

नाति स्वप्नशीलस्य च न जाग्रतः एव | न अधिक सोने वाले का और न पूरा जागने वाले का ही {योग लगता है}।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। 6/17

युक्ताहारविहारस्य कर्मसु युक्तचेष्टस्य | आहार-विहार में नियमित&कर्मों में युक्तियुक्त चेष्टावान का,

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगः दुःखहा भवति | नियमित निद्रालु&जाग्रत का योग दुःखहर्ता होता है।

यदा विनियतं चित्तं आत्मनि एव अवतिष्ठते। निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इति उच्यते तदा।। 6/18

यदा विनियतं चित्तं आत्मनि एव | जब विशेषतः {मन सहित 10 इन्द्रियों द्वारा} संयमित चित्त आत्मा में ही

अवतिष्ठते तदा सर्वकामेभ्यः | स्थिर हो जाता है, तब सब {प्रकार की सांसारिक} कामनाओं से

तथैव अन्तर्ज्योतिः ब्रह्मभूतः | वैसे ही आत्मज्योति वाला ब्रह्मलोक में {नं. वार पुरुषार्थ से} स्थित हुआ

स योगी ब्रह्मनिर्वाणं अधिगच्छति | वह योगी परम्ब्रह्म का {यहाँ ही वाणी रहित} निर्वाणपद पाता है।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणं ऋषयः क्षीणकल्मषाः। छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।। 5/25

क्षीणकल्मषाः छिन्नद्वैधाः यतात्मानः सर्वभूत | पापनाशक, द्विविधारहित, मन-बुद्धि का वशकर्ता, सर्व प्राणी-

हितेरताः ऋषयः ब्रह्मनिर्वाणं लभन्ते | कल्याण में आनन्दित ऋषिजन परंब्रह्म का निर्वाण पद पाते हैं।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसां। अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनां।। 5/26

कामक्रोधवियुक्तानां यतचेतसां | {लोभ-मोह, अहंकार एवं} काम-क्रोध से रहित, संयमित मन-बुद्धि वालों का

विदितात्मनां यतीनां | {और भ्रूमध्य में एकाग्र हुई स्टाररूप} आत्मज्योति के जानकार यतियों का

ब्रह्मनिर्वाणं अभितः वर्तते | ब्रह्मनिर्वाण पद यहाँ {पु.संगम में} & वहाँ {*विष्णुलोक&स्वर्ग में} भी होता है।

*{सतत्रेतायुगी 16 या 14 कला स्वर्ग में ज्ञानेन्द्रियाँ का और विष्णुलोकीय पु. संगमयुग में अतीन्द्रिय सुख होता है।}

स्पर्शान् कृत्वा बहिः बाह्यान् चक्षुः च एव अन्तरे भ्रुवोः। प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।। 5/27

यतेन्द्रियमनोबुद्धिः मुनिः मोक्षपरायणः। विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः।। 5/28

बाह्यान् स्पर्शान् बहिः एव कृत्वा च चक्षुः | बाहर के इन्द्रिय-भोगों को बाहर ही करके और आत्मनेत्र को

भ्रुवोः अन्तरे नासाभ्यन्तरचारिणौ | भृकुटि में, {सूंघासांघी वृत्ति से} संचारित नासिका के अंदर

प्राणापानौ समौ कृत्वा | {शुद्ध-अशुद्ध संकल्प रूप} प्राण-अपान वायु को समान कर,

तत्परायणाः ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः | & उसमें परमाधारित ज्ञान से {अव्यभिचारी योग द्वारा} पूर्णतः धुले पापों वाले,

अपुनरावृत्तिं गच्छन्ति | {दुखधाम में} पुनः वापस नहीं आते। {युधिष्ठिर जैसे सदेह सुखधाम जाते हैं।}

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि च एव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।। 5/18

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि | विद्या और विनयशील ब्राह्मण में, {सीधे स्वभाव की मानवीय} गाय में,

हस्तिनि च शुनि च श्वपाके | हाथी {जैसे देहंकारी में} & कुत्ते {जैसे महाकामी} में या कुत्ते को पकाने वाले

पण्डिताः एव समदर्शिनः | {महाक्रोधी चंडाल में} पण्डितजन ही {आत्मभाव से} समदर्शी होते हैं।

इह एव तैः जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः। निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्मात् ब्रह्मणि ते स्थिताः।। 5/19

येषां मनः साम्ये स्थितं तैः इह एव | जिनका मन समानता में स्थित है, उन्होंने यहाँ {दुःखधाम में} ही {सारे}

सर्गः जितः हि ब्रह्म निर्दोषं | संसार को {राजयोगबल से} जीता है; क्योंकि परंब्रह्म निर्दोष {और}

समं तस्मात् ते ब्रह्मणि स्थिताः | समान है। अतः वे {आत्मस्थ सहजराजयोगी} परंब्रह्म में {ही} स्थिर हैं।

न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य न उद्विजेत् प्राप्य च अप्रियं। स्थिरबुद्धिः असम्मूढो ब्रह्मवित् ब्रह्मणि स्थितः।। 5/20

प्रियं प्राप्य प्रहृष्येत् न | {जिसमें लगाव हो उस} प्रिय {वस्तु} को पाकर {भी} हर्षित नहीं होना चाहिए

च अप्रियं प्राप्य उद्विजेत् न | और {रागरहित या द्वेषभरा} अप्रिय पाकर {भी} दुःखी नहीं होना चाहिए।

असम्मूढः स्थिरबुद्धिः | {एकमात्र सदा अनासक्त शिवबाबा सिवा सभी में} मोहरहित {और} स्थिरबुद्धि

ब्रह्मवित् ब्रह्मणि स्थितः | परम्ब्रह्म-ज्ञाता, {*तुरीया} ब्रह्मतत्व {की उच्चतम स्थिति} में {ही} स्थिर है।

*गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु: गुरुर्देवो महेश्वर: । गुरु: साक्षात् परंब्रह्म {ऊर्ध्वमुखी ब्रह्मा} तस्मै श्रीगुरुवे नम: ।।

बाह्यस्पर्शेषु असक्तात्मा विन्दति आत्मनि यत् सुखं। स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखं अक्षयं अश्नुते।। 5/21

बाह्यस्पर्शेषु असक्तात्मा आत्मनि | **बाहरी विषय-भोगों में अनासक्त पुरुष,** {भूमध्य ज्योतिबिंदु} **आत्मा में**
यत् सुखं विन्दति स ब्रह्मयोग- | **जो** {मानसिक} **सुख पाता है, वह परम्ब्रह्म से** {सर्वसंबंधों की भासना से भी}
युक्तात्मा अक्षयं सुखं अश्नुते | **योगयुक्त हुआ** {इसी जीवन में} **अखूट** {अतीन्द्रिय} **सुख भोगता है।**

ये हि संस्पर्शजा भोगा दु:खयोनय एव ते। आद्यन्तवन्त: कौन्तेय न तेषु रमते बुध:।। 5/22

ये संस्पर्शजा: भोगा ते हि दु:खयोनय: | **जो इन्द्रिय-विषयों से उत्पन्न भोग हैं, वे ही दु:खों के जन्मदाता,**
आद्यन्तवन्त: एव कौन्तेय | **आदि-अंत वाले** {क्षणभंगुर} **ही हैं। हे** {देहभानहारिणी} **कुन्ती-पुत्र!**
बुध: तेषु न रमते | **बुद्धिमान् लोग उन** {भ्रष्ट इन्द्रियों के विषयों} **में रमण नहीं करते।**

शक्नोति इह एव य: सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात्। कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्त: स सुखी नर:।। 5/23

इह एव य: शरीरविमोक्षणात् | **इस** {लोक} **में ही जो पुरुष** {आत्मस्मृति से देहभान को या} **शरीर छूटने से**
प्राक् कामक्रोधोद्भवं वेगं सोढुं | **पहले काम-क्रोध से उत्पन्न हुए आवेग को सहने में** {या उद्वेगहीन रहने में}
शक्नोति स नर: युक्त: स सुखी | **समर्थ है, वह मनुष्य योगी है, वही सुखी है;** {नहीं तो भोगी & दु:खी है।}

य: अन्त:सुख: अन्तराराम: तथा अन्तर्ज्योति: एव य:। स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूत: अधिगच्छति।। 5/24

य: अन्त:सुख: अन्तराराम: | **जो अन्दरूनी सुखमय है, अन्त में** {सागर-जैसा शांत &} **आनन्दित है,**

यतेन्द्रियमनोबुद्धि: मोक्षपरायण: | **वशीभूत इन्द्रियों & मन-बुद्धि वाला, मुक्ति के आश्रित हुआ,**
विगतेच्छाभयक्रोध: य: मुनि: स: सदा मुक्तैव | **इच्छा, भय और क्रोधहीन जो मुनि है, वह सदामुक्त ही है।**

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरं। सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिं ऋच्छति।। 5/29

यज्ञतपसां भोक्तारं सर्वभूतानां | **यज्ञ-सेवाओं और आत्मस्मृति की तपस्या के** {आत्मसुख} **भोक्ता को, सब प्राणियों के**
सुहृदं मां सर्वलोकमहेश्वरं | **मित्रस्वरूप मुझ** {शिव समान बने जगत्पिता सहित} **त्रिलोकीनाथ* को**
ज्ञात्वा शांतिं ऋच्छति | **जानकर शांति को पाता है।** {ज्योतिबिंदु शिव सिर्फ अण्डे मिसल ब्रह्मांड का ईश्वर है।}

*{एकमात्र मूर्तिमान साकारी शंकर महादेव/जगत्पिता का ही नाम शिव सुप्रीम सोल के साथ जोड़ा जाता है। और किसी देवता, राक्षस, मनुष्य, प्राणी आदि का नाम सदा पर्दे के पीछे अदृश्य पार्टधारी डाइरैक्टर शिव निराकार के बाद और साथ नहीं जोड़ा जाता। इसलिए महादेव शंकर साकारी होने से सुख-दुख-शांतिधाम त्रिलोकीनाथ है।}

श्रीभगवानुवाच-अनाश्रित: कर्मफलं कार्यं कर्म करोति य:। स सन्न्यासी च योगी च न निरग्नि: न च अक्रिय:।। 6/1

य: कर्मफलं अनाश्रित: कार्यं कर्म | **जो कर्मफल का आश्रय न लेकर** {सच्चीगीता-मतानुसार} **करने योग्य कर्म**
करोति स संन्यासी च योगी च | **करता है, वह** {बेहद का} **संन्यासयोगी और कर्म** {करते भी} **योगी है; किन्तु**
निरग्नि: न च अक्रिय: न | **ज्ञान-योगाग्निहीन नहीं और** {निठल्ला बैठने वाला} **निष्क्रिय** {भी} **नहीं।**

यं सन्न्यासं इति प्राहु: योगं तं विद्धि पाण्डव। न हि असन्न्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन।। 6/2

पाण्डव यं संन्यासं इति प्राहु: | **हे पाण्डव! जिसको** {मन से} **संपूर्ण त्यागरूप=संन्यास ऐसा कहा जाता है,**

तं योगं विद्धि हि कश्चन | **उसको कर्मयोग समझो; क्योंकि कोई** {किसी इन्द्रिय से कुछ करता हुआ}
असंन्यस्तसंकल्प: योगी न भवति | **संकल्पों का संपूर्ण त्यागी नहीं है** {तो} **योगी नहीं होता;** {भोगी ही है।}

आरुरुक्षो: मुने: योगं कर्म कारणं उच्यते। योगारूढस्य तस्य एव शम: कारणं उच्यते।। 6/3

योगं आरुरुक्षो: मुने: कर्म | **योगयुक्त स्थिति में चढ़ने के इच्छुक मुनि के लिए** {अलौकिक होने से} **यज्ञकर्म**
कारणं उच्यते तस्य शम: एव | {ऊँची स्थिति का} **कारण कहा है** {और त्याग से} **उसके चित्त की शांति ही**
योगारूढस्य कारणं उच्यते | **योगारूढ़ के** {टिकने में} **कारण कही है;** {*'त्यागाच्छान्तिनन्तरं' (गी. 12-12)}

यदा हि न इन्द्रियार्थेषु न कर्मसु अनुषज्जते। सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी योगारूढ: तदा उच्यते।। 6/4

हि यदा सर्वसंकल्पसंन्यासी | **क्योंकि जब** {कामविकार के संकल्प सहित} **सब संकल्पों का संपूर्ण त्यागी,**
न कर्मसु न इन्द्रियार्थेषु | **न** {इन्द्रियों के} **कर्मों में** {और} **न इन्द्रिय** {के स्पर्श-रूप-रसादि विविध} **भोगों में**
अनुषज्जते तदा योगारूढ: उच्यते | **आसक्त होता है, तब योग** {की सर्वोच्च स्थिति में} **चढ़ा हुआ कहा जाता है।**

उद्धरेत् आत्मना आत्मानं न आत्मानं अवसादयेत्। आत्मा एव हि आत्मनो बंधु: आत्मा एव रिपु: आत्मन:।। 6/5

आत्मना आत्मानं उद्धरेदात्मानं | **अपने मन-बुद्धि द्वारा ज्योतिबिंदु आत्मा को ऊपर** {परमब्रह्म* में} **ले जाए।**
अवसादयेन्न हि आत्मैवात्मन: | **आत्मा को अधोगति में न जाने दे; क्योंकि आत्मा ही अपना** {सदाकाल}
बन्धु: आत्मा एव आत्मन: रिपु: | **मित्र है। आत्मा ही अपना शत्रु है।** *{त्रिदेव सद्गुरु नहीं हैं, परमब्रह्म ही है।}

• {जीवात्मा अपना ही मित्र है, अपना ही शत्रु है। (मु.ता.21.3.67 पृ.3)}

यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रह: योगी | **मन-बुद्धि को वश में करने वाला, आशाहीन, असंग्रही, योगी**
एकाकी रहसि स्थित: सततं आत्मानं युंजीत | **अकेला, एकांत स्थान में स्थित हुआ निरन्तर परमात्मा से योग लगाए।**

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरं आसनं आत्मन:। न अत्युच्छ्रितं न अतिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरं।। 6/11
तत्र एकाग्रं मन: कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रिय:। उपविश्य आसने युञ्ज्यात् योगं आत्मविशुद्धये।। 6/12

आत्मविशुद्धये शुचौ देशे चैलाजिन | **आत्मा की विशेष शुद्धि हेतु पवित्र स्थान में, वस्त्रसहित मृगचर्म**
कुशोत्तरं नातिनीचं नात्युच्छ्रितं | **कुशाघास पर बिछाए, न अति नीचा, न अति ऊँचा**
आत्मन: स्थिरं आसनं प्रतिष्ठाप्य तत्रासने | {अभ्यासपूर्वक} **अपना स्थिर आसन जमाकर, उस आसन पर**
उपविश्य मन: एकाग्रं कृत्वा | **बैठकर, मन को एकाग्र करके** {इसप्रकार विशेषत: संन्यासयोगी}
यतचित्तेन्द्रियक्रिय: योगं युंज्यात् | **चित्त, इन्द्रिय-क्रिया का वशकर्ता** {1 मात्र अर्जुनव्यापी शिव से} **योग लगाए।**

समं कायशिरोग्रीवं धारयन् अचलं स्थिर:। संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्च अनवलोकयन्।। 6/13
प्रशान्तात्मा विगतभी: ब्रह्मचारिव्रते स्थित:। मन: संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्पर:।। 6/14

स्थिर: कायशिरोग्रीवं सममचलं धारयन् | **स्थिर हुआ शरीर, सिर&गर्दन को एक सीध में अडोल रखते हुए**
च स्वं नासिकाग्रं संप्रेक्ष्य | **और अपनी** {भृकुटि-मध्य से} **नासिकाग्र में संपूर्ण खुली आँखों से**
दिशोऽनवलोकयन्प्रशान्तात्मा विगतभी: | **दिशाओं को न देखता हुआ, प्रशान्तचित्त हुआ, निर्भय** {और}
ब्रह्मचारिव्रते स्थित: मन: संयम्य | {कर्मयोगी हो, दृढ़ता से आत्मस्थ बन} **ब्रह्मचर्य व्रत में स्थिर हुआ, एकाग्र मन से**

मूढा मानुषीं तनुं आश्रितं	**मूर्खलोग अर्जुन/आदम के** {साधारण और मुर्कर} **शरीर का आधार लेने वाले**
मां भूतमहेश्वरं अवजानन्ति	**मुझ प्राणियों के महेश्वर शिवबाबा की** {मुझ व्यक्त स्वरूप सहित}**, अवज्ञा करते हैं,**
मम परं भावं अजानन्तः	**मेरे श्रेष्ठतम** {ज्योतिर्लिंग} **परमात्मभाव को** {भी पूरी तरह} **नहीं जानते।**

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः। राक्षसीं आसुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।। 9/12

मोघाशा	{फोकट का धन मिलने से} **व्यर्थ आशा वाले,** {चोरी-चकारी, रिश्वत-जैसे}
मोघकर्माणः मोघज्ञाना विचेतसः	**व्यर्थ कर्म वाले*, व्यर्थ ज्ञान वाले,** {रावण की} **विपरीत बुद्धि वाले लोग,**
राक्षसीं आसुरीञ्च मोहिनीं	**राक्षसी, आसुरी और मोहित करने वाली** {तामसी तत्वोंवाली दैहिक जड़}
प्रकृतिं एव श्रिताः	**प्रकृति के** {स्वभाव को} **ही धारण करते हैं,** {शिवसमान परमात्मा को भी भूल जाते हैं।}

* {दिल्ली-जैसी विश्वप्रसिद्ध राजधानी की बड़ी-2 आलीशान बहुमंजिला, सच्ची गीता के इसी धार्मिक-आध्यात्मिक कार्यों में लगाई गई बीसियों वर्ष पुरानी इमारतों को खण्डहर बनाने के बाद, ऊपर से लाखों का प्रॉपर्टी टैक्स डकारने के इच्छुक, और पचासियों बालिग कन्याओं को रातोंरात रिस्क्यू कराने के बहाने 4-4 माह तक बंधक बनाने और उन्हों के मना करने पर भी कुमारीत्व के परीक्षण का जीजान से प्रयास करने के व्यर्थ कर्मी बन जाते हैं।}

महात्मानः तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिं आश्रिताः। भजन्ति अनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिं अव्ययं।। 9/13

तु पार्थ दैवीं प्रकृतिं आश्रिताः	**किंतु हे पृथ्वीराज! दैवीय स्वभाव को धारण करने वाले** {काशी-कैलाशवासी}
महात्मानः भूतादिं अव्ययं मां	{रुद्रगण रूप} **महात्माएँ प्राणियों के आद्यविनाशी मुझ** {शिवबाबा} **को**

अहं अग्निः अहं एव हुतं	**मैं ज्ञान-योगाग्नि हूँ। मैं ही** {तन-धन-समय-सम्बंधादि की त्यागरूप} **आहुति हूँ।***

*{आदिदेव आदम ही सारी जड़-चेतन सृष्टि का बीज है, जिसमें सारा ही विराटपुरुष या सृष्टिवृक्ष समाया हुआ है।}

पिता अहं अस्य जगतो माता धाता पितामहः। वेद्यं पवित्रं ओङ्कारः ऋक् साम यजुः एव च।। 9/17

अस्य जगतः पिता	**इस जगत् का** {1 मात्र बीजरूप} **जगत्पिता** {शिवबाबा, सच्चीगीता ज्ञानामृत से}
माता धाता	{पालनकत्री परंब्रह्म रूपा} **माता &** {कर्मफल} **विधाता** {धर्मराज/युधिष्ठिर}**,**
पितामहः	{वैसे ही धर्मपिताओं-जैसे} **बापों का बाप/बाबा** {आदम, मनुष्यमात्र का}
वेद्यं पवित्रं ओंकारः च	**जानने योग्य पवित्र ऊँकार** {त्रिमूर्ति शिवबाबा} **और** {परमप्रसिद्ध वैदिक धर्मग्रंथों में}
ऋक् साम यजुः अहं एव	**ऋक्-साम-यजुर्वेद** {का अखूट 'ज्ञान-भंडार' निराकार सो साकार शिव} **मैं ही हूँ।**

गतिः भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजं अव्ययं।। 9/18

गतिः भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः	{मैं शिवबाबा ही} **गति, पति, स्वामी, साक्षी,** {परम} **आश्रय,**
शरणं सुहृत् प्रभवः प्रलयः स्थानं	**शरणागतवत्सल, मित्र, उत्पत्ति, विनाश, स्थिति** {रूप त्रिमूर्ति निर्मित}
निधानं अव्ययं* बीजं	{जड़-चेतन सृष्टि का} **गोदाम = अविनाशी** {अश्वत्थवृक्ष का} **बीज** {हूँ}।

* {इस सृष्टि में सदाकायम कोई चीज़ है नहीं। (मु.ता.2/1/75 पृ.3 अंत) महाविनाश में निराकार सदाशिव परमपिता समान दिव्यमूर्ति शंकर उर्फ शिवबाबा ही हीरो पार्टधारी के रूप में ऑलराउंड चतुर्युगी में कायम है।}

तपामि अहं अहं वर्षं निगृह्णामि उत्सृजामि च। अमृतं चैव मृत्युश्च सत् असत् च अहम् अर्जुन।। 9/19

पार्थ सर्वभूतानां सनातनं	**हे पृथ्वीश्वर! सब प्राणियों का** {आदि पुरुषोत्तम संगम का} **सनातन**
बीजं मां विद्धि बुद्धिमतां	**बीज** {शिवबाबा} **मुझको जान।** {सभी धर्मपिताओं-जैसे} **बुद्धिमानों की**
बुद्धिः तेजस्विनां तेजः अहमस्मि	**बुद्धि** {और} **तेजस्वियों का** {नं. वार योगऊर्जा रूप} **तेज** {भी} **मैं हूँ।**

बलं बलवतां च अहं कामरागविवर्जितं। धर्माविरुद्धो भूतेषु कामः अस्मि भरतर्षभ।। 7/11

अहं बलवतां कामराग-	**मैं** {सदा-सर्वदा शिवबाबा ही} **बलवानों का काम&आसक्ति से**
विवर्जितं बलं च भरतर्षभ	**सर्वथा रहित बल हूँ और हे भरतश्रेष्ठ!** {आत्मरूप में सदा स्थिर}
भूतेषु धर्माविरुद्धः कामोऽस्मि	**प्राणियों में धर्मानुकूल** {स्त्री-संग की अहिंसक सुखदायी} **कामना हूँ।**

ये चैव सात्त्विका भावा राजसाः तामसाश्च ये। मत्त एव इति तान् विद्धि न तु अहम् तेषु ते मयि।। 7/12

चैव ये सात्त्विका राजसाश्च तामसाः	**और भी जो** {संसार में क्रमशः} **सात्विक, राजसी और तामसी**
भावा तान् मत्त एव इति विद्धि	**भाव हैं, उनको मेरे** {काशीकैलाशी वासी} **से ही हैं- ऐसा जान।**
अहं तेषु न तु ते मयि	**मैं** {सदाशिव} **उनमें** {व्यापी} **नहीं; किन्तु वे मेरी** {मूर्ति} **में हैं।**

त्रिभिः गुणमयैः भावैः एभिः सर्वं इदं जगत्। मोहितं न अभिजानाति मां एभ्यः परं अव्ययं।। 7/13

एभिः त्रिभिः गुणमयैः भावैः	{महादेव के सत-रज-तम} **इन तीन गुणयुक्त भावों द्वारा,** {अज्ञान से}
मोहितं इदं सर्वं जगत् एभ्यः परं	**मोहित हुआ यह सारा संसार इन** {गुणों} **से परे** {अधोमुखी सृष्टि में भी} **परे**
मां अव्ययं न अभिजानाति	**मुझ अविनाशी** {सर्व से न्यारी सदाशिव-ज्योति} **को नहीं जान पाता।**

सहस्रेषु मनुष्याणां कश्चित् सिद्धये	**हज़ारों** {पुण्यशील} **मनुष्यात्माओं में कोई एक सिद्धि के लिए** {लगातार}
यतति यततां सिद्धानां अपि मां	**यत्न करता है। यत्न करने वाले सिद्धों में भी मुझको** {कपिलमुनि-जैसा}
कश्चित् तत्त्वतः वेत्ति	**कोई ही यथार्थ रीति** {शिवज्योति निराकार को साकार में} **जान पाता है।**

भूमिः आपः अनलः वायुः खं मनो बुद्धिः एव च। अहङ्कारः इति इयं मे भिन्ना प्रकृतिः अष्टधा।। 7/4

भूमिः आपः वायुः अनलः खं	**पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश,** {इन पाँचों जड़ तत्वों सहित}
मनो बुद्धिः च अहंकार एव इति	{अदर्शनीय&चेतन} **मन-बुद्धि और अहंकार भी- इस तरह**
इयं मे प्रकृतिः अष्टधा भिन्ना	**यह मुझ** {शिव+बाबा की} **प्रकृष्ट+कृति आठ प्रकार से विभक्त है।**

अपरा इयं इतः तु अन्यां प्रकृतिं विद्धि मे परां। जीवभूतां महाबाहो यया इदं धार्यते जगत्।। 7/5

महाबाहो इयं अपरा तु इतः	**हे दीर्घबाहु! यह** {अर्जुनरथ} **नीची प्रकृति है; किंतु इस** {जड़प्रकृति} **के**
अन्यां मे जीवभूतां प्रकृतिं परां	**अलावा मेरी जीवंत प्राणीभाव की** {योग-ऊर्जारूपा आत्म-}**प्रकृति को श्रेष्ठ**
विद्धि यया इदं जगत् धार्यते	**जान, जिससे यह** {जड़-चेतन प्राणीमात्र} **जगत् धारण किया जाता है।**

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणि इति उपधारय। अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयः तथा।। 7/6

सर्वाणि भूतानि एतद्योनीनि	{स्त्री-पुरुष रूप} **प्राणियों का यह** {मूर्तिरूप देह+शिवसमान ज्योति} **उद्गम है,**
इत्युपधारय अहं कृत्स्नस्य	**ऐसा** {तू} **जान ले** {और} **मैं** {शिव+बाबा} **समस्त** {जड़-जंगम प्राणीमात्र}
जगतः प्रभवः तथा प्रलयः	**जगत् का** {इस पुरुषोत्तम संगमयुग में} **उत्पत्तिकर्ता तथा विनाशकर्ता हूँ।**

दैवी हि एषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मां एव ये प्रपद्यन्ते मायां एतां तरन्ति ते।। 7/14

हि एषा मम गुणमयी दैवी | **निश्चय ही यह मेरी त्रिगुणमयी** {*शंकर वाली} **दैवी** {महरौली की महा}

माया दुरत्यया ये मां एव | **माया पार करना कठिन है। जो** {तन-मन-धनादि सर्व रूप से} **मेरी ही**

प्रपद्यन्ते ते एतां मायां तरन्ति | **शरण लेते हैं, वे** {अष्टमूर्ति देवात्माएँ} **इस माया को पार कर जाते हैं।**

*{शंकर क्या करते हैं? उनका पार्ट ऐसा वण्डरफुल है जो तुम विश्वास कर न सको। (मु.ता.14.5.70)}

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः। मायया अपहृतज्ञानाः आसुरं भावं आश्रिताः।। 7/15

मायया अपहृतज्ञानाः आसुरं | **माया द्वारा जिनका ज्ञान हर लिया गया है,** {वे द्वैतवादी दैत्य} **आसुरी**

भावं आश्रिताः दुष्कृतिनो | **भावों के आश्रित हुए,** {भ्रष्टइन्द्रियों की हिंसा वाले} **दुष्कर्मी** {और}

नराधमाः मूढाः मां न प्रपद्यन्ते | {नर-निर्मित नरक के} **नीच मनुष्य/मूर्ख लोग मेरी शरण में नहीं आते।**

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनः अर्जुन। आर्तो जिज्ञासुः अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। 7/16

भरतर्षभ अर्जुन चतुर्विधाः सुकृतिनः | **हे भरतवंश में श्रेष्ठ अर्जुन! चार प्रकार के पुण्यकर्मी** {क्षीणपापा}

जनाः मां भजन्ते आर्तः जिज्ञासुः | **लोग 'मुझको' याद करते हैं- विपत्तिग्रस्त, कुछ जानने के इच्छुक,**

अर्थार्थी च ज्ञानी | **धनार्थी और** {सब-कुछ जानने-समझने के प्रयासी} = **ज्ञानी।**

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिः विशिष्यते। प्रियः हि ज्ञानिनः अत्यर्थं अहं स च मम प्रियः।। 7/17

तेषां एकभक्तिः | **उनमें एक** {हीरो पात्रधारी शिवज्योति की अव्यभिचारी} **याद वाला**

मत्तः परतरं न अन्यत् किञ्चित् अस्ति धनञ्जय। मयि सर्वं इदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। 7/7

धनंजय मत्तः परतरं अन्यत् किंचित् | **हे ज्ञानधनजेता अर्जुन! मेरे से श्रेष्ठतर** {सारे संसार में} **अन्य कुछ भी**

न अस्ति सूत्रे मणिगणाः इव इदं | **नहीं है। धागे में** {रुद्राक्ष के} **पिरोए मणकों-जैसा यह** {प्राणियों का}

सर्वं मयि प्रोतं | **सारा** {जगत्} **मेरी** {नं. वार प्रीति के धागे में} **पिरोया हुआ है।**

{सदा शिवज्योति समान बनी अर्जुन/आदम की आत्मज्योति परा प्रकृति+शंकर-मूर्तिरूप अपरा प्रकृति ही संपूर्ण जगत् की उत्पत्ति, पालना और विनाश, तीनों का अविनाशी आधार है।} (यही बात पीछे देखें, गीता 7-5)

रसः अहं अप्सु कौन्तेय प्रभा अस्मि शशिसूर्ययोः। प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।। 7/8

कौन्तेय अप्सु रसः अहं | **हे** {आत्माभिमानी} **कुंती के पुत्र अर्जुन!** {ज्ञान}**जल में रस मैं** {हूँ}।

शशिसूर्ययोः प्रभास्मि सर्ववेदेषु | {चैतन ज्ञान-}**सूर्य & चन्द्रमा की कान्ति मैं हूँ। सब वेदों में** {अ+उ+म रूप}

प्रणवः खे शब्दः नृषु पौरुषं | **ऊँकार, आकाश में शब्द & पुरुषों में पुरुषत्व** {जगत्पिता द्वारा मैं शिवज्योति हूँ}।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्च अस्मि विभावसौ। जीवनं सर्वभूतेषु तपश्च अस्मि तपस्विषु।। 7/9

पृथिव्यां पुण्यः गन्धः च विभावसौ | {योगऊर्जा से} **पृथ्वी माता में पवित्र सुगन्ध और अग्नि** {देवात्मा} **में**

तेजः अस्मि च सर्वभूतेषु जीवनं च | {योग-ऊर्जा का} **तेज हूँ और प्राणीमात्र में जीवनीशक्ति और**

तपस्विषु तपः अस्मि | **तपस्वियों में** {आत्मस्मृति की} **तपशक्ति** {शिवज्योति मैं ही} **हूँ।**

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनं। बुद्धिः बुद्धिमतां अस्मि तेजः तेजस्विनां अहं।। 7/10

स्वां प्रकृतिं अवष्टभ्य | **मैं अपने** {महादेव के रथ/देहरूप अपरा} **प्रकृति को वश में रखकर** {इस}

प्रकृतेः वशात् अवशं इमं कृत्स्नं | {पतनोन्मुखी} **प्रकृति की आधीनता से पराधीन इस सम्पूर्ण** {जड़-चेतन}

भूतग्रामं पुनः-2 विसृजामि | **प्राणी समुदाय को हर कल्प में** {परंब्रह्मा द्वारा सृजनार्थ} **छोड़ता हूँ।**

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय। उदासीनवत् आसीनं असक्तं तेषु कर्मसु।। 9/9

च धनंजय तानि कर्माणि मां | **और हे ज्ञानधनजयी अर्जुन! वे कर्म मुझ** {सदाशिवज्योति अकर्ता को},

उदासीनवत् आसीनं न | **उदासीन के समान** {अभोक्ता} **रहने वाले को** {मुकर्रर पतित रथ में भी} **नहीं**

निबध्नन्ति तेषु कर्मसु असक्तं | **बाँधते;** {क्योंकि मैं} **उन कर्मों में** {सदा निराकारी होने से} **अनासक्त हूँ।**

मया अध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरं। हेतुना अनेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते।। 9/10

कौन्तेय मया अध्यक्षेण | **हे कुन्ती-पुत्र!** {कल्पादिकाल की शूटिंग में} **मेरी अध्यक्षता द्वारा** {अर्जुन/आदम की}

प्रकृतिः सचराचरं | {यादशक्ति से शिवसमान बनी आत्मज्योति+लिंग/देह} **-प्रकृति जड़-चेतन सहित**

सूयते अनेन हेतुना | {बीजरूप रुद्रगण} **पैदा करती है; इस कारण से** {अधोमुखी अश्वत्थ सृष्टिवृक्ष का}

जगत् विपरिवर्तते | **जगत्** {ऊर्ध्वमुखी} **विपरीति* गति में** {परमात्म-योगबल द्वारा} **परिवर्तित होता है।**

*{अभी सबको नं. वार योगबल से 84 के चक्र में उल्टी सीढ़ी चढ़नी ही पड़ेगी; क्योंकि सभी भोगी देव+असुरों ने अपनी ज्योतिबिंदु आत्मा को नं. वार जन्मों में इन्द्रियों से सुख भोगते-2 अधोगति में डाला है।}

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुं आश्रितं। परं भावं अजानन्तो मम भूतमहेश्वरं।। 9/11

ज्ञात्वा अनन्यमनसो भजन्ति | **पहचानकर** {इस पु.संगम में} **अव्यभिचारी मन से अनवरत याद करते हैं।**

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः। नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते।। 9/14

सततं मां भक्त्या कीर्तयन्तः च | {वे} **निरंतर मेरा श्रद्धाभक्तिपूर्वक गुणगान करते हुए और** {यतेन्द्रिय बन}

यतन्तः दृढव्रताः च नमस्यन्तः | **यत्नपूर्वक** {ब्रह्मचर्य में} **दृढ़व्रत वाले तथा विनम्र रहते हुए** {सदा निर्माणचित्त}

नित्ययुक्ता मां उपासते | {ऐसे} **सदायोगी मुझ** {शिवबाबा} **की** {लगन से} **उपासना करते हैं।**

ज्ञानयज्ञेन च अपि अन्ये यजन्तो मां उपासते। एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखं।। 9/15

अन्ये अपि एकत्वेन च पृथक्त्वेन | **दूसरे** {सामान्य भक्त लोग} **भी अद्वैत भाव से अथवा द्वैत भाव से** {भी इस}

ज्ञानयज्ञेन विश्वतोमुखं | **ज्ञानयज्ञ द्वारा विश्वव्यापी पंचमुखी** {ब्रह्मा सो विष्णु/पंचमुखी महादेव मानकर}

यजन्तः मां बहुधा उपासते | **यज्ञसेवा करते हुए मेरी** {ही} **अनेक प्रकार से दैहिक** {मूर्तियों में} **उपासना करते हैं।**

{पंचानन ब्रह्मा सो पंचमुखी महादेव सो चतुर्भुजी विष्णु। विष्णु की 4 सहयोगी आत्माओं रूप जड़ भुजाएँ दिखाई हैं; किंतु 5वें मुख की चैतन्य संचालक अव्यक्त आत्मा दिखाई नहीं देती। बाकी अभोक्ता शिव निराकार ज्योति तो सदा अमूर्त है।}

अहं क्रतुः अहं यज्ञः स्वधा अहं अहं औषधं। मन्त्रः अहं अहं एव आज्यं अहं अग्निः अहं हुतं। 9/16

अहं क्रतुः अहं यज्ञः अहं | **मैं क्रतुराज हूँ। मैं** {तन-धनादि की} **यज्ञ**{सेवा} **हूँ।** {परमात्मस्मृति रूप}

स्वधा अहं औषधं | **मैं** {ही आत्मा का} **अन्न हूँ। मैं** {रोगी/विकारी आत्माओं की ज्ञान-योगरूप} **औषधि हूँ।**

अहं मंत्रः अहं आज्यं | **मैं** {मन्मनाभव} **महामंत्र हूँ। मैं** {अर्पण योग्य अव्यभिचारी स्मृति रूप} **घृत हूँ।**

न एते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन। तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भव अर्जुन।। 8/27

पार्थ एते सृती जानन् कश्चन योगी | **हे पृथ्वीराज! इन दोनों मार्गों को जानने वाला कोई योगी** {कृष्णगति के}

न मुह्यति तस्मात् अर्जुन सर्वेषु | **मोहान्धकार को नहीं पाता। इस कारण हे अर्जुन! सभी** {युगों की शूटिंग}

कालेषु योगयुक्तः भव | **काल में** {अर्जुन/आदम में आए सुप्रीम बाप शिवज्योति से} **योग लगा।**

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत् पुण्यफलं प्रदिष्टं। अत्येति तत् सर्वं इदं विदित्वा योगी परं स्थानं उपैति च आद्यं।। 8/28

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु च दानेषु | **वेदों में,** {भौतिक} **यज्ञों में, दैहिक तप में और** {सांसारिक} **दान में**

एव यत् पुण्यफलं प्रदिष्टं योगी | **भी जो पुण्यफल बताया गया है, सहजराजयोगी** {पुरुषोत्तम संगम में ही}

इदं विदित्वा तत् सर्वं अत्येति | **यह** {एडवांस ज्ञान} **जानकर, उस सारे** {कर्मकांड} **के पार चला जाता है**

च आद्यं परं स्थानं उपैति | **और आदिकालीन** {विष्णुलोकीय} **परमपद को प्राप्त कर लेता है।**

श्रीभगवानुवाचः-इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्यामि अनसूयवे। ज्ञानं विज्ञानसहितं यत् ज्ञात्वा मोक्ष्यसे अशुभात्।। 9/1

अनसूयवे ते विज्ञानसहितं | {गुणों में} **दोष न देखने वाले तुझको योग रूपी विशेषज्ञान** {विज्ञान} **सहित,**

गुह्यतमं इदं ज्ञानं प्रवक्ष्यामि तु | {बेसिक ज्ञान से भी} **अत्यन्त गुप्त इस** {एडवांस गीता-}**ज्ञान को बताऊँगा कि**

यत् ज्ञात्वा अशुभात् मोक्ष्यसे | **जिसको जानकर पाप/दुःख से** {स्वर्ग में ढाई हज़ार वर्ष तक} **मुक्त हो जाएगा।**

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रं इदं उत्तमं। प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुं अव्ययं।। 9/2

इदं राजविद्या राजगुह्यं | **यह** {एडवांस गीताज्ञान} **राजाओं की विद्या है, राजाई का रहस्य है,** {अत्यंत}

भूतभावनः | लिंगमूर्तिरूप योग की खुराक से} **प्राणियों को पैदा करने वाली,** (गी.3-14)

भूतभृत् मम | {सच्चे गीता-ज्ञान से} **प्राणियों का भरण-पोषणकत्री मेरी** {अजन्मा-अभोक्ता}

आत्मा भूतस्थो च न | {निराकारी ज्योतिबिंदु} **आत्मा** {उन जड़-जंगम} **प्राणियों में स्थित भी नहीं है।**

यथा आकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्। तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानि इति उपधारय।। 9/6

यथा नित्यं सर्वत्रगः महान् वायुः | **जिस तरह निरंतर सब जगह जाने वाली** {जड़त्वमयी} **अदृश्य महान वायु**

आकाशस्थितः तथा सर्वाणि | **आकाश में स्थित है, वैसे ही सभी** {स्वर्गीय+नारकीय संसारी}

भूतानि मत्स्थानि इत्युपधारय | **प्राणी मेरे स्थान** {लिंगमूर्ति महादेव} **में हैं। ऐसी** {मानवीय बीज महादेव में सृष्टिवृक्ष की} **धारणा कर लो।** {अन्यथा 1 मुखी रुद्राक्ष विरल प्राप्य तो है ही।}

{समूची मानवीय सृष्टि का बीज एकमात्र अर्जुन/आदम में मूर्तिमान शिवबाबा ही कैलाशीवासी ऊँची स्थिति में हीरो है।}

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकां। कल्पक्षये पुनः तानि कल्पादौ विसृजामि अहं।। 9/7

कौन्तेय कल्पक्षये सर्व | **हे कुन्ती-पुत्र! कल्पान्तकाल में सभी** {देव-दानव, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे आदि}

भूतानि मामिकां प्रकृतिं | **प्राणीमात्र मेरी** {पराज्योति शिवसमान हीरा+अपरा लिंगरूप देह की} **प्रकृष्ट रचना**

यान्ति कल्पादौ | {सहित परंब्रह्मा की ज्योति में समा} **जाते हैं** {और} **कल्प के आदिकाल में**

अहं तानि पुनः विसृजामि | **मैं शिवबाबा उन्हें पुनः** {अग्रिम कल्प (चतुर्युगी) में} **सृजन के लिए छोड़ देता हूँ।**

प्रकृतिं स्वां अवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः। भूतग्रामं इमं कृत्स्नं अवशं प्रकृतेः वशात्।। 9/8

तेषां अल्पमेधसां तु तत् फलं | **उन अल्पबुद्धि/बेसमझ लोगों का तो वह फल** {अल्पकालीन}

अन्तवत् भवति देवयजः देवान् | **विनाशी होता है;** {क्योंकि} **देवयाजी** {नं. वार बने} **देवात्माओं को**

यान्ति मद्भक्ताः मां अपि यान्ति | **पाते हैं** {और} **मेरे भक्त मुझ** {सर्वोत्तम शिवबाबा} **को ही पाते हैं।**

अव्यक्तं व्यक्तिं आपन्नं मन्यन्ते मां अबुद्धयः। परं भावं अजानन्तः मम अव्ययं अनुत्तमं।। 7/24

अबुद्धयः मां अव्यक्तं व्यक्तिं | **बेसमझ लोग मुझ अव्यक्त** {शिवबाबा} **को व्यक्त** {चतुर्मुखी ब्रह्मा या संदेशी में}

आपन्नं मन्यन्ते मम अव्ययं परं | **आया हुआ मानते हैं** {और} **मेरे** {84 के चक्र में सदा} **अविनाशी परंब्रह्म के**

अनुत्तमं भावं अजानन्तः | **सर्वोत्तम भाव को नहीं पहचान पाते।** {अंतः प्रजावर्ग में पराधीन रहते हैं।}

{निराकारी चेहरे के बुद्ध-क्राइस्टादि को ही न पहचानने कारण धर्म के धक्के खिलाते हैं, तो अविनाशी सत्य सनातन सद्धर्म के धर्मस्थापक 'अल्लाह अव्वल दीन' सुप्रीम शिव+बाबा को कैसे पहचानेंगे! छुपा रुस्तम तो बाद में ही खुलेगा ना!}

न अहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः। मूढः अयं न अभिजानाति लोको मां अजं अव्ययं।। 7/25

योगमायासमावृतः अहं सर्वस्य | **योगमाया से ढका हुआ मैं** {शिवबाबा} **सब** {आत्माओं} **के लिए**

प्रकाशः न अयं मूढः लोको मां | **प्रगट नहीं हूँ। यह** {'श्रुतिविप्रतिपन्ना' (गीता 2-53)} **मूर्ख संसार मुझ**

अजं अव्ययं न अभिजानाति | **अगर्भा, अविनाशी** {शिवसमान बने बाबा विश्वनाथ} **को नहीं जान पाता।**

वेद अहं समतीतानि वर्तमानानि च अर्जुन। भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन।। 7/26

अर्जुन अहं समतीतानि च | **हे अर्जुन! मैं** {अखूट ज्ञान का भंडार शिवज्योति} **भूतकालीन और**

नित्ययुक्तः ज्ञानी विशिष्यते हि ज्ञानिनः | **सदा योगी, ज्ञानी** {त्रिनेत्री महादेवात्मा} **विशेष श्रेष्ठ है; क्योंकि ज्ञानी को**

अहं प्रियः च स मम अत्यर्थं प्रियः | **मैं प्रिय हूँ और वह** {मेरा अखूट ज्ञानवारिस} **मुझको अति प्रिय है।**

• {बाबा कहते ज्ञानी तू (1) आत्मा ही मुझे (सदाशिव को) अति प्रिय है। ऐसे नहीं कि योगी प्रिय नहीं है। जो (जितना) ज्ञानी होगा वह (उतना) योगी भी जरूर होगा। (मु.ता.4.12.88 पृ.2 मध्य)} {'ज्ञानी प्रभुहिं विशेष पियारा'}

उदाराः सर्व एव एते ज्ञानी तु आत्मा एव मे मतं। आस्थितः स हि युक्तात्मा मां एव अनुत्तमां गतिं।। 7/18

एते एव उदाराः तु ज्ञानी आत्मा | {यों तो} **ये चारों ही उत्कृष्ट हैं; किन्तु** {सम्पूर्ण} **ज्ञानी** {तो मेरी} **आत्मा**

एव मे मतं हि स युक्तात्मा मां | **ही हैं-**{ये} **मेरा मत है। क्योंकि वह योगीश्वर मुझ** {शिव ज्योति की}

अनुत्तमां गतिं एव आस्थितः | **सर्वोत्तम गति में ही *आधारित है।** {इसीलिए संगठित चतुर्मुखी ब्रह्मा को हज़ार भुजा & याद के पुरुषार्थी शंकर को सहयोगी भुजाएँ नहीं दिखाते।}

*{"जिनके कछु और आधार नहीं तिनके तुम ही रखवारे हो।" (तु.रामायण) और तो सभी सीताएँ हैं जो अपरा प्रकृति+माया के आधीन हो जाते हैं। इसलिए प्रतिफलरूप आज भी गाँवों में गाते हैं- 'राजा 1 राम, भिखारी सारी दुनियाँ'}

बहूनां जन्मनां अन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते। वासुदेवः सर्वं इति स महात्मा सुदुर्लभः।। 7/19

ज्ञानवान् बहूनां जन्मनां अन्ते मां | **ज्ञानी बहुत** {अर्थात् 84} **जन्मों के** {अंत के भी} **अन्त में मुझको** {ही}

प्रपद्यते सर्वं वासुदेवः | **प्राप्त होता है। सारा** {जगत उस ज्ञान धन-दाता} **वसुदेव** {शिवबाबा=वासुदेव की

इति स महात्मा सुदुर्लभः | रचना है}**, ऐसा वह महान् आत्मा** {एक मुखी रुद्राक्ष} **बड़ा दुर्लभ है।**

वर्तमानानि च भविष्याणि भूतानि वेद | वर्तमानकालीन तथा भविष्यगत प्राणियों को {सदाकाल} जानता हूँ;
तु मां कश्चन न वेद | किन्तु मुझ {शिवज्योति} को कोई नहीं जानता। {गीता 15/18}
इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत। सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप।। 7/27
परंतप भारत इच्छाद्वेषसमुत्थेन | हे शत्रुतापक! हे भरतवंशी! इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए {क्षणै-2 परिवर्तित}
द्वन्द्वमोहेन सर्गे सर्वभूतानि | सुख-दुःखादि द्वन्द्वों के मोह से कल्पान्तकाल में {यहाँ} सब प्राणीमात्र
सम्मोहं यान्ति | {द्वैतवादी विधर्मी धर्मपिताओं से प्रभावित होकर} सम्पूर्ण मूढ़ता को पहुँच जाते हैं।
येषां तु अन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणां। ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः।। 7/28
तु येषां पुण्यकर्मणां जनानां पापं | परंतु {मेरी याद से} जिन पुण्यकर्मी {ब्राह्मण-}जनों के पाप {भंडार} का
अन्तगतं ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता | अंत हुआ है, वे {सुख-दुःखादि} द्वन्द्वों के मोह से {इसी जन्म में} विमुक्त हुए
दृढव्रताः मां भजन्ते | {ब्रह्मचर्य में} दृढ़व्रत वाले मुझ {शिवबाबा} को {ही} याद करते हैं।
जरामरणमोक्षाय मां आश्रित्य यतन्ति ये। ते ब्रह्म तत् विदुः कृत्स्नं अध्यात्मं कर्म च अखिलं।। 7/29
ये जरामरणमोक्षाय मां आश्रित्य | जो बुढ़ापा-मृत्यु {आदि दुखों से} मुक्ति-अर्थ {एकमात्र} मेरा आसरा लेकर
यतन्ति ते तत् ब्रह्म कृत्स्नं | प्रयत्न करते हैं, वे उस परंब्रह्म {और} सम्पूर्ण {ऑलराउंड हीरो पार्टधारी}
अध्यात्मं च अखिलं कर्म विदुः | आत्मा के रिकॉर्ड को और सारे {कल्याणकारी} कर्मों को जान जाते हैं।
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः। प्रयाणकाले अपि च मां ते विदुः युक्तचेतसः।। 7/30

कामैः तैः तैः हृतज्ञानाः प्रपद्यन्ते अन्यदेवताः। तं तं नियमं आस्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया।। 7/20
तैः-2 कामैः हृतज्ञानाः तं-2 | उन-2 {भोगों की} कामनाओं से अपहृत ज्ञान वाले, उन-2 {नीची कुरी के}
नियमं आस्थाय | {कन्वर्टिड ब्राह्मण-देवों के} नियम का आधार ले, {ड्रामानुसार बरबस}
स्वया प्रकृत्या नियताः | अपनी {संगमयुगी शूटिंग में} स्वभाव से बँधे हुए {पूर्वजन्मकृत कर्मानुसार}
अन्यदेवताः प्रपद्यन्ते | दूसरे {नीच कुरी के ब्राह्मण-}देवों की शरण में {सदाकाल/कल्प-2} जाते हैं।
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धया अर्चितुं इच्छति। तस्य तस्य अचलां श्रद्धां तां एव विदधामि अहं।। 7/21
यः-2 भक्तः यां-2 तनुं | जो-2 भक्ति {रूप सीताएँ} जिस-2 {ब्राह्मण सो देवरूप} तन की
श्रद्धया अर्चितुं इच्छति तस्य-2 | श्रद्धा से अर्चना के लिए इच्छा करती हैं, उस-2 {भक्त की}
ताम् एव अचलां श्रद्धां अहं विदधामि | उसी अचल श्रद्धा को मैं {कल्प-2 संगमी शूटिंग में} निश्चित करता हूँ।
• {जो जिनकी पूजा (मनौती) करते हैं वह उसी धर्म के हैं न! (मु.ता.4.5.74 पृ.3 आदि)(गीता 7-23 भी)}
स तया श्रद्धया युक्तः तस्य आराधनं ईहते। लभते च ततः कामान् मया एव विहितान् हि तान्।। 7/22
तया श्रद्धया युक्तः स तस्य आराधनं | उस श्रद्धा से लगा हुआ वह {भक्त} उस {ब्राह्मण सो देवात्मा} की आराधना
ईहते च हि ततः मया एव | चाहता है और निःसन्देह उस {ब्राह्मणदेव} से मेरे द्वारा ही {पु. संगम में}
विहितान् तान् कामान् लभते | निर्मित उन कामनाओं को {जो मन में सोचता है} पाता है।
अन्तवत् तु फलं तेषां तत् भवति अल्पमेधसां। देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मां अपि।। 7/23

अग्निः ज्योतिः अहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणं। तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।। 8/24
अग्निः ज्योतिः अहः शुक्लः | अग्नि {लिंगरूप प्रातः सूर्य} का प्रकाशमान दिन={पु. संगम का} शुक्ल पक्ष,
उत्तरायणं षण्मासाः तत्र | उत्तरायण के छः माह, वहाँ के {असल सूर्यवंशी सन् 1987-88 से 2037-38 तक}
प्रयाताः ब्रह्मविदः | प्रकृष्ट देवयात्री परमब्रह्म {परमात्मा} के जानकार {एडवांस रूहानी ब्राह्मण}
जनाः ब्रह्म गच्छन्ति | जन {बीजरूप रुद्रगणों के} परमब्रह्मलोक {ही} जाते हैं। {ऑलराउंडर पार्टधारी हैं ना!}
धूमो रात्रिः तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनं। तत्र चान्द्रमसं ज्योतिः योगी प्राप्य निवर्तते।। 8/25
तथा धूमः रात्रिः कृष्णः षण्मासाः | तथा धूमिल रात्रि=कृष्णपक्ष {सूर्यवंशी राम-पक्ष नहीं}, ये 6 माह
दक्षिणायनं तत्र | दक्षिणायन {मार्ग अधोमुखी चतुर्मुखी ब्रह्मा का} है। वहाँ {मृत्यु प्राप्त}
योगी चांद्रमसं | कर्मयोगी {अज्ञानता के कारण से} ज्ञानचन्द्रमा {ब्रह्मा के धूमिल}
ज्योतिः प्राप्य निवर्तते | प्रकाश को प्राप्त करके, {इसी संसार में भूतादि बनकर} लौटता है।*
*{जैसे दादा लेखराज ब्रह्मा, प्रकाशमणि, जगदीश, रमेश आदि सारे ही प्रधान बी.केज सूक्ष्म देह ले रहे हैं।}
शुक्लकृष्णे गती हि एते जगतः शाश्वते मते। एकया याति अनावृत्तिं अन्यया आवर्तते पुनः।। 8/26
जगतः शुक्लकृष्णे एते गती | {2500 वर्षीय} जगत की शुक्ल और कृष्ण, ये दोनों गतियाँ {शूटिंगकाल में}
हि शाश्वते मते एकया | निश्चय ही शाश्वत मानी गई हैं। एक से {सीधे ढाई हज़ार वर्षीय नरक में}
अनावृत्तिं अन्यया पुनः आवर्तते | नहीं आते, दूसरी {कृष्णगति} से पुनः {इसी विधर्मियों के नरक में} लौटते हैं।

पवित्रं उत्तमं | पवित्र है, {विधर्मियों की अपेक्षा} सर्वोत्तम {ज्ञान है}, {सिर्फ इस पु. संगमयुग में}
प्रत्यक्षावगमं कर्तुं | {साक्षात् ईश्वर से प्रश्नोत्तरपूर्वक} प्रत्यक्ष जाना जाता है, {पालन} करने के लिए
सुसुखं अव्ययं धर्म्यं | अत्यंत सुखदायी है, अविनाशी है {और सत्य-सनातन} धर्मानुकूल {भी} है।
अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्य अस्य परन्तप। अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।। 9/3
परंतप अस्य धर्मस्य अश्रद्दधानाः | हे शत्रुतापी अर्जुन! इस {गीतावर्णित} धर्म में अश्रद्धालु {ठेठ विधर्मी}
पुरुषा मां अप्राप्य मृत्युसंसार- | लोग मुझको न पाकर, मृत्युलोक के {कृष्णगति वाले अंधकार के}
वर्त्मनि निवर्तन्ते | मार्ग में {ढाई हज़ार वर्ष के नरक में पुनः} लौट जाते हैं। {गीता 8-25}
मया ततं इदं सर्वं जगत् अव्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्वभूतानि न च अहं तेषु अवस्थितः।। 9/4
मया अव्यक्तमूर्तिना इदं सर्वं | मेरी अव्यक्त {स्थिति की लिंग-}मूर्ति {शंकर} द्वारा यह सारा {जड़-जंगम}
जगत् ततं सर्वभूतानि | जगत् {बीज से वृक्ष-जैसा} विस्तृत है। {इसलिए} सभी प्राणी {समुदाय}
मत्स्थानि च अहं तेषु न अवस्थितः | मेरे {लिंग बीज} में स्थित हैं; किन्तु मैं {शिव} उनमें {सर्वव्यापी} नहीं हूँ।
•{नाहं तेषु ते मयि (गी.7/12)} (क्योंकि अश्वत्थ सृष्टिवृक्ष अनादि है तो अतिदुर्लभ 1 रुद्राक्षरूप बीज बाप भी अविनाशी है।)
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगं ऐश्वरं। भूतभृत् न च भूतस्थो मम आत्मा भूतभावनः।। 9/5
मे ऐश्वरं योगं पश्य | मेरे ऐश्वर्यवान् योग स्वरूप {लिंगरूप महादेव} को देख, {जहाँ आकाशादि जड़}
भूतानि च मत्स्थानि न | पंचभूत भी मेरे में स्थित नहीं। {सोमनाथ में शिवसमान आत्मज्योति हीरा+

अर्जुन आब्रह्मभुवनात् लोकाः	**हे अर्जुन!** {यद्यपि} **ब्रह्मलोक से लेकर सभी** {स्वर्ण-नरकादि} **लोक**
पुनरावर्तिनः तु कौन्तेय	**पुनः-2 आवर्तन वाले हैं; किन्तु हे कुन्ती-पुत्र!** {इस पु. संगम में}
मां उपेत्य पुनर्जन्म न विद्यते	**मेरे पास पहुँचकर** {सीधे दुखधाम में} **फिर से जन्म नहीं होता।**

{द्विसहस्त्रार्धवर्षाणां} अहर्यत् ब्रह्मणः विदुः। {एतेषां प्रमाणं} रात्रिं ते अहोरात्रविदः जनाः।। 8/17

ब्रह्मणः अहः द्विसहस्त्रार्धवर्षाणां	{ज्ञानचन्द्रमा} **ब्रह्मा का दिन** {*उत्तरायण मार्ग} **ढाई हज़ार वर्षों का**
एतेषां प्रमाणं	{सत-त्रेतायुग स्वर्ग और} **इतने ही प्रमाण की** {द्वापर-कलियुगी नरक}
रात्रिं यत् विदुः ते	**रात्रि है।** {अज्ञानान्धकार-युक्त *दक्षिणायन मार्ग का निमित्त चतुर्मुखी ज्ञानचन्द्रमा ब्रह्मा ही है। (गीता-8/18,19,24,25) ऐसा} **जो जानते हैं, वे** {मानते हैं कि ब्रह्मा की याद, मूर्ति, मंदिर क्यों नहीं बने? बाकी पञ्चम ऊर्ध्वमुखी ब्रह्मा ही परंब्रह्म है।}

हैविन्ली गॉडफादर निर्मित स्वर्गीय दिन भी ढाई हजार वर्ष और मानवीय हिस्ट्री में नर रूप विधर्मी धर्मपिताओं निर्मित नरक रूप अज्ञानरात भी 2500 वर्ष प्रैक्टिकल=है।

जनाः अहोरात्रविदः	**वे** {ब्राह्मण} **लोग** {भोगी ब्रह्मा के यथार्थ} **दिन और रात्रि के जानकार हैं।**

अव्यक्तात् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्ति अहरागमे। रात्र्या{न्ते} प्रलीयन्ते तत्र एव अव्यक्तसञ्ज्ञके।। 8/18

अहरागमे अव्यक्तात् सर्वाः	{ब्रह्मा का स्वर्गीय} **दिन आने पर** {निराकारी} **अव्यक्तधाम से सभी**
व्यक्तयः प्रभवन्ति रात्र्यान्ते	**व्यक्त हुए प्राणी** {नं. वार} **यहाँ आते हैं।** {फिर ब्रह्मा की} **रात्रि-अंत में**

परमां गतिं आहुः यं प्राप्य न	**परमगति कहते हैं। जिसको पाकर** {इस दुखधाम में बीजरूप रुद्राक्ष} **नहीं**
निवर्तन्ते तत् मम परमं धाम	**वापस आते, वह** {भी} **मेरा परमधाम है।** {जहाँ सृष्टिवृक्ष की सभी धर्मों से नं. वार चुने हुए श्रेष्ठतम श्रेणी के पंचम ऊर्ध्वमुखी ब्रह्मा के बीजरूप रुद्राक्षगण सितारे (देवेतर ऑलराउंड मनुष्यात्माएँ) ही रहते हैं।}

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यः तु अनन्यया। यस्य अन्तःस्थानि भूतानि येन सर्वं इदं ततं।। 8/22

पार्थ स परः पुरुषः तु अनन्यया	**हे कुन्तीपुत्र! वह हीरो पार्टधारी *परमात्मा तो अव्यभिचारी**
भक्त्या लभ्यः यस्य भूतानि	**याद द्वारा प्राप्य है। जिस** {जगत्पिता} **में** {सभी बीजरूप} **प्राणी**
अन्तःस्थानि येन इदं सर्वं ततम्	**स्थित हैं** {और} **जिस** {बीज} **से यह सारा** {सृष्टिवृक्ष} **विस्तृत है।**

{मैं परमपिता+परमात्मा सदाशिव सृष्टिवृक्ष के 7 अरब पत्तों में व्यापक नहीं। (गीता 9/4)}
*{वह एक ही आत्मा सो परमपार्टधारी हीरो मूर्तिमान शंकर है, जिसे गीता में बार-2 परम+आत्मा कहा है। (गीताः 6-7; 13-22, 31;15-17)} इसीलिए एकमात्र 'शंकर' नाम ही शिव से जुड़ा है।

यत्र काले तु अनावृत्तिं आवृत्तिं च एव योगिनः। प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ।। 8/23

भरतर्षभ यत्र काले प्रयाताः	**हे भरतवंश में श्रेष्ठ! जहाँ** {ब्रह्मा-दिन के उत्तरायण} **काल में प्रकृष्ट यात्री**
योगिनोऽनावृत्तिं चावृत्तिं	**योगीजन** {दुखधाम} **नहीं आते अथवा** {द्वैतवादी द्वापर से} **आते** {भी}
यान्ति तं कालं वक्ष्यामि	**हैं, उस** {पु. संगमयुगी शूटिंग} **काल को** {अभी आगे} **बताऊँगा।**

स्मरन् अन्ते कलेवरं त्यजति सदा	**याद करता हुआ, अंत में शरीर को त्यागता है,** {तो} **सदा** {हर जन्म में}
तद्भावभावितः तं-2 एव एति	**उसी भावना से प्रभावित हुआ उस-2** {संबंध* के भाव} **को** {मेरे से} **ही पाता है।**

*{जैसे स्त्री की याद में शरीर छोड़ेगा तो स्त्री चोला ही मिलेगा। इसीलिए 'अंत मते सो गते' की कहावत प्रसिद्ध है।}

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मां अनुस्मर युध्य च। मयि अर्पितमनोबुद्धिः मां एव एष्यसि असंशयं।। 8/7

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मां	**इसलिए हर समय** {ऊँच-ते-ऊँच हीरों में} **मुझ** {शिवबाबा} **को** {सदा}
अनुस्मर च युध्य	**स्मरण कर और** {कामादिक विकारों की माया से अहिंसक} **युद्ध कर।**
असंशयं मयि अर्पितमनोबुद्धिः	**निस्सन्देह मेरे में अर्पित हुई मन-बुद्धि वाला** {तू इस राजयोग से}
मां* एव एष्यसि	**मेरे** {राजाई* भाव} **को** {पु. संगमयुग की शूटिंग काल में} **ही पा लेगा।**

लक्ष्यः- *{साक्षात् ईश्वर द्वारा सिखाए राजयोग/बुद्धियोग से ही कलियुग के अंत तक छोटे-बड़े राजाओं की राजाई चली है। अन्यथा कोई भी विधर्मी धर्मपिताओं ने राजाई का ज्ञान नहीं दिया, सबने आधीन ही बनाया है।}

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना। परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थ अनुचिन्तयन्।। 8/8

पार्थ अनुचिन्तयन् अभ्यास-	**हे पृथ्वीराज! विचार-मंथन करते हुए,** {इस राजयोग के} **अभ्यास द्वारा**
योगयुक्तेन नान्यगामिना चेतसा	**योगयुक्त हुई अव्यभिचारी मन-बुद्धि से,** {'मामेकं' की सतत् याद से}
दिव्यं परमं पुरुषं याति	**दिव्य प्रकाशयुक्त परमपुरुष** {परमपिता शिवबाबा को ही} **पाता है।**

कविं पुराणं अनुशासितारं अणोरणीयांसं अनुस्मरेत् यः। सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।। 8/9

ये आधिदैवं मां	{पु. संगमयुग में} **जो देवताओं के अधिष्ठाता मुझ** {शिवबाबा/महादेव} **को,**
साधिभूत च साधियज्ञं	**प्राणियों के अधिपति** {जगत्पिता} **सहित और** {रुद्र-}**ज्ञान के अधिपति** {महारुद्र}
विदुः ते युक्तचेतसः अपि	**सहित** {ज्ञान सूर्यसमान शिव=ज्योति} **के ज्ञाता हैं, वे योगयुक्त मन-बुद्धि वाले भी**
प्रयाणकाले मां च विदुः	{कल्पान्त के} **प्रयाणकाल में मुझ** {परम+आत्मस्वरूप} **को ही जान जाते हैं।**

अर्जुन उवाचः-किं तत् ब्रह्म किं अध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम। अधिभूतं च किं प्रोक्तं अधिदैवं किं उच्यते।। 8/1

पुरुषोत्तम तत् ब्रह्म किं	**हे आत्माओं में सर्वोत्तम सदाशिव! वह** {परम्} **ब्रह्म क्या है?**
अध्यात्मं किं कर्म किं अधिभूतं	**आत्मा के अंदर क्या है? कर्म क्या है? प्राणियों का अधिपति**
किं प्रोक्तं च अधिदैवं किं उच्यते	**किसको कहते हैं? और देवों का अधिपति किसे कहा जाता है?**

अधियज्ञः कथं कः अत्र देहे अस्मिन् मधुसूदन। प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयः असि नियतात्मभिः।। 8/2

मधुसूदन अत्र देहे	**हे मधु-जैसे मीठे काम के हंता** {त्रिनेत्री शिवबाबा}**!** {मेरी} **इस देह में**
अधियज्ञः कथं कः च अस्मिन्	{रुद्रज्ञान} **यज्ञ का अधिपति कैसे** {और} **कौन है? और इस** {देह} **में**
प्रयाणकाले नियतात्मभिः	**महामृत्यु के समय वशीभूत मन-बुद्धि वालों द्वारा** {यज्ञसेवा का अधिष्ठाता}
कथं ज्ञेयः असि	**कैसे जानने योग्य है?** {मुझ आत्मा की रूहरिहान का समाधान आपसे ही है।}

श्रीभगवानुवाचः-अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावः अध्यात्मं उच्यते। भूतभावोद्भवकरः विसर्गः कर्मसञ्ज्ञितः।। 8/3

अक्षरं परमं ब्रह्म	**क्षरितहीन/अमोद्यवीर्य** {शिवबाबा ही} **परंब्रह्म है।** {आत्मबिंदु के रिकॉर्ड में}

प्रयाणकाले मनसा अचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव। भ्रुवोः मध्ये प्राणं आवेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषं उपैति दिव्यं॥ 8/10

यः पुराणं कविं अनुशासितारं | जो {योगी} प्राचीनतम {गीता रूपी गीत के} कवि को, {सब प्राणियों के} शासक,
अणोः अणीयांसं सर्वस्य धातारं | सूक्ष्माणु से {भी} अतिसूक्ष्म, सब {जड़-चेतन} के धारणकर्ता, {वटवृक्षरूपसृष्टि के बीज}
अचिन्त्यरूपं आदित्यवर्णं | अचिन्त्य रूप वाले, सूर्य की तरह {अखूट ज्ञानप्रकाश के तीखे} वर्ण वाले,
तमसः परस्तात् प्रयाणकाले | अज्ञानान्धकार से परे {ज्ञानसूर्य शिवबाबा को कल्पान्त के} महामृत्युकाल में
भक्त्या अचलेन मनसा योगबलेन | अचल-अडोल भक्ति-भाव से, मन-बुद्धि द्वारा {अव्यभिचारी} योगबलपूर्वक
युक्तः भ्रुवोः मध्ये एव प्राणं* | लगा हुआ भृकुटि-मध्य में ही प्राण {रूप आत्म-ज्योति रूप सूक्ष्मबिंदु स्वरूप} को
सम्यक् आवेश्य अनुस्मरेत् स तं | अच्छे से स्थिर कर याद करता है, वह उस {परमोत्कृष्ट हीरो पार्टधारी},
दिव्यं परं पुरुषं उपैति | दिव्य परमपिता समान परमात्मा को पाता है। {जैसे शिव + शंकर सदा साथी हैं।}

यत् अक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यत् यतयो वीतरागाः। यत् इच्छन्तः ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत् ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये॥ 8/11

वेदविदः यत् अक्षरं वदन्ति वीतरागाः | ब्रह्म-वाणी के ज्ञाता जिसे अमोघवीर्य बताते हैं, रागरहित
यतयः यद्विशन्ति यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं | योगीजन जिसमें प्रवेश पाते हैं, जिसके इच्छुक ब्रह्मचर्य का
चरन्ति ते तत् पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये | आचरण करते हैं, तुझे उस {विष्णु}पद को संक्षेप में बताऊँगा।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च। मूर्ध्नि आधाय आत्मनः प्राणं आस्थितो योगधारणां॥ 8/12

सर्वद्वाराणि संयम्य च मनः हृदि | सारे इन्द्रिय-द्वार संपूर्णतः वश करके और मन को अन्तःकरण में

स्वभावः अध्यात्मं उच्यते | अपना भाव {आत्म के रिकॉर्ड में} अध्यात्म {अधि+आत्म} कहा जाता है।
भूतभावोद्भवकरः | {मानसी सृष्टि-अर्थ पु. संगमयुग में} प्राणी-भाव की {मानसी} उत्पत्ति करने वाला
विसर्गः कर्मसंज्ञितः | {तन-धन आदि का मानसी स्मृति से} त्याग {यज्ञ-सेवा का सर्वोत्तम} कर्म कहा जाता है।

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्च अधिदैवतं। अधियज्ञः अहं एव अत्र देहे देहभृतां वर॥ 8/4

देहभृतां वर क्षरो | हे देहधारियों में श्रेष्ठ {=हीरोपार्टधारी}! {सतयुगादि से ही पतनशील} क्षरित
भावः अधिभूतं च | भाव वाले प्राणियों का अधिपति {भोगी ब्रह्मा/सतयुगी आत्मा 16कला कृष्णचन्द्र} और
पुरुषः अधिदैवतं | देहरूपा पुरी में शयनकर्ता {विष्णु या} देवों के अधिपति {देव-2 महादेव} को
अत्र देहे अधियज्ञः | यहाँ {अर्जुन के रथरूप} देह में रुद्र-यज्ञ का अधिपति {महारुद्र शिव+शंकर}
अहं एव | मैं {ऊँचे-से-ऊँचा भगवंत परमपिता शिव+बाबा} ही {हूँ}। {साकार सृष्टि में ही ऊँचनीच हैं।}

अन्तकाले च मां एव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरं। यः प्रयाति स मद्भावं याति न अस्ति अत्र संशयः॥ 8/5

यः अन्तकाले च मां एव स्मरन् | जो कल्पान्तकाल में मुझ {एकमात्र शिवबाबा} को ही याद करता हुआ
कलेवरं मुक्त्वा प्रयाति स मद्भावं | शरीर को छोड़कर महाप्रयाण करता है, वह {योगी} मेरे {राजाई} भाव को
याति अत्र संशयः न अस्ति | पाता है। इसमें संशय नहीं है। {वह मेरे जैसा ही युगानुरूप सुखदायी शासक होगा।}

यं यं वा अपि स्मरन् भावं त्यजति अन्ते कलेवरं। तं तं एव एति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥ 8/6

कौन्तेय वा यं-2 भावं अपि | हे कुन्ती-पुत्र! अथवा जो-2 {संबन्ध के} भाव को भी {इस अर्जुन-रथ में}

निरुध्य आत्मनः प्राणं योग | रोककर, {ज्योतिबिंदुरूप} आत्मा की प्राण-शक्ति को योग की
धारणां आधाय मूर्ध्नि आस्थितः | धारणा का आधार ले {निरंतर} भृकुटि {मध्य} में स्थिर हुआ,
ओम इति एकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मां अनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिं॥ 8/13

ॐ इति एकाक्षरं व्याहरन् मां ब्रह्म | 'ॐ'- ऐसा एकाक्षर {मन से} व्यवहार में लाते हुए मुझ परंब्रह्म को {प्रीतिपूर्वक}
अनुस्मरन् देहं त्यजन् यः प्रयाति | याद करता हुआ {और} शरीर को त्यागता हुआ जो {कल्पान्त में} महामृत्यु पाता है,
स परमां गतिं याति | वह {चतुर्भुजी संगठित भुजा वाले विष्णुलोकीय वैकुण्ठ की} परमगति को पाता है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्य अहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ 8/14

अनन्यचेताः यः मां नित्यशः सततं | अव्यभिचारी चित्त से जो {योगी} मुझको नित्य-निरन्तर {लगाव से}
स्मरति पार्थ तस्य नित्ययुक्तस्य | याद करता है, हे कुन्तीपुत्र! उस नित्य-नियमपूर्वक लगनशील/लागू
योगिनः अहं सुलभः | योगी को मैं सुखपूर्वक मिलताहूँ। {इसीलिए प्रचीन सहजराजयोग प्रसिद्ध है।}

मां उपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयं अशाश्वतं। न आप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥ 8/15

मां उपेत्य परमां | मुझ {शिवबाबा} पास पहुँचकर {विष्णु चतुर्भुज रूप} परमोत्कृष्ट
संसिद्धिं गताः महात्मानः अशाश्वतं | संपूर्ण सिद्धि को पहुँचे हुए महात्माएँ {इस} विनाशी {नारकीय}
दुःखालयं पुनर्जन्म न आप्नुवन्ति | दुखधाम में पुनर्जन्म नहीं पाते, {वे दीर्घकालीन सुखधाम ही जाते हैं}।

आब्रह्मभुवनात् लोकाः पुनरावर्तिनः अर्जुन। मां उपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥ 8/16

अव्यक्तसंज्ञके तत्र एव प्रलीयन्ते | अव्यक्तधाम नामक उस ही {धाम} में {नं. वार} लीन हो जाते हैं।

{यह अव्यक्त परमधाम सर्वसामान्य निराकारी अणुरूप आत्माओं & निराकार परमपिता शिव का भी अपना सामान्य घर है, जहाँ से आकर ये सभी पार्टधारी संसारी सृष्टि-रंगमंच पर जन्म-2 शरीर रूपी वस्त्र बदल-2 खेलते हैं।} सदा शिवज्योति का कलियुगान्त और सतयुगादि के 100 वर्षीय पुरुषोत्तम संगमयुग में सिर्फ 1 ही जन्म है।

भूतग्रामः स एव अयं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते। रात्र्या{न्ते} अवशः पार्थ प्रभवति अहरागमे॥ 8/19

स एव अयं भूतग्रामः भूत्वा-2 | वह ही यह प्राणी-समुदाय {चतुर्युगी में नं. वार} बार-2 जन्म लेकर {यहाँ से}
रात्र्यान्ते अवशः प्रलीयते | {ब्रह्मा की} रात्रि के अंत में बरबस {अव्यक्तधाम में} पूरा लीन हो जाता है।
पार्थ अहरागमे प्रभवति | {और} हे पृथापुत्र! {16 कला का सतयुगी} दिन आने पर प्रगट होने लगता है।

परः तस्मात् तु भावः अन्यः अव्यक्तः अव्यक्तात् सनातनः। यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥ 8/20

तस्मात् अव्यक्तात् तु परः यः अव्यक्तः | उस अदर्शनीय {देवात्माओं से} भी प्रबल जो अदर्शनीय {बीज रुद्रगणों का}
अन्यः सनातनः भावः | दूसरा प्राचीनतम {सृष्टिवृक्षीय 4.5 लाख असल सूर्यवंशी सितारों का आत्म-}भाव है,
स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति | वह सब प्राणियों की {देह} नष्ट होने पर {भी} नहीं विनाश होता।

{आसमान के 9 लाख जड़ सितारों मानिंद यह हैं धरती के बीजरूप सूर्यवंशी 4.5 लाख उत्तरायण के चैतन्य सितारे।}

अव्यक्तः अक्षरः इति उक्तः तं आहुः परमां गतिं। यं प्राप्य न निवर्तन्ते तत् धाम परमं मम॥ 8/21

अव्यक्तः अक्षरः इति उक्तः तं | इसे अप्रगट अविनाशी {'परमब्रह्मलोक'} - ऐसे कहा जाता है। उसको {विष्णु की}

अर्जुन उवाचः- पश्यामि देवान् तव देव देहे सर्वान् तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणं ईशं कमलासनस्थं ऋषीन् च सर्वान् उरगान् च दिव्यान्।। 11/15

देव तव देहे सर्वान् देवान् च	हे देवाधिदेव! {मेरे द्वारा समर्पित अब} आपके शरीर में सब देवताओं को तथा
भूतविशेषसंघान्	प्राणियों की विशेष प्रकार की {भिन्न योनि के} समुदायों को, {इस वटवृक्ष रूप}
कमलासनस्थं ब्रह्माणं च	{1 शरीर में सदाकाल अनासक्ति के} कमलासन पर बैठे महेश्वर {शिव को} और
ईशं सर्वान् ऋषीन् तथा	{ऊर्ध्वमुखी} परंब्रह्मा को, {चतुर्मुखी ब्रह्मा के संघ रूप} सब ब्रह्मर्षियों को और
दिव्यान् उरगान्* पश्यामि	{तीव्रगति से स्थानांतरित/सरकने वाले} दिव्य सर्प {रूप संन्यासियों} को देखता हूँ।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतः अनन्तरूपं। न अन्तं न मध्यं न पुनः तव आदिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।। 11/16

अनेकबाहु	{मनुष्य-सृष्टि के बीजरूप} अनेक {कर्मयोगी सहयोगी} भुजाओं वाले, {कर्महिमायती कुरुवंशी}
उदरवक्त्रनेत्रं सर्वतः अनन्तरूपं	{द्वापर के वैश्यरूप} पेट वाले, {ब्राह्मण सो देवरूप} मुख वाले, {रुद्रगणरूप} रुद्राक्ष वाले, सब ओर {देखे गए नागों के} अनंतरूप वाले
त्वां पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप पुनः	आपका {साक्षात् रूप} देखता हूँ। हे विश्वेश्वर! हे विश्वरूप! फिर भी {मैं}
तव न अन्तं न मध्यं न आदिं पश्यामि	आपके {रथ में} न अंत को, न मध्य को, न आदि को {ही} देख पाता हूँ।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तं। पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्तात् दीप्तानलार्कद्युतिं अप्रमेयं।। 11/17

तेजसा इदं विश्वं तपन्तं पश्यामि	तेज से इस {महापापी कलियुगी नरक के} संसार को तपाता हुआ देख रहा हूँ।

द्यावापृथिव्योः इदं अन्तरं हि व्याप्तं त्वया एकेन दिशश्च सर्वाः। दृष्ट्वा अद्भुतं रूपं उग्रं तव इदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्।। 11/20

द्यावापृथिव्योः इदं अन्तरं च सर्वाः	{चेतन पिता} द्युलोक और {मरुदेवा माता} पृथ्वी का यह अन्तराल और सारी
दिशः एकेन त्वया हि व्याप्तं तव	दिशाएँ अकेले आपके द्वारा ही विस्तीर्ण हुई हैं। आप {महाकाल} का
इदं अद्भुतं उग्रं रूपं दृष्ट्वा	यह अद्भुत, भयंकर {कल्पान्तकारी महाविनाशकारी} रूप देखकर,
महात्मन् लोकत्रयं प्रव्यथितं	हे महात्मन्! {सुख-दुःख-शांतिधाम} तीनों लोक अत्यंत काँप रहे हैं।

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति केचित् भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्ति इति उक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः।। 11/21

हि अमी सुरसंघाः त्वां विशन्ति	वास्तव में, ये {ब्राह्मण सो} देव समूह आप {विराटरूप} में समा जाते हैं। {अतः}
केचित् भीताः प्रांजलयः गृणन्ति	कुछ {भक्त} भयभीत हुए हाथ जोड़कर गुण गाते हैं। {विश्व-कल्याण भाव के}
महर्षिसिद्धसंघाः स्वस्ति इति उक्त्वा	महर्षिगण व सिद्धों के समूह 'कल्याण हो'-2← ऐसे बोलते हुए {शास्त्रनिर्मित}
त्वां पुष्कलाभिः स्तुतिभिः स्तुवन्ति	आपकी अनेक प्रकार से {वेदमंत्रों, आरतियों आदि द्वारा} स्तुतियाँ करते हैं।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वे अश्विनौ मरुतश्च ऊष्मपाश्च। गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताः चैव सर्वे।। 11/22

ये रुद्रादित्या वसवः	जो 11 रुद्र, 12 सूर्य-जैसे चक्रवर्ती, अष्टावसुरूप {आप शिव की अष्टमूर्तियाँ}
च साध्या विश्वे अश्विनौ	और प्रत्येक देव विश्वदेव, दो {राम-कृष्ण} अश्विनी कुमार, {सूक्ष्म शरीरधारी ब्रह्मा पुत्ररूप}

हि अहं एव सर्वयज्ञानां	क्योंकि मैं शिव ही {नौ में से 7 कुरियों के ब्राह्मण सो देवों की} सभी यज्ञ-सेवाओं का
प्रभुः च भोक्ता तु च ते	{अविनाशी रथ द्वारा} स्वामी और उपभोग करने वाला हूँ, तो भी वे {अज्ञानी}
मां तत्त्वेन न	{विधिहीन यज्ञसेवी} मुझ {साधारण तनधारी शिवबाबा} को वास्तविक रूप से नहीं
अभिजानन्ति अतश्च्यवन्ति	पहचान पाते; अतः {द्वापर से द्वैतवादी विधर्मियों में} पतित हो जाते हैं।

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः। भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनः अपि मां।। 9/25

देवव्रता देवान् यान्ति पितृव्रताः	देवताओं के भक्त देवताओं को पाते हैं। पितृभक्त {भावनानुसार}
पितॄन् यान्ति भूतेज्या भूतानि यान्ति	{अपने} पितरों को पाते हैं। भूत-प्रेतों के पुजारी भूतों को पाते हैं।
मद्याजिनः मामपि यान्ति	मेरे प्रति यज्ञ की सेवा करने वाले मेरे {जैसे स्वाधीन* राजाई भाव} को ही पाते हैं।

*{एकमात्र शिवबाबा के सिवा सभी पराधीन बनाते हैं। 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं। करि विचार देखहु मन माहीं।।'}

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तत् अहं भक्त्युपहृतं अश्नामि प्रयतात्मनः।। 9/26

यः पत्रं पुष्पं फलं	जो {निर्धन} व्यक्ति पत्ते, पुष्प, फल {अथवा कोई भी प्रकार की यज्ञउपयोगी}
तोयं मे भक्त्या प्रयच्छति	जल {जैसी सामान्य चीज़} को मुझे दिली भावना से प्रदान करता है, {←ऐसे}
प्रयतात्मनः भक्त्युपहृतं	{उस} प्रयत्नवान की भावनापूर्वक लाई गई {मेरे ग्रहण करने योग्य भीलनी की}
तदहं अश्नामि	उस {कल्याणमयी भेंट} को मैं {विषपायी शिवबाबा प्रसन्नता से} ग्रहण कर लेता हूँ।

यत् करोषि यत् अश्नासि यत् जुहोषि ददासि यत्। यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणं।। 9/27

अहं तपामि अहं	मैं शिव {ज्ञानसूर्य ही विवस्वत बन यहाँ} तप रहा हूँ। मैं {संगमयुग में ज्ञानजल की}
वर्षमुत्सृजामि च निगृह्णामि	बरसात छोड़ता हूँ और {1 मात्र मैं कपिल/अग्नि ही मंथन करके ज्ञान-}वर्षा खींचता हूँ।
चैव अमृतञ्च मृत्युश्च	और मैं ही {सागर-मंथन का} अमृत हूँ और मृत्यु भी हूँ। {हे सद्भाग्य-अर्जनकर्ता}
अर्जुन सत् असत् अहं	अर्जुन! सत्य, {और 'शठे शाठ्यं समाचरेत्'-अनुसार} असत्य मैं {शिव+बाबा ही हूँ}।

•{दुनियाँ की कोई ऐसी बात नहीं जो तेरे (जगत्पिता आदम) पर लागू न हो।(मु.ता.14-4-68, 5.5.69 पृ.3 अंत)}

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैः इष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते। ते पुण्यं आसाद्य सुरेन्द्रलोकं अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्।। 9/20

त्रैविद्या	{पुरुषोत्तम संगमयुग के जो ब्राह्मण-देवता-क्षत्रिय} तीन धर्मों की विधाओं के जानकार हैं,
सोमपाः	{ज्ञानचन्द्रमा रूप संगठित चतुर्मुखी ब्रह्मा से} सोमरस पीते हैं, {उसी मीठे-2 ज्ञान अमृत-रस से}
पूतपापा यज्ञैः मां इष्ट्वा	पापमुक्त हुए यज्ञ-सेवाओं से मुझ {शिवबाबा} को प्रसन्न करके {आधाकल्प}
स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ते दिवि	स्वर्गीय श्रेष्ठ गति की प्रार्थना करते हैं, वे दिव्य लोकों में {21 पीढ़ी के}
पुण्यं सुरेन्द्रलोकं आसाद्य	पवित्र सुरेन्द्रलोक को पाकर {इन्द्रलोक में लेशमात्र भी दुःख न भोगते हुए}
दिव्यान् देवभोगान् अश्नन्ति	{सूर्यवंशी राम & कृष्णचन्द्र के स्वर्ग में} देवों के दिव्य भोगों को भोगते हैं।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। एवं त्रयीधर्मं अनुप्रपन्नाः गतागतं कामकामा लभन्ते।। 9/21

ते तं विशालं स्वर्गलोकं	वे {त्रैविद्या*-ज्ञाताजन ही} उस {2500 वर्षीय} विशाल {सत-त्रेतायुगी} स्वर्गलोक को
भुक्त्वा पुण्ये क्षीणे	भोगकर, {पु. संगमी शूटिंगकृत} पुण्यों के क्षीण होने पर {ढाई हज़ार वर्ष के}

कौन्तेय यत् करोषि यत् अश्नासि | हे कुन्ती-पुत्र! जो {कर्म तू} करता है, जो {तू} खाता है, {पीता है,}
यत् जुहोषि यत् ददासि यत् | जो यज्ञसेवा करता है, जो देता है {वा} जो {आत्मस्टार की स्मृति का}
तपस्यसि तत् मदर्पणं कुरुष्व | तप करता है, वह सब मुझ {एकमात्र व्यक्तित्व शिवबाबा} को अर्पण कर।
शुभाशुभफलैः एवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः। सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मां उपैष्यसि।। 9/28

एवं शुभाशुभफलैः कर्मबंधनैः | इस प्रकार शुभ और अशुभ फल वाले कर्मों के बंधनों से {आधाकल्प के लिए}
मोक्ष्यसे विमुक्तः संन्यास- | मुक्त हो जाएगा। {उनसे} पूरा ही छूटा हुआ समुचित त्यागी {और मेरे}
योगयुक्तात्मा मां उपैष्यसि | योगयुक्त हुआ मुझ {ईश्वर के श्रेष्ठ स्वाधीन राजाईभाव} को {ही} प्राप्त करेगा।
{राजयोग से बने राजा स्वाधीन होते हैं; किसी के आधीन नहीं रहते। नं. वार नरक बनाने वाले नर आधीन ही बनावेंगे!}

समः अहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्यः अस्ति न प्रियः। ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु च अपि अहं।। 9/29

अहं सर्वभूतेषु समः मे न | मैं सब प्राणियों में समान आत्मभाव वाला हूँ। मेरे लिए न {कोई}
द्वेष्यः न प्रियः अस्ति तु ये मां भक्त्या | द्वेष योग्य है, न प्यारा है; किंतु जो मुझको {श्रद्धा} भक्तिभाव से
भजन्ति ते मयि च तेषु अहं अपि | याद करते हैं, वे मुझमें हैं और उनमें {उसी समान स्मृतिपूर्वक} मैं भी हूँ।
अपि चेत् सुदुराचारो भजते मां अनन्यभाक्। साधुः एव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितः हि सः।। 9/30

चेत् सुदुराचारो अपि अनन्यभाक् | यदि {कोई} अत्यन्त दुराचारी भी अव्यभिचारी भाव से {श्रद्धापूर्वक}
मां भजते स साधुः एव मन्तव्यः | मुझे याद करता है, {तो} वह {1 निष्ठ होने से} सत्पुरुष ही मानने योग्य है;

मर्त्यलोकं विशन्ति | {द्वापर-कलियुगी नर-निर्मित नरकलोकीय} मृत्युलोक में प्रवेश करते हैं।
एवं त्रयीधर्मं अनुप्रपन्नाः | इस प्रकार {*ब्राह्मण[1]-देव[2]-क्षत्रिय[3]} 3 धर्मों की {विधाओं के} अनुकरणकर्ता,
गतागतं कामकामा लभन्ते | भूत-भविष्य {संबन्धी} काम्य कामनाओं का {सनातन धर्म में} लाभ पाते हैं।
अनन्याः चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहामि अहं।। 9/22

ये अनन्याः जनाः मां चिन्तयन्तो | जो अव्यभिचारी लोग मेरी {ज्योतिसमान+लिंगरूप की प्रवृत्ति में} ध्यानमग्न हुए,
पर्युपासते तेषां नित्याभियुक्तानां | सर्वसमर्पित उपासक हैं, उन निरन्तर सम्पूर्ण योगियों के {नियमप्रमाण}
योगक्षेमं अहं वहामि | अप्राप्त की प्राप्ति और उसकी रक्षा का भार मैं {सदाकाल} वहन करता हूँ।

• {"बाबा की सर्विस में लग जाने से तुम कब (अकाल, दुकाल आदि में भी) भूख नहीं मरेंगे।" (मु.ता.16.10.77 पृ.3 मध्य)} {'कयामत में खुदा के बंदे मौज में रहेंगे'। (कुरान)} (आदम+शिव ज्योति को पहचानेंगे तब तो!)

ये अपि अन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धया अन्विताः। ते अपि मां एव कौन्तेय यजन्ति अविधिपूर्वकं।। 9/23

कौन्तेय ये | हे {देहभान नाशिनी कुंतयति दारयति देहं} कुन्ती के पुत्र! जो {शिवबाबा के अलावा कोई}
अन्यदेवता भक्ता अपि श्रद्धया | अन्य {ब्रह्मा-विष्णु-ल.ना. आदि देवी-}देवताओं के भक्त भी श्रद्धा से
अन्विताः यजन्ते ते अविधिपूर्वकं | भरकर यज्ञसेवा करते हैं, वे गीता-विधिविधान रहित {रुद्रयज्ञसेवी}
अपि मां एव यजन्ति | {होने पर} भी {विदेहीरूप} मेरी {शिवज्योति की} ही यज्ञसेवा करते हैं।
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुः एव च। न तु मां अभिजानन्ति तत्त्वेन अतः च्यवन्ति ते।। 9/24

अनेकवक्त्रनयनं अनेकाद्भुतदर्शनं | {रावण या ब्रह्मा जैसे} अनेक {संगठित} मुख और नेत्र वाले, अनेक अद्भुत दृष्टि वाले,
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधं | अनेक दिव्यगुणों के आभूषणों वाले, उठाए हुए अनेक दैवीय ज्ञानायुधों वाले,
दिव्यमाल्याम्बरधरं | दैवीय {संगठन रूपी} मालाएँ व {कंचनकायारूपी} वस्त्र धारणकर्ता,
दिव्यगंधानुलेपनं सर्वाश्चर्यमयं | दैवीय {गुणों की} सुगंध से लिम्पायमान, सब {प्रकार के} आश्चर्यों से भरे हुए,
विश्वतोमुखं अनन्तं देवं | सभी दिशाओं में 5 मुख वाले {पंचानन महादेव में} अनन्त देवताओं को {देखा}।
दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेत् युगपत् उत्थिता। यदि भाः सदृशी सा स्यात् भासः तस्य महात्मनः।। 11/12

यदि दिवि सूर्यसहस्रस्य भाः युगपत् उत्थिता | यदि आकाश में हज़ारों सूर्यों की कान्ति {1 देह में} एक साथ उदित
भवेत् सा भासः तस्य महात्मनः सदृशी स्यात् | हो तो वह कांति उस {सूर्य की} महान आत्मा के समान हो सकती है।
तत्र एकस्थं जगत् कृत्स्नं प्रविभक्तं अनेकधा। अपश्यत् देवदेवस्य शरीरे पाण्डवः तदा।। 11/13

तदा पाण्डवः देवदेवस्य तत्र | तब {पाण्डु नामक} पण्डापुत्र पाण्डव ने {संसार-बीज} देवाधिदेव के उस
शरीरे अनेकधा प्रविभक्तं कृत्स्नं | शरीर में अनेक रूपों के {दाईं-बाईं ओर के विधर्मियों में} बँटे हुए सम्पूर्ण
जगत् एकस्थं अपश्यत् | जगत {रूपी अश्वत्थ सृष्टिवृक्ष} को एक {चैतन्य बीज महादेव} में स्थित देखा।
ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः। प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिः अभाषत।। 11/14

ततः स विस्मयाविष्टः हृष्टरोमा धनंजयः | तब वह आश्चर्य में भरा रोमांचित हुआ {वसुपुत्र/शिव-पुत्र} अर्जुन
देवं शिरसा प्रणम्य कृतांजलिः अभाषत | वासुदेव को मस्तक द्वारा प्रणाम करके हाथ जोड़ते हुए कहने लगा।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं | {पवित्रता के अखूट} ताजधारी, {दृढ़ता के} गदाधारी, {84 जन्मों वाले} चक्र के धारणकर्ता
च तेजोराशिं सर्वतः दीप्तिमंतं | और {अखूट योग की ऊर्जारूप} तेज के पुंज, सब ओर से {प्रकाशित}, दीप्तिवाले
समंतात् दुर्निरीक्ष्यं दीप्तानल | चारों ओर {की चकाचौंध में} कठिनाई से देखने योग्य, दीप्तिमान अग्नि {और}
अर्कद्युतिं अप्रमेयं त्वां पश्यामि | {ज्वाजल्यमान चेतन ज्ञान-}सूर्य की प्रभा वाले, उपमाहीन आपको देख रहा हूँ।
त्वं अक्षरं परमं वेदितव्यं त्वं अस्य विश्वस्य परं निधानं। त्वं अव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनः त्वं पुरुषो मतो मे।। 11/18

त्वं अक्षरं परमं वेदितव्यं त्वं अस्य | आप क्षरणरहित {अमोघवीर्य} परमपुरुष {शिव ही} जानने योग्य हैं। आप इस
विश्वस्य परं निधानं त्वं अव्ययः | जगत् के परम आश्रय {और} आप {देहरूप रथ से} अक्षिणी {पार्टधारी} आत्मा हैं।
शाश्वतधर्मगोप्ता मे मतः | शाश्वत सनातन धर्म के रक्षक हैं; {अतः} मेरी मान्यता है {कि सत्य सनातन धर्म के}
त्वं सनातनः पुरुषः | आप {ही} सनातन {प्राचीनतम धर्मपिता* सनत्कुमार/विवस्वत और} परमपुरुष हैं।

{1 धर्मपिता के नाम पर धर्म का नाम होता है; जैसे- बुद्ध से बौद्ध धर्म, क्राइस्ट से क्रिश्चियन, मुहम्मद से मुस्लिम। ऐसे ही सनत्कुमार से 'सनातन धर्म'। बाकी सिन्धु से बिगड़ते हुए 'हिन्दू' तो विदेशियों का दिया हुआ नाम है।}

अनादिमध्यान्तं अनन्तवीर्यं अनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रं। पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वं इदं तपन्तं।। 11/19

अनादिमध्यान्तं अनन्तवीर्यं | आदि, मध्य और अंतरहित, {ऑलराउंड} अमोघवीर्य वाले {आप ही तो महादेव है},
अनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रं | असंख्य सहयोगी भुजाओं वाले, दायीं-बायीं और से चन्द्रभाल+ज्ञानसूर्य {शिव} नेत्र वाले,
दीप्तहुताशवक्त्रं त्वां स्व- | धधकती हुई {रुद्रज्ञान} अग्निरूप मुख वाले {हे महारुद्र}, आपको अपने

न अन्तः अस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप। एष तु उद्देशतः प्रोक्तो विभूतेः विस्तरो मया।। 10/40

परंतप मम दिव्यानां विभूतीनामन्तः नास्ति | हे कामादिक शत्रुतापक! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है।
एष विभूतेः विस्तरः तु मया उद्देशतः प्रोक्तः | यह {ऊपर की} विभूतियों का विस्तार तो मैंने संक्षेप में कहा है।

यत् यत् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमत् ऊर्जितं एव वा। तत् तत् एव अवगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवं।। 10/41

वा यद्यदेव सत्त्वं विभूतिमत् श्रीमदूर्जितं | अथवा जो प्राणी ऐश्वर्यवान्, श्रेष्ठबुद्धियुक्त, ऊर्जावान् है,
तत्तत्त्वं ममैव तेजोंऽश सम्भवमवगच्छ | उसे तू मेरे ही तेज/योगऊर्जा के अंश से उत्पन्न हुआ जान।
{संगमयुगी शूटिंग में पुरुषार्थ-अनुरूप योगऊर्जा आत्म-बिंदुरूप बैटरीज़ को योगीश्वर बाबा से मिलती है।}

अथवा बहुना एतेन किं ज्ञातेन तव अर्जुन। विष्टभ्य अहं इदं कृत्स्नं एकांशेन स्थितो जगत्।। 10/42

अथवा अर्जुन तव एतेन बहुना | अथवा हे अर्जुन! तुझे इतने {विशाल ज्ञान-भंडार में} बहुत {विस्तार में}
ज्ञातेन किं अहं इदं कृत्स्नं जगत् | जानने से क्या {प्रयोजन है}? मैं {सदाशिवज्योति} इस सम्पूर्ण जगत को
एकांशेन विष्टभ्य स्थितः | {अपने योगऊर्जा भंडारी के} 1 अंशमात्र से टिकाकर {भी} स्थित हूँ!

अर्जुन उवाचः-मदनुग्रहाय परमं गुह्यं अध्यात्मसञ्ज्ञितं। यत् त्वया उक्तं वचः तेन मोहः अयं विगतो मम।। 11/1

त्वया मदनुग्रहाय यत् अध्यात्मसंज्ञितं परमं | आपने मेरे ऊपर दया करके जो अध्यात्म नाम की परमश्रेष्ठ
गुह्यं वचः उक्तं तेन मम अयं मोहः विगतः | रहस्यमयी बात कही है, उससे मेरा यह मोह दूर हो गया है।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया। त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यं अपि च अव्ययं।। 11/2

अश्विनौ मरुतः पश्य तथा | 2 अश्विनी कुमारों, 49 { सूक्ष्म देहधारी} मरुतों को देख। उसी प्रकार
अदृष्टपूर्वाणि बहूनि आश्चर्याणि पश्य | पहले {पूर्वजन्मों में भी कभी} न देखे हुए बहुत-से आश्चर्यों को देख।

इह एकस्थं जगत् कृत्स्नं पश्य अद्य सचराचरं। मम देहे गुडाकेश यत् च अन्यत् द्रष्टुं इच्छसि।। 11/7

गुडाकेश अद्य मम इह देहे | हे निद्राजीत अर्जुन! आज मेरे इस {सृष्टि के बीज अर्जुन/आदम की} देह में
सचराचरं कृत्स्नं जगत् एकस्थं | जड़ और चेतन सहित सम्पूर्ण जगत् को {इस देहरूप वटवृक्ष में} एक ही जगह
पश्य च यत् अन्यत् द्रष्टुं इच्छसि | देख लो और जो अन्य कुछ भी {तीसरे ज्ञाननेत्र से} देखना चाहते हो, {देख लो};

न तु मां शक्यसे द्रष्टुं अनेन एव स्वचक्षुषा। दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगं ऐश्वरं।। 11/8

तु अनेन एव स्वचक्षुषा मां न द्रष्टुं | किंतु इन्हीं अपनी {जड़} आँखों से मुझ {विराट रूप} को नहीं देख
शक्यसे ते दिव्यं चक्षुः ददामि | सकेगा; {अतः} तुझको दिव्य {बुद्धि का तीसरी ज्ञान}नेत्र देता हूँ,
मे ऐश्वरं योगं पश्य | {जिससे} मेरे ऐश्वर्यवान यौगिक {ऊर्जा-संपन्न} रूप को देख {सकेगा}।

संजय उवाचः-एवं उक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः। दर्शयामास पार्थाय परमं रूपं ऐश्वरं।। 11/9

ततः राजन् एवं उक्त्वा महायोगेश्वरः हरिः | तब राजन! ऐसा कहकर महान योगेश्वर पापहर्ता {शिव भगवान/हरि}
पार्थाय परमं ऐश्वरं रूपं दर्शयामास | अर्जुन को परम ऐश्वर्यवान् {विभिन्न प्रकार के} विभूतिरूप दिखाने लगे।

अनेकवक्त्रनयनं अनेकाद्भुतदर्शनं। अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधं।। 11/10
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगंधानुलेपनं। सर्वाश्चर्यमयं देवं अनन्तं विश्वतोमुखं।। 11/11

बुद्धिः ज्ञानं असम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः। सुखं दुःखं भवः अभावः भयं च अभयं एव च।। 10/4

बुद्धिः ज्ञानं असम्मोहः क्षमा | निर्णयशक्ति, सारा सृष्टिज्ञान, {मेरे सिवा सभी में} निर्मोही होना, क्षमाभाव,
सत्यं दमः शमः सुखं दुःखं | सत्य, {इन्द्रिय-}दमन, शान्ति, {नई-पुरानी दुनिया के} सुख-दुःख,
भवोऽभावो भयं चाभयमेव च | {और भी अनेक सांसारिक} उत्पत्ति, अभाव, भय और अभय भी तथा

अहिंसा समता तुष्टिः तपः दानं यशः अयशः। भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।। 10/5

अहिंसा समता तुष्टिः | किसी को दुःखी न करना, समान भाव, {अनायास जो मिले उसी में} संतोष,
तपः दानं यशः अयशः भूतानां | {आत्मस्टार की स्मृतिरूप} तपस्या, दान, यश, अपयश {आदि}, प्राणियों के
पृथग्विधाः भावा मत्त एव भवन्ति | अनेक प्रकार के {अच्छे-बुरे} भाव {मूलतः} मेरे {सृष्टि-बीज महादेव} से ही होते हैं।
{मैं शिवज्योति+साकार महादेव का मेल=शिव+लिंग ही मनुष्य-सृष्टि रूपी अश्वत्थ वृक्ष का अविनाशी बीज-रूप बाप हुआ।}

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवः तथा। मद्भावा मानसा जाता येषां लोके इमाः प्रजाः।। 10/6

पूर्वे चत्वारः मनवः तथा सप्त महर्षयः | पूर्वकालीन चार सनकादिक मानस पुत्र तथा सात महर्षिगण-{ये सब}
मद्भावा मानसा जाता येषां | मेरे {ही} आत्म-भाव हैं, मानसी पैदाइश हैं। जिनकी {स्वर्गीय और नारकीय}
लोके इमाः प्रजाः | संसार में यह {देवता-स्लामादि सारे ही इन 11 रुद्रगणों की वैराइटी} प्रजा हैं।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः। सः अविकम्पेन योगेन युज्यते न अत्र संशयः।। 10/7

यः मम एतां विभूतिं च योगं | जो मेरी इस {विशेष रचना रूप} विभूति को तथा {मेरी} योगऊर्जा को

हि सः सम्यक् व्यवसितः | क्योंकि वह समुचित निश्चयवान् है। {किंतु अनिश्चय बुद्धि विनश्यते हो जावेंगे।}
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वत् शान्तिं निगच्छति। कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।। 9/31

क्षिप्रं धर्मात्मा भवति शश्वत् | {दृढनिश्चयी} जल्दी ही धर्मात्मा बन जाता है, स्थायी {अर्धकल्प से भी अधिक}
शांतिं निगच्छति कौन्तेय प्रति | {100%} शान्ति पा लेता है। हे कुंती-पुत्र! {ऐसा अव्यभिचारी योगी}, निश्चय
जानीहि मे भक्तः न प्रणश्यति | जानो {कि वह} मेरा भक्त {द्वापुर-कलियुग में भी धर्मभ्रष्ट} नष्ट नहीं होता।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य ये अपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्याः तथा शूद्राः ते अपि यान्ति परां गतिं।। 9/32

हि पार्थ ये अपि स्त्रियः वैश्याः | क्योंकि हे पृथ्वीपति! {इस नारकीय दुनियाँ में} जो भी {पूर्वजन्मकृतानुसार} स्त्री, वैश्य
तथा शूद्राः पापयोनयः स्युः ते अपि | तथा शूद्र {जैसी} पापयोनियाँ {भी} हों, वे भी {पूर्वजन्मकृत कोई श्रेष्ठ कर्मों से}
मां व्यपाश्रित्य परां गतिं यान्ति | मेरा आश्रय लेकर {इसी जन्म में विष्णुरूप वैकुण्ठ की} परमगति को पाते हैं।

किं पुनः ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयः तथा। अनित्यं असुखं लोकं इमं प्राप्य भजस्व मां।। 9/33

पुनः पुण्या ब्राह्मणाः तथा भक्ता | फिर पुण्यशील {सूर्यवंशी} ब्राह्मण-देवों का तथा भक्त {प्रवरक्षत्रिय}
राजर्षयः किं इमं अनित्यं असुखं | राजर्षियों का क्या {कहना! इसीलिए} इस क्षणभंगुर {और} दुःखी {नारकीय}
लोकं प्राप्य मां भजस्व | लोक को पाकर, मुझ {एकमात्र सदासुखदायी शिवबाबा} को याद कर।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मां एव एष्यसि युक्त्वा एवं आत्मानं मत्परायणः।। 9/34

मन्मना मद्याजी मद्भक्तः भव मां | {तू} मेरे में मन लगा, मेरी यज्ञसेवा कर, मेरा भक्त बन जा। मुझ {शिवबाबा} को

तत्त्वतः वेत्ति सः अविकम्पेन योगेन | तत्त्वपूर्वक {गहराई से} जानता है, वह अविचलित रूप से योग द्वारा
युज्यते अत्र संशयः न | {शिव नाम से शंकर की तरह} *जुड़ जाता है। इस {बात} में संशय नहीं है।

{*सारे संसार में एकमात्र शंकर महादेव का नाम ही शिव से जोड़ा जाता है, और किसी देव, दानव, मानव या फरिश्ता का नहीं जोड़ा जाता; इसीलिए भारत में बाप के साथ बच्चों का नाम जोड़ने की सामाजिक परंपरा आज भी चालू है।}

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते। इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।। 10/8

अहं सर्वस्य प्रभवः मत्तः | मैं {शिवबाबा} सारे जगत का उत्पादक हूँ। मेरे {ही पवित्रभावों} से {अच्छा-2}
सर्वं प्रवर्तते इति मत्वा | सारा {सृष्टिगत कार्य} चलता है। ऐसा {ब्राह्मण-जीवन में सदा} मानकर
भावसमन्विताः बुधा मां भजन्ते | भावविभोर हुए बुद्धिमान* लोग मुझको {पु. संगम में निरंतर} याद करते हैं।

{अन्यथा बुद्धू लोग तो नीची कुरी के अन्यान्य देव-देवियों, धर्मपिताओं, फरिश्तों या भूत-प्रेतों आदि को ही याद करते हैं।}

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परं। कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।। 10/9

मच्चित्ता नित्यं मद्गतप्राणा | मेरे में मन-बुद्धि लगाने वाले, सदा मेरे में ही जिनके प्राण लगे हुए हैं, {वे}
परस्परं बोधयन्तः च मां च | परस्पर एक-दूसरे को समझाते हुए और मेरे {क्रियाकलापों/जीवन-कथा के विषय} में ही
कथयन्तः तुष्यन्ति च रमन्ति | वार्तालाप करते हुए, सन्तोष पाते हैं और सदा {अतीन्द्रिय} सुख में रमण करते हैं।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकं। ददामि बुद्धियोगं तं येन मां उपयान्ति ते।। 10/10

प्रीतिपूर्वकं भजतां तेषां सततयुक्तानां तं | प्रीतिपूर्वक याद करने वाले उन निरन्तर योगियों को ऐसी {एकाग्र}

नमस्कुरु एवं आत्मानं युक्त्वा | श्रद्धा से झुक जा! इस प्रकार {अव्यभिचारी मन-बुद्धि रूप} आत्मा का लगाव लगाय
मत्परायणः मां | मेरे आश्रित हुआ मुझ {सदा स्वाधीन सर्वोत्तम शासक से राजयोग द्वारा राजाईभाव} को
एव एष्यसि | ही पाएगा, {पुरुषोत्तम संगमयुगी शूटिंग में भी किसी के आधीन नहीं बनेगा।}

श्रीभगवानुवाचः-भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः। यत् ते अहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।। 10/1

महाबाहो भूय एव परमं मे | हे {सहयोगियों रूपी} दीर्घबाहु! पुनः {धर्मपिताओं से} भी सर्वोत्तम मेरी
वचः शृणु यदहं प्रीयमाणाय | वाणी सुनो। जिसे मैं {सुनने-समझने में ज्ञानियों में सर्वोत्तम} प्रीतिमान हुए
ते हितकाम्यया वक्ष्यामि | तेरी हित-कामना से कहूँगा। {क्योंकि सारे ही सृष्टिवृक्ष की भलाई बीजरूप तेरे से है।}

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः। अहं आदिः हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।। 10/2

मे प्रभवं न सुरगणाः | मेरे दिव्य {प्रवेश योग्य} जन्म को (गी.11-54) न देवगण {और}
न महर्षयः विदुः हि देवानां च | न {द्वापरयुगी} महर्षियों ने जाना है; क्योंकि देवताओं, {देवर्षियों} और
महर्षीणां सर्वशः आदिः अहं | महर्षियों का सब प्रकार से आदिदेव/महादेव मैं {परमपिता शिव ही} हूँ।

यो मां अजं अनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरं। असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।। 10/3

यः मां अजं अनादिं च | जो मुझ {शिवबाबा} को अजन्मा, अनादि और {सुख, दुःख या शांतिधाम}
लोकमहेश्वरं वेत्ति स मर्त्येषु | त्रिलोकी का महान शासक {सर्वशक्तिमान} जानता है, वह मनुष्यों में
असम्मूढः सर्वपापैः प्रमुच्यते | {सम्पूर्ण} मोहरहित हुआ, सब पापों से भली-भाँति {आधाकल्प} मुक्त हो जाता है।

वृष्णीनां वासुदेवः अस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः। मुनीनां अपि अहं व्यासः कवीनां उशना कविः।। 10/37

वृष्णीनां | {ज्ञानवर्षाकर्ता} वृष्णिवंशी योरोपवासी यादवों में {वसुदेव/शिव का पुत्र}
वासुदेवः अस्मि पांडवानां | वासुदेव {बंब महादेव} हूँ। {ब्रह्मलोकीय मार्गदर्शी} पण्डा रूप पाण्डु का पुत्र
धनंजयः मुनीनां अहं व्यासः | ज्ञानधनजेता अर्जुन, {द्वापुर के मननशील} मुनियों में मैं व्यास हूँ {और}
कवीनां उशना कविः अपि | कवियों में उशना कवि {शुक्राणुविद्या का आचार्य असुर गुरु} भी {हूँ}।

दण्डो दमयतां अस्मि नीतिः अस्मि जिगीषतां। मौनं चैव अस्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतां अहं।। 10/38

दमयतां दंडः अस्मि जिगीषतां | दमनकर्ताओं का {यम/धर्मराज रूप} दंडाधिकार हूँ, विजयेच्छुकों की
नीतिः अस्मि गुह्यानां मौनं अस्मि | राजनीति हूँ, {गुप्त संबंध जोड़ने वाले} गोप-गोपियों का {रक्षक} मौन हूँ
च ज्ञानवतां ज्ञानं अहं एव | और {पृथ्वी-जलादि 23 तत्वदर्शी} ज्ञानवानों का तत्वज्ञानी मैं ही {हूँ}।

यत् च अपि सर्वभूतानां बीजं तत् अहं अर्जुन। न तत् अस्ति विना यत् स्यात् मया भूतं चराचरं।। 10/39

च अर्जुन सर्वभूतानां यत् अपि | और हे अर्जुन! सब {84 लाख योनियों में} प्राणीमात्र का जो {कुछ} भी
बीजं तत् अहं तत् चराचरं भूतं | बीज है, वह {शिवसमान लिंगरूप} मैं हूँ। वैसा {एक भी} चर-अचर प्राणी
न अस्ति यन्मया विना स्यात् | नहीं है, जो मेरे {योगीश्वर जगत्पिता/जगन्नाथ/विश्वनाथ} से रहित हो।

•{दुनियाँ की ऐसी कोई चीज़ नहीं जो (बीजरूप) तेरे पर लागू न हो। (मु.ता.11/4/74 पृ.3 अंत)}{जैसे बिजली की पावर जड़ यंत्रों को चलाती है, वैसे ही योगीश्वर के योग की पावर नं. वार प्राणियों की जड़ देहरूप यंत्रों को चलाती है।}

हि कमलपत्राक्ष मया भूतानां | क्योंकि हे कमललोचन {शिवबाबा}! मैंने {इस पु. संगम में} प्राणियों की
भवाप्ययौ त्वत्तः विस्तरशः श्रुतौ | उत्पत्ति और विनाश को {चतुर्मुखी ब्रह्मा द्वारा} आपसे विस्तारपूर्वक सुना
च अव्ययं माहात्म्यं अपि | और {इस मुकर्रर रथ में आपका} अविनाशी महात्म्य भी {सुना}।

एवं एतत् यथा आत्थ त्वं आत्मानं परमेश्वर। द्रष्टुं इच्छामि ते रूपं ऐश्वरं पुरुषोत्तम।। 11/3

परमेश्वर त्वं आत्मानं यथा आत्थ | हे महेश्वर! आपने अपनी {विभूतियों} को जैसा {संक्षेप में} बताया है,
एतत् एवं पुरुषोत्तम | {यदि} यह ऐसा {ही है, तो} हे आत्माओं में उत्तम {रंगमंच के M.D. शिवबाबा}!
ते ऐश्वरं रूपं द्रष्टुं इच्छामि | आपके ऐश्वर्यवान् {विराट} रूप को {बुद्धिरूप ज्ञाननेत्र द्वारा} देखना चाहता हूँ।

मन्यसे यदि तत् शक्यं मया द्रष्टुं इति प्रभो। योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शय आत्मानं अव्ययं।। 11/4

प्रभो यदि इति मन्यसे मया तत् द्रष्टुं शक्यं ततः | हे प्रभु! यदि ऐसा मानते हो {कि} मैं उसे देख सकता हूँ, तो
योगेश्वर त्वं आत्मानं अव्ययं मे दर्शय | हे योगेश्वर {शिवबाबा!} आप अपना अविनाशी {विभूतिरूप} मुझे दिखाइए।

श्रीभगवानुवाचः-पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशः अथ सहस्त्रशः। नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च।। 11/5

पार्थ नानाविधानि च नानावर्णाकृतीनि | हे पृथ्वीराज! अनेक प्रकार के और अनेक वर्ण और आकार वाले
शतशः अथ सहस्त्रशः मे दिव्यानि रूपाणि पश्य | सैकड़ों और हज़ारों मेरे {पुत्ररूप रुद्रों के} दिव्य रूपों को देख।

पश्य आदित्यान् वसून् रुद्रान् अश्विनौ मरुतः तथा। बहूनि अदृष्टपूर्वाणि पश्य आश्चर्याणि भारत।। 11/6

भारत आदित्यान् वसून् रुद्रान् | हे भरतवंशी! {जिनमें} 12 सूर्यरूप चक्रवर्तियों, 8 वसुदेवों, 11 रुद्रों,

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः। गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।। 10/26

सर्ववृक्षाणां अश्वत्थः देवर्षीणां | **सब वृक्षों में अश्वत्थ** {रूप सृष्टिवृक्ष}, **देवर्षियों में** {परमप्रसिद्ध ज्ञानदाता भक्त}
नारदः गन्धर्वाणां चित्ररथः च | **नार+द,** {अर्धदेव गायकरूप} **गन्धर्वों में चित्ररथ और** {सर्वसमृद्धिप्राप्त}
सिद्धानां कपिलो मुनिः | **सिद्धों में** {कपिल के बजाए काम्पिल्यनगर का सांख्यवेत्ता} **कपिल मुनि हूँ।**

उच्चैःश्रवसं अश्वानां विद्धि मां अमृतोद्भवं। ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपं।। 10/27

मां अश्वानां अमृत- | **मुझे** {मनरूप} **अश्वों में** {योगबल से एकाग्र हुआ और} {ज्ञान-}**अमृत मंथन से**
उद्भवं उच्चैःश्रवसं गजेन्द्राणां | **पैदा उच्चैश्रवा,** {देहभानी} **हाथी** {रूपी वरुण के गजगोर वाले साथी महारथियों} **में {इरावन-पुत्र}**
ऐरावतं च नराणां नराधिपं विद्धि | **ऐरावत और मनुष्यों में राजाधिराज** {काशी विश्वनाथ/जगन्नाथ} **जान।**

आयुधानां अहं वज्रं धेनूनां अस्मि कामधुक्। प्रजनश्च अस्मि कन्दर्पः सर्पाणां अस्मि वासुकिः।। 10/28

अहं आयुधानां वज्रं धेनूनां | **मैं आयुधों में** {अटूट पुरुषार्थी-जैसा} **वज्र हूँ, गायों में** {धरणी माता रूपा}
कामधुक् अस्मि च प्रजनः कन्दर्पः | **कामधेनु गाय हूँ और प्रकृष्ट सन्तान-उत्पादकों में** {वृषरूप} **कामदेव**
अस्मि सर्पाणां वासुकिः अस्मि | **हूँ** {और सर्प-गतिशील} **सर्पों में** {महाव्यभिचारी विषपायी} **वासुकि हूँ।**

अनन्तश्च अस्मि नागानां वरुणो यादसां अहं। पितॄणां अर्यमा च अस्मि यमः संयमतां अहं।। 10/29

अहं नागानां अनन्तः च | **मैं नागों में** {अन्तहीन महाविनाशकारी काला} **अनंतनाग &** {विशाल ज्ञान-}
यादसां वरुणः अस्मि अहं पितॄणां | **जल-जन्तुओं में वरुणदेव हूँ। मैं** {8 धर्मों के बीज अष्टदेव} **पितरों में** {विवस्वत

द्वन्द्वः अस्मि अक्षयः कालः | **द्वन्द्व** {युद्ध का} **समास हूँ। अविनाशी** {सृष्टि-कालचक्र में सदा हाजिर} **काल**
अहं विश्वतोमुखः धाता अहं एव | **हूँ, सभी दिशाओं में** {ऊर्ध्व} **मुखवाला पंचमुखी परंब्रह्मा मैं ही** {हूँ}।
मृत्युः सर्वहरश्च अहं उद्भवश्च भविष्यतां। कीर्तिः श्रीः वाक् च नारीणां स्मृतिः मेधा धृतिः क्षमा।। 10/34

सर्वहरः मृत्युः अहं च भविष्यतां | **सबका लोपकर्ता, प्रलयकर्ता, महामृत्यु हूँ और** {निकट} **भविष्य में** {प्रत्यक्ष}
उद्भवः च नारीणां | **उत्पन्न होने वालों का उद्गम हूँ और** {अर्धनारीश्वर/ज्योतिर्लिंग में} **नारियों की**
कीर्तिः श्रीः वाक् स्मृतिः | **कीर्ति, श्री वाक्देवी,** {सदा स्थायी} **आत्म-स्मृति,** {बुद्धिरूप त्रिनेत्री शंकर की}
मेधा धृतिः च क्षमा | **समझशक्ति,** {युधिष्ठिर का} **धैर्य और क्षमा** {मैं सदाशिवज्योति ही हूँ}।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसां अहं। मासानां मार्गशीर्षः अहं ऋतूनां कुसुमाकरः।। 10/35

तथा साम्नां बृहत्साम छन्दसां | **उसी तरह** {सूर्योत्पन्न मीठे} **सामवेद में बृहत्साम हूँ। छन्दों में** {त्रिदेवियों का}
गायत्री अहं मासानां मार्गशीर्षः | **गायत्री मंत्र मैं हूँ। महीनों में** {सिर-जैसा मार्गदर्शी पूर्णमासी का} **मार्गशीर्ष**
ऋतूनां कुसुमाकरः अहं | {और} **ऋतुओं में** {सदाबहारी हीरोपार्टधारी शिवबाबा} **बसन्त ऋतु हूँ।**

द्यूतं छलयतां अस्मि तेजः तेजस्विनां अहं। जयः अस्मि व्यवसायः अस्मि सत्त्वं सत्त्ववतां अहं।। 10/36

अहं छलयतां द्यूतं तेजस्विनां तेजः | **मैं** {बहुरूपिया} **छलियों का जुआ हूँ, तेजस्वियों का** {ज्ञानसूर्य} **तेज**
अस्मि जयः अस्मि व्यवसायः | **हूँ,** {सदा विजयी आदिना0 की} **जय हूँ,** {स्वर्ग निर्माणार्थ} **दृढ़निश्चयी**
अस्मि सत्त्ववतां सत्त्वं अहं | **हूँ,** {आदिकालीन सभी युगों में} **सात्विक पुरुषों की सात्विकता हूँ।**

लोकान् व्याप्य त्वं तिष्ठसि अशेषेण | **लोकों को फैलाकर आप** {अव्यक्त होकर} **बैठ जाते हो,** {वे} **सारी**
दिव्या आत्मविभूतयः वक्तुं अर्हसि | **दैवी जीवात्मरूप विभूतियाँ बताने में** {आप त्रिकालज्ञ} **समर्थ हो।**

कथं विद्यां अहं योगिन् त्वां सदा परिचिन्तयन्। केषु केषु च भावेषु चिन्त्यः असि भगवन् मया।। 10/17

योगिन् अहं कथं सदा परिचिन्तयन् | **हे योगीश्वर!** {आपके बिना} **मैं कैसे निरंतर विचार-मंथन करता हुआ**
त्वां विद्यां च भगवन् केषु-2 | **आपको पूरी रीति जान सकता हूँ और हे भगवन्! किन-2** {श्रेष्ठ}
भावेषु मया चिन्त्यः असि | **भावों में मेरे द्वारा** {आप निरंतर} मनन-चिन्तन **करने योग्य हो?**

विस्तरेण आत्मनः योगं विभूतिं च जनार्दन। भूयः कथय तृप्तिः हि शृण्वतो न अस्ति मे अमृतं।। 10/18

जनार्दन आत्मनः योगं च | **हे अवढरदानी शिवबाबा! अपनी** {इस} **योग**{-ऊर्जा-}**शक्ति और** {अपनी}
विभूतिं भूयः विस्तरेण कथय हि मे | ***विभूतिओं को दुबारा विस्तार से कहिए; क्योंकि मुझे** {इस अखूट}
अमृतं शृण्वतः तृप्तिः न अस्ति | {सम्पूर्ण व्याख्यायुक्त} **ज्ञानामृत** {सांख्य} **को सुनते हुए तृप्ति नहीं होती।**

* {गीता 10-6 में वर्णित विभूतियों में परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है, उसकी यौगिक ऊर्जा ही उनमें व्यापक है। जगत् के सारे प्राणी छोटी-बड़ी बैटरीज़ हैं, जो कल्पांत की पु. संगमयुगी शूटिंग में परमात्म-पावरहाउस जगत्पिता द्वारा क्रमशः यथायोग्य पुरुषार्थ-अनुसार योगशक्ति ग्रहण करते हैं।} ('परमात्मा' पावरहाउस देखें, गीता 15-17; 6-7; 13-22, 31) इसी ऊँची पवित्र योगावस्था की यादगार काशीकैलाशीवासी योगीश्वर महादेव-मूर्ति है।

श्रीभगवानुवाचः-हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या हि आत्मविभूतयः। प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ न अस्ति अन्तः विस्तरस्य मे।। 10/19

बुद्धियोगं ददामि येन ते मां उपयान्ति | **बुद्धि देता हूँ, जिससे वे** {इसी जन्म में} **मेरे** {ही प्रतिरूप} **को पहुँच जाते हैं।**
तेषां एव अनुकम्पार्थं अहं अज्ञानजं तमः। नाशयामि आत्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।। 10/11

तेषां अनुकम्पार्थं एव अहं | **उनपर** {सृष्टिगत, दीर्घकालीन} **दया करने के लिए ही मैं** {आत्माओं का बाप शिवज्योति}
आत्मभावस्थः भास्वता | **आत्मभाव में,** {सदाकाल पु. स्वर्णिम संगमयुग में} **स्थित** {उस} **चमकते हुए**
ज्ञानदीपेन अज्ञानजं | {त्रिनेत्री महादेव} **ज्ञान-दीपक द्वारा,** {माया-रावण की} **अज्ञानता* से उत्पन्न**
तमः नाशयामि | {भक्ति के} **अंधकार को** {ब्राह्मण जन्म में} **नष्ट कर देता हूँ।** {'ऋते *ज्ञानान्न मुक्तिः'}

{मैं बुद्धिमानों की बुद्धि सदाशिव ज्योति मूर्तिमान (शंकर) जगत्पिता को सबसे पहले अनवरत ज्ञान-मार्ग में ले आता हूँ। द्वैतवादी द्वापर से, 2.5 हज़ार साल में विधर्मियों के अज्ञान से ही भारतीयों की भक्तिमार्ग में दुर्गति हुई है।}

अर्जुन उवाचः-परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्। पुरुषं शाश्वतं दिव्यं आदिदेवं अजं विभुं।। 10/12

भवान् परं ब्रह्म परं धाम परमं पवित्रं | **आप** {शिवबाबा ही} **परंब्रह्म हैं, श्रेष्ठतम धाम/घर हैं, परमपवित्र हैं,**
शाश्वतं दिव्यं पुरुषं विभुं | **शाश्वत दिव्य पुरुष हैं** {और बहुरूपिया के} **विशेष रूपों में व्यक्त होते हैं।**
अजं आदिदेवं | {सदा अनासक्त, अकर्ता&दिव्य प्रवेश के कारण} **अगर्भजन्मा** {होने से} **आदि-अनादि देव हैं।**

आहुः त्वां ऋषयः सर्वे देवर्षिः नारदः तथा। असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।। 10/13

त्वां सर्वे ऋषयः देवर्षिः नारदः | {ऐसा} **आपके विषय में सब ऋषियों, देवर्षि** {त्रिलोक-भ्रमणा} **नारद ने,**
असितः देवलः तथा व्यासः आहुः | **असित ने, देवल ने और** {जगप्रसिद्ध मुनि वेद-}**व्यास ने कहा है**

च स्वयं एव मे ब्रवीषि | **और आप स्वयं ही मुझे** {यही} **बताते हैं** {कि आप ही सर्वोपरि सत्ता हैं।}

सर्वं एतत् ऋतं मन्ये यत् मां वदसि केशव। न हि ते भगवन् व्यक्तिं विदुः देवाः न दानवाः।। 10/14

केशव यत् मां वदसि एतत् सर्वं ऋतं | **हे ब्रह्मा के शासक** {शिवबाबा}**! जो मुझे कहते हो, यह सब** {कुछ} **सत्य**

मन्ये हि भगवन् ते | **मानता हूँ; क्योंकि हे भगवन्! आपके** {हर जन्म में हीरोपार्टधारी}

व्यक्तिं न देवाः न दानवाः विदुः | **व्यक्त** {मूर्तिमान व्यक्तित्व महादेव} **भाव को न देवताएँ** {और} **न दानव** {पूरी तरह} **जानते हैं।** {तो भला मैं महापतिततम भोगी आपके बिना कैसे जानूँगा?}

स्वयं एव आत्मना आत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम। भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।। 10/15

पुरुषोत्तम भूतभावन | **हे आत्माओं में श्रेष्ठतम** {परमपिता शिव!} हे **प्राणियों के** {आत्मिक} **जन्मदाता**

भूतेश देवदेव जगत्पते त्वं स्वयं | **भूतेश्वर! हे देवाधिदेव जगत्-पति! आप *स्वयं** {*अजन्मा होने कारण}

एव आत्मना आत्मानं वेत्थ | **ही अपने** {मुकर्रर अर्जुन रथ} **द्वारा अपनी आत्मा के स्वरूप को जानते हो।**

* {वह सद्गुरु स्वयं ही आकर अपना परिचय देते हैं। (मु.ता.8.10.68 पृ.2 मध्य) बाप के सिवा बाप का परिचय कोई दे न सके।}*क्योंकि बाकी सभी देव-दानव-ऋषिमुनि जन्म-मरणचक्र में आने से भूल जाते हैं। तुलसीदास ने भी रामायण में यही कहा है- 'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।' {अयोध्या कांड}

वक्तुं अर्हसि अशेषेण दिव्या हि आत्मविभूतयः। याभिः विभूतिभिः लोकान् इमान् त्वं व्याप्य तिष्ठसि।। 10/16

याभिः विभूतिभिः इमान् | **जिन** {पूर्ववर्णित (गी.10/6)} **विभूतियों द्वारा इन** {स्वर्ग-नरकादि}

कुरुश्रेष्ठ प्राधान्यतः दिव्या | **हे कुरुश्रेष्ठ!** {तेरे सिवा पहले किसी को न बताई गई ये} **खास-2 दिव्य**

आत्मविभूतयः ते हन्त कथयिष्यामि | **अपनी विभूतियाँ** {सब-कुछ ज्ञानार्थ उत्कंठित} **तुझे अनुकंपार्थ कहूँगा;**

हि मे विस्तरस्य अन्तः न अस्ति | **क्योंकि** {सृष्टि-बीजरूप} **मेरे विस्तार रूप** {महादेव/आदम} **का अन्त नहीं है।**

अहं आत्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। अहं आदिश्च मध्यं च भूतानां अन्तः एव च।। 10/20

गुडाकेश अहं आत्मा | **हे निद्राजीत! मैं आत्मा** {परमपिता चेतन शिवज्योति जड़ सूर्य समान}

सर्वभूताशयस्थितः च भूतानां | **सब प्राणियों के आधार** {योगीश्वर महादेव} **में स्थित हूँ और प्राणियों का**

आदिः मध्यं च अन्तः अहं एव | **आदि, मध्य और** {कल्पान्तकालीन} **महाविनाश** {कल्प-2} **मैं ही हूँ।**

आदित्यानां अहं विष्णुः ज्योतिषां रविः अंशुमान्। मरीचिः मरुतां अस्मि नक्षत्राणां अहं शशी।। 10/21

ज्योतिषां अंशुमान् रविः अहं | **ज्योतिमान् पदार्थों में** {आत्मज्योति-}**किरणों वाला** {चैतन्य ज्ञान-}**सूर्य हूँ। मैं**

आदित्यानां विष्णुः मरुतां | {माला के 12 सूर्यवंशी} **आदित्यों में विष्णु हूँ।** {7 विधर्मियों के 7x7=49} **मरुतों में**

मरीचिः अस्मि नक्षत्राणां अहं शशी | **मैं** {सूर्य-ज्योतिकिरण} **मरीचि हूँ।** {ज्ञान-योग से भासित} **नक्षत्रों में मैं चन्द्रमा हूँ।**

वेदानां सामवेदः अस्मि देवानां अस्मि वासवः। इन्द्रियाणां मनश्च अस्मि भूतानां अस्मि चेतना।। 10/22

वेदानां सामवेदः अस्मि देवानां | **वेदों में सामवेद** {सच्चा-2 गीताज्ञान} **हूँ। वसुदेवों में** {प्रधान वसु-पुत्र}

वासवः अस्मि इन्द्रियाणां मनः | **वासव/वासुदेव हूँ।** {11 प्रबल रुद्ररूप} **इन्द्रियों में मन** {रूपी चंचल कपिध्वज}

अस्मि च भूतानां चेतना अस्मि | **हूँ और** {भिन्न-2 समुदाय के} **प्राणियों में** {योग-ऊर्जारूप} **चेतनाशक्ति हूँ।**

{अजन्मा होने से अखूट ज्ञानधनवान शिवज्योति ही वसु है, जिसका बड़ा बच्चा इन्द्रदेव ही वसुपुत्र 'वासव' है।}

रुद्राणां शङ्करश्च अस्मि वित्तेशो यक्षरक्षसां। वसूनां पावकश्च अस्मि मेरुः शिखरिणां अहं।। 10/23

अहं रुद्राणां शंकरः च यक्षरक्षसां | **मैं** {शिवज्योति ही} **रुद्रगणों में** {महारुद्र} **शंकर हूँ और यक्ष-राक्षसों में**

वित्तेशः अस्मि वसूनां पावकः | {प्रैक्टिकल ज्ञान-}**धनकुबेर हूँ; वसुओं में** {ज्ञान-योग की} **पावक अग्नि**

च शिखरिणां मेरुः अस्मि | **और शिखरों में एवरेस्ट* चोटी** {रूपी ब्राह्मण-चोटी शंकर महादेव} **हूँ।**

*{महाविनाशकाल की जलमई में सिर्फ यही अनादि-अनंत एवरेस्ट चोटी बचेगी।} ''हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह। एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा था प्रबल प्रवाह।'' - (जयशंकर प्रसाद)

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिं। सेनानीनां अहं स्कन्दः सरसां अस्मि सागरः।। 10/24

पार्थ पुरोधसां मुख्यं बृहस्पतिं | **पृथ्वीश्वर! पुरोहितों में सबका मुखिया** {पतियों का महान पति} **बृहस्पति**

मां विद्धि अहं सेनानीनां | **मुझे जान। मैं सेनापतियों में** {छः विधर्मियों की कृत्तिकाओं से पोषित}

स्कन्दः च सरसां सागरः अस्मि | **कार्तिकेय और** {ज्ञान-जल के} **सरोवरों में** {धरणीपति ज्ञान-}**सागर हूँ।**

महर्षीणां भृगुः अहं गिरां अस्मि एकं अक्षरं। यज्ञानां जपयज्ञः अस्मि स्थावराणां हिमालयः।। 10/25

अहं महर्षीणां भृगुः गिरां एकं अक्षरं | **मैं महर्षियों में भृगु&वाणियों में** {अ, उ, म का मेल} **एकाक्षर 'ऊँ'**

अस्मि यज्ञानां जपयज्ञः | **मैं हूँ। यज्ञों में** {बिंदुरूप आत्म-स्मृति का मानसिक} **जपयज्ञ हूँ**

स्थावराणां हिमालयः अस्मि | {और} **स्थिरियम पर्वतों में** {युधि+स्थिर रूप} **हिमालयराज/हिमवान् हूँ।**

अर्यमा च संयमतां यमः अस्मि | ज्ञानसूर्य/} **अर्यमा और यम-नियम पालनकर्ताओं में** {धर्म का राजा} **यमराज हूँ।**

प्रह्लादश्च अस्मि दैत्यानां कालः कलयतां अहं। मृगाणां च मृगेन्द्रः अहं वैनतेयश्च पक्षिणां।। 10/30

अहं दैत्यानां प्रह्लादश्च कलयतां | **मैं** {द्वैतवादी युग के} **दैत्यों में प्र+आह्लाददाता और कालगणना कर्ताओं का**

कालः अस्मि च मृगाणां | **महाकाल हूँ। ऐसे ही** {इस काँटों के संसार रूपी जंगल में जानवरबुद्धि} **पशुओं में**

मृगेन्द्रः च पक्षिणां वैनतेयः अहं | **सिंह और** {ज्ञान-योग के पंख वाले} **पक्षियों में** {सुपर्ण/नागाशन} **मयूर हूँ।**

पवनः पवतां अस्मि रामः शस्त्रभृतां अहं। झषाणां मकरश्च अस्मि स्रोतसां अस्मि जाह्नवी।। 10/31

पवतां पवनः अस्मि शस्त्र- | **पावनकर्ताओं में** {पतितपावन सीताराम-जैसा} **पवनदेव हूँ,** {ज्ञान-}**शस्त्र**

भृतां रामः अहं झषाणां मकरः | **धारणकर्ताओं में राम** {ही} **हूँ। मछलियों में** {मत्स्यावतार} **मगरमच्छ**

अस्मि च स्रोतसां अस्मि जाह्नवी | **हूँ और** {विश्वभर की देशी-विदेशी} **नदियों में** {मैं ही पतित-पावनी} **गंगा हूँ।**

सर्गाणां आदिः अन्तश्च मध्यं चैव अहं अर्जुन। अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतां अहं।। 10/32

अर्जुन सर्गाणां आदिः मध्यं च | **हे अर्जुन!** {सारी} **सृष्टियों का आदि** {आदिदेव}**, मध्य** {स्लामियों का आदम} **और**

अन्तः अहं एव विद्यानां अध्यात्म- | **अंत** {महाकाल} **मैं ही हूँ। विद्याओं में आध्यात्मिक** {विश्वविद्यालय की}

विद्या च प्रवदतां वादः अहं | **विद्या हूँ और** {सत्य-असत्य} **वाद-विवाद कर्ताओं का** {सत्यरूप} **वाद** {भी} **हूँ।**

अक्षराणां अकारः अस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च। अहं एव अक्षयः कालो धाता अहं विश्वतोमुखः।। 10/33

अक्षराणां अकारः च सामासिकस्य | **अ+क्षरों में** {अहं+दा+बादी} **अकार और समासों में** {कौरव+पांडवों के}

शक्तियों&संस्कारों की आदिकालीन से लेकर कल्पान्तकालीन तक के सारे विस्तार की पहचान बताई है।}

ज्ञेयं यत् तत् प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा अमृतं अश्नुते। अनादिमत् परं ब्रह्म न सत् तत् न असत् उच्यते।। 13/12

यत् ज्ञेयं यत् ज्ञात्वा अमृतं | **जो** {परमपिता+परमात्मा} **जानने योग्य है, जिसे जानकर** {सदा अमरता का}

अश्नुते तत् प्रवक्ष्यामि तत् अनादिमत् | अनुभव करता है, उसे {मैं} कहता हूँ। वह आदिरहित {शिवज्योति+आदम}

परं ब्रह्म न सत् न असत् उच्यते | **परब्रह्म** {परमात्मा कालक्रमानुसार} **सत्, न असत् कहा जाता है।**

सर्वतःपाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखं। सर्वतःश्रुतिमत् लोके सर्वं आवृत्य तिष्ठति।। 13/13

तत् सर्वतःपाणिपादं सर्वतः | **वह सब ओर हाथ-पैर वाला, सब ओर** {पु. संगम में भी अपनी योगऊर्जा से}

अक्षिशिरोमुखं सर्वतःश्रुतिमत् | **आँख, मस्तक, मुख** {और} **सब ओर कान-**{नाक-स्पर्शेन्द्रिय} **वाला**

लोके सर्वं आवृत्य तिष्ठति | **संसार में सबको** {योगऊर्जा से} **आवृत करके** {संसार में} **रहता** {भी} **है।**

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितं। असक्तं सर्वभृत् चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।। 13/14

सर्वेन्द्रियगुणाभासं | {रथ में} **सब इन्द्रिय-गुणों का आभास होता है।** {फिर भी मन-बुद्धि से}

सर्वेन्द्रियविवर्जितं असक्तं च एव | **सब इन्द्रियविहीन** {सदाकाल निराकारी स्टेज वाला}, {किसी में भी} **अनासक्त होते भी**

सर्वभृत् च निर्गुणं गुणभोक्तृ | **सबका पोषणकर्ता और** {वह} **निर्गुण है** {तो भी मुकर्रर रथ से} **गुणों का भोक्ता है,**

बहिः अन्तश्च भूतानां अचरं चरं एव च। सूक्ष्मत्वात् तत् अविज्ञेयं दूरस्थं च अन्तिके च तत्।। 13/15

तत् भूतानां बहिः च अन्तः | **वह** {योगऊर्जा से ही} **प्राणियों के बाहर और अंदर है और** {मन-बुद्धि से सदा}

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं च | **इस प्रकार** {अर्जुन का शरीर रूपी} **क्षेत्र तथा** {साक्षात् ईश्वरीय} **ज्ञान और**

ज्ञेयं समासतः उक्तं मद्भक्तः | **जानने योग्य** {शिवबाबा} **को संक्षेप में कहा है। मेरा** {श्रद्धावान} **भक्त**

एतत् विज्ञाय मद्भावाय उपपद्यते | **इस** {क्षेत्र, क्षेत्री-क्षेत्रज्ञ} **को जानकर मेरे** {ईश्वरीय/एश्वर्यवान राजाई} **भाव को पाता है।**

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धि अनादी उभौ अपि। विकारान् च गुणान् चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।। 13/19

प्रकृतिं च पुरुषं | {अर्जुन की देहभाव वाली} **प्रकृति को और आत्मा** {देही} **को-**

उभौ अपि अनादी एव | **दोनों** {परम आत्मा + देहरूप लिंग} **को भी अनादि-**{अक्षय ऑलराउंडर} **ही**

विद्धि च विकारान् च गुणान् एव | **जानो और विकारों** {अनादिनिर्मित सत-रजादि} **3 गुणों को भी**

प्रकृतिसम्भवान् विद्धि | {दैहिक 23 तत्वों वाली **लिड्गरूपा**} **प्रकृति से उत्पन्न हुआ जानो।**

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः उच्यते। पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते।। 13/20

प्रकृतिः कार्यकरणकर्तृत्वे | **प्रकृति को देहरूप कार्य&**{ज्ञान&कर्म}**-इन्द्रियों के साधनरूप रचना में**

हेतुः उच्यते पुरुषः सुखदुःखानां | **कारण रूप कहा जाता है। आत्मा को** {युगानुरूप} **सुख-दुःखों के**

भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते | **भोक्तापने में** {संगमी शूटिंग-प्रमाण अविनाशी रिकॉर्ड रूप} **कारण कहा जाता है;**

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्। कारणं गुणसङ्गः अस्य सदसद्योनिजन्मसु।। 13/21

हि पुरुषः प्रकृतिस्थः प्रकृतिजान् | **क्योंकि आत्मा** {जड़ देहरूप अपरा} **प्रकृति में स्थित प्रकृति से पैदा**

गुणान् भुंक्ते गुणसंगः | **3 गुणों को भोगता है।** {सृष्टि के सत्वादि} **गुणों में आसक्ति/लगाव**

यथा नदीनां बहवः अम्बुवेगाः समुद्रं एव | **जैसे** {जड़त्वमयी} **नदियों की अनेक जलधाराएँ समुद्र की ओर ही**

अभिमुखाः द्रवन्ति तथामी नरलोकवीराः | **मुँह उठाए दौड़ती हैं, वैसे ही ये मनुष्यलोक के** {ज्ञानयुद्धकर्ता} **वीरपुरुष**

तव अभिविज्वलन्ति वक्त्राणि विशन्ति | **आप** {ज्ञानसूर्य के} **चारों ओर से धधकते हुए मुखों में** {तेजी से} **प्रवेश कर रहे हैं।**

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः। तथैव नाशाय विशन्ति लोकाः तव अपि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।। 11/29

यथा पतंगाः प्रदीप्तं ज्वलनं नाशाय समृद्धवेगाः | **जैसे पतंगे दहकती हुई अग्नि में मरने के लिए झपटकर**

विशन्ति तथा एव लोकाः अपि नाशाय | **जा गिरते हैं, वैसे ही लोग भी** {अपने दैहिक} **विनाश के लिए**

समृद्धवेगाः तव वक्त्राणि विशन्ति | **झपटते हुए आपके** {आग उगलते} **मुखों में चले जाते हैं।**

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्तात् लोकान् समग्रान् वदनैः ज्वलद्भिः। तेजोभिः आपूर्य जगत् समग्रं भासः तव उग्राः प्रतपन्ति विष्णो।। 11/30

विष्णो ज्वलद्भिः वदनैः समग्रान् लोकान् | **हे प्रवेशनीय** {शिवबाबा! क्रोध से} **जलते हुए मुखों से आप सब लोगों को**

समंतात् ग्रसमानः लेलिह्यसे तवोग्राः | **चारों ओर से निगलते हुए चाट रहे हैं। आपकी** {तीखी वाणी की} **भयंकर**

भासः समग्रं जगत्तेजोभिः आपूर्य प्रतपन्ति | **ज्वालाएँ सारे संसार को तेज से भरती हुई तीव्रता से जला रही हैं।**

आख्याहि मे को भवान् उग्ररूपः नमः अस्तु ते देववर प्रसीद। विज्ञातुं इच्छामि भवन्तं आद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिं।। 11/31

देववर मे आख्याहि उग्ररूपः भवान् | **हे देवश्रेष्ठ महादेव! मुझे बताइए** {कि ऐसे महाकाल की तरह} **भयंकर रूप वाले आप**

कः ते नमः अस्तु प्रसीद भवन्तं | **कौन हैं? आपको प्रणाम है। प्रसन्न हो जाइए। आपके** {सनातनी बालकरूप}

मरुतः च ऊष्मपाः च | **49 मरुद्गण और योगूर्जा का ताप पीने वाले** {सनातन कालीन पितृगण} **हैं और**

गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः | **गन्धर्व, यक्षगण तथा** {कलियुगी} **राक्षसों वा रिद्धि-सिद्धि** {ज्ञाता तांत्रिक} **समुदाय,**

सर्वे त्वां एव विस्मिताः वीक्षन्ते | **सब आपके** {रौद्ररूप को} **ही आश्चर्यान्वित हुए** {टकटकी बाँधे} **देख रहे हैं।**

रूपं महत् ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादं। बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथिताः तथा अहं।। 11/23

महाबाहो बहुवक्त्रनेत्रं | हे {सहयोगियों की} **विशाल भुजाओं वाले! अनेक मुखों रूप** {मुखशंख&ज्ञान-}**नेत्र वाले,**

बहुबाहूरुपादं बहूदरं | **अनेक क्षत्रियों की भुजाओं, कामुक जंघाओं & शूद्रों के पैरों वाले, अनेकों वैश्य रूप पेट**

बहुदंष्ट्राकरालं ते महत् | {और} **अनेकों** {नीचे-ऊपर एटमबंबों की} **विकराल दाढ़ों वाले, आपके महान्** {रौद्र}

रूपं दृष्ट्वा लोकाः तथाहं प्रव्यथिताः | **रूप को देखकर** {संसार के} **सब लोग तथा मैं अत्यंत काँप रहा हूँ।**

नभःस्पृशं दीप्तं अनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रं। दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो।। 11/24

हि विष्णो नमःस्पृशं अनेकवर्णं दीप्तं | **क्योंकि हे प्रवेशनीय*** {शिवबाबा!} **नभस्पर्शी, अनेक रंगों में प्रदीप्त,**

व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रं त्वां | **मुख फाड़ते हुए, चमकीली बड़ी-2** {क्रोधान्वित} **आँखों वाले, आपका**

दृष्ट्वा प्रव्यथितान्तरात्मा | {रौद्र रूप} **देखकर अत्यंत भयभीत अन्तरात्मा वाला** {मैं निर्बलहृदय}

धृतिं च शमं न विन्दामि | **धीरज और शांति नहीं पाता हूँ।** {* Uट्यूब में प्रकाशित आदीश्वर चरित्र(AIVV)}

*{विष्णु की व्यत्यप्रत्ति हैः- विश् धातो प्रवेशनात्}(गीता 11-54) {'आदीश्वरचरित्र' में देखें पृ. 119 से 152}

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वा एव कालानलसन्निभानि। दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास।। 11/25

आद्यं विज्ञातुं इच्छामि हि | आदिकालीन {रूप को} जानना चाहता हूँ; क्योंकि {हे शिवज्योति!}
तव प्रवृत्तिं न प्रजानामि | आपके {आश्चर्यजनक विस्मयभरे} क्रियाकलाप को {मैं} नहीं जानता हूँ।
श्रीभगवानुवाचः-कालः अस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो लोकान् समाहर्तुं इह प्रवृत्तः।
ऋते अपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे ये अवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।। 11/32

लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः कालः अस्मि | संसार का महाविनाशकर्ता विकराल काल मैं हूँ {और सब धर्मों में से}
इह लोकान् समाहर्तुं प्रवृत्तः | यहाँ {संगमी शूटिंग में विष्णुलोकीय श्रेष्ठ} लोगों के संगठनार्थ लगा हूँ।
प्रत्यनीकेषु ये योधाः अवस्थिताः सर्वे | विरोधी {धर्मों की} सेनाओं में जो योद्धा {बड़े ज्ञानी बने} खड़े हैं, {वे} सब
त्वां ऋते अपि न भविष्यन्ति | तेरे {धर्मयुद्ध} न करने पर भी नहीं बचेंगे; {अनिश्चय की मौत में मरेंगे।}
तस्मात् त्वं उत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धं। मया एव एते निहताः पूर्वं एव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।। 11/33

तस्मात् त्वं उत्तिष्ठ यशः लभस्व | इसलिए तू उठ खड़ा हो। कीर्ति प्राप्त कर। {अपने अंदर के कामादिक}
शत्रून् जित्वा समृद्धं राज्यं भुंक्ष्व | शत्रुओं को जीतकर वैभव संपन्न {जगतजीत स्वर्गीय} राज्य का भोगकर।
एते पूर्वं एव मया | ये {काम-क्रोधादि के साकार रूप दुर्योधनादि} पूर्व कल्प में भी मेरे द्वारा
निहताः सव्यसाचिन् | मारे गए थे; {अतः अब भी} हे वामांगी {शिखंडी रूपी जगदंबा द्वारा} शरसंधानक!
एव निमित्तमात्रं भव | केवल निमित्तमात्र बन जा। {कल्प*-2 की हूबहू पुनरावृत्ति जैसे हुई पड़ी है।}
*{कल्प-2 लगि प्रभु-अवतारा। (तुलसी. रामायण) कहते भी हैं-'हिस्ट्री रिपीट्स इट सैल्फ'।}

देवेश जगन्निवास दंष्ट्राकरालानि | हे देवों के ईश महादेव! हे जगन्नाथ! {बंबों रूपी} विकराल दाढ़ों वाले
च कालानलसन्निभानि ते | और प्रलयकालीन आग-जैसे {प्रज्वलित} आपके {महाविनाशकारी तीखी वाणी के}
मुखानि दृष्ट्वा एव दिशः न जाने | मुखों को देखकर ही दिशाएँ {भी} भूल गया हूँ; {फिर चिंतन करने से तो}
च शर्म न लभे प्रसीद | और ही चैन नहीं पड़ता। {अतः} प्रसन्न हो जाइए। {सौम्यरूप दिखाइए।}
अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सह एव अवनिपालसङ्घैः। भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रः तथा असौ सह अस्मदीयैः अपि योधमुख्यैः।। 11/26

अस्मदीयैः योधमुख्यैः सह अमी | हमारे मुख्य योद्धाओं सहित, ये {भारतवासी भोली प्रजा के रक्तपायी पूंजीपति}
धृतराष्ट्रस्य पुत्राः च भीष्मः | धृतराष्ट्र के {कौरव-कांग्रेसी} पुत्र और {सर्वव्यापी के विषदाता} संन्यासी भीष्म,
द्रोणः तथा असौ सूतपुत्रः | {कलियुगी प्राचार्य} द्रोण तथा यह {सर्वोत्तम सेवक ज्ञानसूर्य अधिरथ}/सारथी का पुत्र कर्ण
सर्वे अवनिपालसंघैः | {और ये} सब {दुनियाँवी देशी-विदेशी प्रजातंत्र के} पृथ्वीपालों का समूह
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि। केचित् विलग्नाः दशनान्तरेषु सन्दृश्यन्ते चूर्णितैः उत्तमाङ्गैः।। 11/27

ते दंष्ट्राकरालानि भयानकानि | आपके विकराल {एटामिक} दाढ़ों वाले, भयंकर {वाणीवक्ता तीक्ष्ण}
वक्त्राणि त्वरमाणा विशन्ति | मुखों में तीव्रतापूर्वक घुसे{सहमत} होते जा रहे हैं। {भारतीयों में से}
केचित् दशनान्तरेषु | कुछ {सीधे-सादे भक्तजन} दाँतों के बीच में {झूठी मान्यताओं से}
विलग्नाः चूर्णितैः उत्तमांगैः संदृश्यन्ते | फँसे चूर-2 हुए {बुद्धि रूपी} सिरों के साथ अच्छे से देखे जा रहे हैं।
यथा नदीनां बहवः अम्बुवेगाः समुद्रं एव अभिमुखाः द्रवन्ति। तथा तव अमी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राणि अभिविज्वलन्ति।। 11/28

च एव जन्ममृत्युजराव्याधि- | और इसी प्रकार जन्म-मृत्यु और बुढ़ापा, {तन-मनादि की कोई भी} बीमारी
दुःखदोषानुदर्शनं | {आदि अंतिम जन्म के इन अपने या पराए} दुःखों के दोषों को देखना;
असक्तिः अनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु। नित्यं च समचित्तत्वं इष्टानिष्टोपपत्तिषु।। 13/9

पुत्रदारगृहादिषु असक्तिः अनभिष्वंगः च | पुत्र, स्त्री, घर आदि {दैहिक संबंधों} में अनासक्ति, मोहरहित होना और
इष्टानिष्ट उपपत्तिषु नित्यं समचित्तत्वं | चाही-अनचाही {रोज़मर्रे की अनेक} घटनाओं में सदा एकरस रहना,
मयि च अनन्ययोगेन भक्तिः अव्यभिचारिणी। विविक्तदेशसेवित्वं अरतिः जनसंसदि।। 13/10

अनन्ययोगेन मयि अव्यभिचारिणी | अनन्य सम्बंध से {एकमात्र} मेरे में {सदाकालीन} अव्यभिचारी
भक्तिः विविक्तदेशसेवित्वं | भक्ति-भावना, {मन-बुद्धि से} एकांतदेश {परंब्रह्म लोक} में रहना
च जनसंसदि अरतिः | और {कोई भी प्रकार के} मनुष्यों की भीड़भाड़ में {अंदरूनी} अरूचि;
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनं। एतत् ज्ञानं इति प्रोक्तं अज्ञानं यत् अतः अन्यथा।। 13/11

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं | {आत्मरिकॉर्ड में भरे जन्म-जन्मान्तर के} अध्यात्मचिंतन में सदैव लगे रहना,
तत्त्वज्ञानार्थदर्शनं | {देहों में त्रिगुणात्मक} पंचतत्वों को {ईश्वरीय} ज्ञानार्थसहित पहचानना-
एतत् ज्ञानं* इति प्रोक्तं | इतना 'ज्ञान है'← ऐसा {प्राचीनतम सत्वप्रधान विद्वानों द्वारा} कहा गया है।
अतः अन्यथा यत् अज्ञानं | इसके अलावा जो {भी मनुष्य-गुरुओं या धर्मपिताओं का ज्ञान है}, सारा अज्ञान है।
* {यहाँ श्लोक 1 से 11 तक निराकार शिव ने अर्जुन/आदम के शरीर रूपी रथ/क्षेत्र और उसके आत्मिक गुणों

अचरं चरं एव सूक्ष्मत्वात् तत् | अचल है। {जड़ देह से} चलायमान भी है, अतिसूक्ष्म होने से वह {अज्ञानियों द्वारा}
अविज्ञेयं च तत् दूरस्थं | जाना नहीं जाता और वह {देहधारियों से} दूर {आत्मलोक} में स्थित है और
च तत् अन्तिके | फिर भी वह {परम्ब्रह्म लोक में रहते भी ज्ञानियों के नं. वार} निकट है।
{पंचमुखी ब्रह्मा का ऊर्ध्वमुखी मुख ही परम्ब्रह्म है जो पु. संगम में भी सदा उपराम है; क्योंकि महादेव-पार्ट भी शिव का है।}
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तं इव च स्थितं। भूतभर्तृ च तत् ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।। 13/16

तत् अविभक्तं च भूतेषु | वह {परब्रह्म योगबल से} अविभाज्य है, फिर भी {यहाँ भी सभी विभिन्न प्रकार के} प्राणियों में
विभक्तं इव स्थितं च भूतभर्तृ | विभक्त हुआ सा रहता है और {चतुर्युगी में भी} प्राणियों का भरण-पोषणकर्ता विष्णु,
ग्रसिष्णु च प्रभविष्णु ज्ञेयं | {पु. संगमयुग में} संहारकर्ता महारुद्र है और उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मा ज्ञातव्य है।
{इसीलिए त्रिमूर्ति शिव+बाबा आदम का व्यक्तरूप काशीकैलाशीवासी सारी चतुर्युगीयरूप संसार में सदा है ही है।}
ज्योतिषां अपि तत् ज्योतिः तमसः परं उच्यते। ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितं।। 13/17

तत् ज्योतिषां अपि ज्योतिः | वह ज्योतिमान् {धरती के} चेतन नक्षत्रों की भी ज्योति है, {इसीलिए ज्ञानसूर्य है,}
तमसः परं उच्यते ज्ञानं | अंधकार से परे कहा जाता है। {वह अजन्मा होने से अखूट} ज्ञान {का भंडार} है,
ज्ञेयं ज्ञानगम्यं | जानने योग्य है, ज्ञान से पाने योग्य है {और सदा की तरह पु.संगम में भी}
सर्वस्य हृदि विष्ठितं | सबके हृदय में {संगमी शूटिंग प्रमाण योगबल की ऊर्जा से} विराजमान है।
इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं च उक्तं समासतः। मद्भक्त एतत् विज्ञाय मद्भावाय उपपद्यते।। 13/18

* {इसी अर्जुन/भारत के शरीर रूपी रथ में मैं शिवज्योति मुकर्रर रूप से कल्प-2 दिव्य प्रवेश करता हूँ।}

क्षेत्रज्ञं च अपि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत। क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ज्ञानं यत् तत् ज्ञानं मतं मम।। 13/2

भारत सर्वक्षेत्रेषु क्षेत्रज्ञं अपि | **हे भरतवंशी!** {ऐसे तो यथार्थ में} **सारे** {प्राणियों के} **शरीरों में क्षेत्रों का ज्ञानी भी**

मां विद्धि च क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः | {इसी पु. संगम में} **मुझ** {शिवबाबा} **को जान और इस देह व देह के ज्ञाता** {शिवज्योति} **का**

यत् ज्ञानं तत् ज्ञानं मम मतं | **जो ज्ञान है, वही** {इस दुनियाँ में सच्चा} **ज्ञान है- ऐसा मेरा मत है।**

{साकार आदम=अर्जुन के मुकर्रर शरीर में निराकार ज्योतिबिंदु शिव की पक्की पहचान ही सच्चा ईश्वरीय ज्ञान है, बाकी ऋषि-मुनि-धर्मपिताओं आदि का सुनाया हुआ सारा अज्ञान है; क्योंकि अखूट सच्चा ज्ञानप्रकाश 1 सूर्य से ही आता है।}

तत् क्षेत्रं यत् च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत्। स च यो यत्प्रभावश्च तत् समासेन मे शृणु।। 13/3

तत् क्षेत्रं यत् यादृक् च | **वह** {अर्जुन की} **क्षेत्र रूपी देह जो जैसी** {महानतम पतित-व्यभिचारी} **है और**

यद्विकारि च | **जैसा विकारी** {कामी} **है** {'मैं पतितन को राजा'=तुलसीदास}, और

यत् यतः | **जो** {बालोंरहित बच्चों-जैसी उसकी देह} **जहाँ** {अहं+द+गंद गाँव (कायमगंद तालुका)} **से है,**

च स यः च | **और वह** {देहांकारी ब्रह्मापुत्र} **जो** {अहं+दा+बाद का ही} **है, और** {बदला लेने वाले नाग-}

च यत्प्रभावः | {स्वभावी धृष्टद्युम्न जैसा ढीठ, निर्लज्ज} **और जो** {हिसाब-किताब चुक्तू} **प्रभाव वाला है-**

तत् समासेन मे शृणु | **वह सब संक्षेप में मुझ** {बहुरूपिया शिवबाबा से सम्मुख} **सुन।**

{मुरली के प्रूफ: **गांवड़े का छोरा-**''जो (जब) गोरा है तो ताज होना चाहिए। साँवरा है तो ताज कहाँ से आवेगा?

'द्वात्रिंशदस्योज्वलकीर्तिराशेः समाव्यतीयुः किल शङ्करस्य' (महाभा/3-22,8-6) (मंगलकारके त्रिकाण्डशेष)

महाभूतानि अहङ्कारो बुद्धिः अव्यक्तं एव च। इन्द्रियाणि दश एकं च पञ्च च इन्द्रियगोचराः।। 13/5

महाभूतानि अहंकारः बुद्धिः च एव | {पृथ्वी-जलादि 5 जड़} **महाभूत, अहंकार, बुद्धि, ऐसे ही** {अति प्रबल}

एकं अव्यक्तं दश इन्द्रियाणि | **एक अव्यक्त मन** {सहित नेत्रादि 5 ज्ञान+ हाथ-पाँवादि 5 कर्म}**-इन्द्रियाँ**

च पंच इन्द्रियगोचराः | **और पाँच** {ही} **ज्ञानेन्द्रियों के** {शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध} **विषय-भोग,**

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातः चेतना धृतिः। एतत् क्षेत्रं समासेन सविकारं उदाहृतं।। 13/6

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं चेतना धृतिः | **इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, चेतनता व धारणाशक्ति** {और उपरिवर्णित

संघातः एतत् समासेन | इन सबका} **समुदाय रूप** {अर्जुन की पु. संगमी देह}**, यह संक्षेप में**

सविकारं क्षेत्रं उदाहृतं | {काम-क्रोध-लोभादि} **विकार सहित क्षेत्र**/शरीर **कहा गया है।**

अमानित्वं अदम्भित्वं अहिंसा क्षान्तिः आर्जवं। आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यं आत्मविनिग्रहः।। 13/7

अमानित्वं अदम्भित्वं अहिंसा | **निर्मानभाव, पाखंडहीनता,** {तुच्छ-श्रेष्ठ कोई भी} **प्राणीमात्र को दुःख न देना,**

क्षांतिः आर्जवं आचार्योपासनं | **सहनशीलता, सरलता,** {आत्म-स्मृतिपूर्वक} **शिवाचार्य की उप+आसना,**

शौचं स्थैर्यं आत्मविनिग्रहः | **शुद्धता,** {मन की} **स्थिरता** {और मन-बुद्धिरूप} **चित्त का विशेष संयम;**

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं अनहङ्कार एव च। जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनं।। 13/8

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं अनहंकारः | **इन्द्रियों के** {शब्द-स्पर्श-रूप-रसादि} **विषयों में वैराग्य, निरहंकारी विदेहीभाव**

वायुः यमः अग्निः वरुणः शशांकः | **वायुदेव, यमदेव, अग्निदेव, वरुणदेव, चंद्रमा** {आदि सभी दिग्पालों के भी}

प्रजापतिः च | **प्रजापिता** {जो कलियुगांत में 7 अरब का प्रजापति भी होगा} **और**

प्रपितामहः त्वं ते सहस्रकृत्वः | **उनके भी पितामह/डाडे** {शिवबाबा} **आप हो;** {अतः} **आपको सहस्रों बार**

नमः-2 अस्तु च पुनः अपि ते नमः-2 | **नमस्कार! नमस्कार हो!! और फिर भी आपको बारम्बार नमन है।**

नमः पुरस्तात् अथ पृष्ठतः तेः नमः अस्तु ते सर्वत एव सर्व। अनन्तवीर्य अमितविक्रमः त्वं सर्वं समाप्नोषि ततः असि सर्वः।। 11/40

ते पुरस्तात् अथ पृष्ठतः नमः | **आपको सन्मुख और पीछे से नमस्कार है।** {ये मात्र दिखावटी सम्मान नहीं।}

सर्व ते सर्वत एव नमः अस्तु | **हे** {सृष्टि-बीजरूप} **सब-कुछ! आपको सब ओर से ही नमस्कार हो।**

अनन्तवीर्य त्वं अमितविक्रमः | **हे अमोघवीर्य! आप अनंत पराक्रमी हो।** {क्योंकि सर्वशक्तिमान हो। नं. वार}

सर्वं समाप्नोषि ततः सर्वः असि | **सबमें** {योग-ऊर्जा से} **समाए हुए हो। इसलिए** {आप ही} **सब-कुछ हो।**

सखा इति मत्वा प्रसभं यत् उक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखे इति। अजानता महिमानं तव इदं मया प्रमादात् प्रणयेन वा अपि।। 11/41

हे सखे तव इदं महिमानं अजानता सखा | **हे सखे! आपकी इस महिमा को अज्ञानता से** {आपको} **सखा**

इति मत्वा प्रमादात् वा प्रणयेन अपि मया | **मानकर प्रमाद से अथवा प्रेम के कारण भी मेरे द्वारा** {भूल से}

हे कृष्ण हे यादव इति यत् प्रसभं उक्तं | **हे आकषणमूर्त यदुवंशी** {बं महादेव}**! ऐसे जो** {कुछ} **अनादर से कहा हो,**

यत् च अवहासार्थं असत्कृतः असि विहारशय्यासनभोजनेषु। एकः अथवा अपि अच्युत तत्समक्षं तत् क्षामये त्वां अहं अप्रमेयं।। 11/42

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथा अन्यान् अपि योधवीरान्। मया हतान् त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।। 11/34

द्रोणं च भीष्मं | {शास्त्रीय बुद्धि रूपी कलश वाला} **द्रोण और** {दूरबाज़-खुशबाज़} **संन्यासी भीष्म**

च जयद्रथं | **तथा** {अरबियन यवनों के विशालकाय रथ रूप देह-अहंकार से विजयी} **जयद्रथ**

च कर्णं तथा मया | **और** {सारथी अधिरथ रूप ज्ञानसूर्य-पुत्र} **कर्ण। वैसे ही मेरे** {पुत्र महादेव} **द्वारा**

हतान् अन्यान् अपि | {कल्पपूर्व-शूटिंग में} **मारे गए दूसरे भी** {2500 वर्ष पूर्व द्वैतवादी द्वापुर से आए विदेशी-}

योधवीरान् त्वं जहि मा | {विधर्मी} **वीर योद्धाओं** {की हिंसा} **को तू त्याग दे।** {पाप के पक्षपातियों से} **ना**

व्यथिष्ठा युध्यस्व रणे | **डरो।** {धर्म-}**युद्ध करो;** {क्योंकि तुम्हीं इस महाभारी महाभारत के} **धर्मयुद्ध में**

सपत्नान् जेतासि | {कामी-क्रोधी} **शत्रुओं को** {ज्ञान-योगबल की शक्ति से} **जीतने वाले हो।**

संजय उवाचः-एतत् श्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिः वेपमानः किरीटी। नमस्कृत्वा भूय एव आह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य।। 11/35

केशवस्य एतत् वचनं श्रुत्वा | **ब्रह्मा के स्वामी** {त्रिमूर्ति शिव} **की** {अहिंसा परमधर्म की} **इस बात को सुनकर**

किरीटी वेपमानः कृतांजलिः | {जिम्मेवारी के} **ताजधारी अर्जुन ने काँपते हुए** {बुद्धि रूपी} **हाथ जोड़कर**

नमस्कृत्वा भूय एव भीतभीतः | **झुककर** {और} **फिर भी** {सन्नद्ध खूनीनाहक खेल से} **भयभीत हुआ**

प्रणम्य सगद्गदं कृष्णं आह | **पूरा ही झुककर रूँधी वाणी से आकर्षणमूर्त** {शिवबाबा} **से कहा।**

अर्जुन उवाचः-स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत् प्रहृष्यति अनुरज्यते च। रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः।। 11/36

च विहारशय्यासनभोजनेषु एकः अथवा | और खेल में, बिस्तर में लेटे या बैठे हुए, भोजन के समय, अकेले में अथवा
तत्समक्षं अवहासार्थमपि यदसत्कृतः असि | दूसरों के सामने, हँसी-मजाक में भी जो असम्मान किया हो,
तदच्युत अप्रमेयं त्वां अहं क्षामये | उसके लिए हे अमोघवीर्य! हे उपमाहीन! आपसे मैं क्षमा माँगता हूँ।
पिता असि लोकस्य चराचरस्य त्वं अस्य पूज्यश्च गुरुः गरीयान् न त्वत्समः अस्ति अभ्यधिकः कुतः अन्यः लोकत्रये अपि अप्रतिमप्रभाव॥ 11/43

त्वं अस्य चराचरस्य लोकस्य पिता असि | आप इस {साकार} जड़-चेतन जगत् के {बीजरूप} पिता हो
च पूज्यः गरीयान् गुरुः | और {जगत् के} पूजनीय सर्वोत्तम {साकार में एकमात्र सद्}गुरू हो।
अप्रतिमप्रभाव लोकत्रये त्वत्समः अपि | हे अनुपम प्रभाव वाले! तीनों लोकों में आप समान भी {ऐसा}
न अस्ति अन्यः अभ्यधिकः कुतः | {कोई} नहीं है, तो दूसरा {आप से} बढ़कर कहाँ से {होगा}?
तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वां अहं ईशं ईड्यं। पिता इव पुत्रस्य सखा इव सख्युः प्रियः प्रियायाः अर्हसि देव सोढुं॥ 11/44

तस्मात् कायं प्रणिधाय प्रणम्य ईड्यं | इसलिए शरीर को भली-भाँति अर्पण कर खूब नम्र हो गायन योग्य
त्वां ईशं अहं प्रसादये देव इव | आप ईश्वर को मैं प्रसन्न करता हूँ। हे देव! जैसे {इस संसार में}
पिता पुत्रस्य सखा सख्युः प्रियः प्रियायाः | पिता पुत्र के, मित्र मित्र के {और} पति पत्नी के {या कोई भी प्रिय के}
इव सोढुं अर्हसि | {अपराध सहन करता है}, वैसे ही {मेरे अपराध} सहन करने में {आप} समर्थ हो।
अदृष्टपूर्वं हृषितः अस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे। तत् एव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास॥ 11/45

हृषीकेश स्थाने तव प्रकीर्त्या | हे {मेरी अश्वरूप} इन्द्रियों के स्वामी! ठीक है कि आपके उत्तम कीर्तिगान से
जगत् प्रहृष्यति च अनुरज्यते | जगत-समुदाय प्रसन्न होता है और {कीर्ति में} अनुरागी है। {यही कारण है कि}
भीतानि रक्षांसि दिशः द्रवन्ति | डरे हुए {क्रोधादि रूप} राक्षस दिशाओं में भाग रहे हैं, {सफलताप्राप्त}
सिद्धसंघाः सर्वे नमस्यन्ति | सिद्धों के समूह सब {ही आपको नम्रचित्त से} प्रणाम कर रहे हैं।
कस्मात् च ते न नमेरन् महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणः अपि आदिकर्त्रे। अनन्त देवेश जगन्निवास त्वं अक्षरं सत् असत् तत्परं यत्॥ 11/37

महात्मन् अनन्त देवेश जगन्निवास | हे महात्मा! अन्तहीन {गुणवान} देवाधिदेव! हे जगदाधार! {त्रिमूर्ति शिव}
ब्रह्मणः अपि आदिकर्त्रे च गरीयसे ते | ब्रह्मा के भी आदि रचनाकार और सबके जगद्गुरू को वे {विदेशी-विधर्मी}
कस्मात् न नमेरन् सत् असत् | {शक्तिशाली हिंसक कुकर्मी} कैसे {बुद्धि से} नमन नहीं करेंगे? सत्य, असत्य
तत्परं यत् अक्षरं त्वं | {देव और दानव} उन दोनों से परे जो अमोघवीर्य है, {वह} आप हो।
त्वं आदिदेवः पुरुषः पुराणः त्वं अस्य विश्वस्य परं निधानं। वेत्ता असि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वं अनन्तरूप॥ 11/38

त्वं आदिदेवः परं धाम पुराणः पुरुषः | आप आदिदेव हो। परे-ते-परे धाम वाले हो। पुरातन पुरुष हो।
त्वं अस्य विश्वस्य परं निधानं च वेत्ता | आप इस विश्व के परम आश्रय हो और {सब-कुछ} जानने वाले हो
च वेद्यं असि अनन्तरूप | तथा {अखूट ज्ञान-भंडारी रूप में} जानने योग्य हो। हे अनंतगुण रूप!
त्वया विश्वं ततं | {बीज से वृक्ष की तरह} आप {निराकार-निर्विकारी बने बीजरूप जगत्पिता} से विश्व फैला है।
वायुः यमः अग्निः वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिः त्वं प्रपितामहश्च। नमः नमः ते अस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयः अपि नमः नमः ते॥ 11/39

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः। शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥ 12/18
तुल्यनिन्दास्तुतिः मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्। अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥ 12/19

शत्रौ च मित्रे तथा मानापमानयोः समः | शत्रु में और मित्र में, उसी तरह मान-अपमान में समान,
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः च संगविवर्जितः | सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख में समान और आसक्ति से सर्वथा रहित,
तुल्यनिन्दास्तुतिः मौनी येन | निंदा-स्तुति में समान, अंतर्मुखी, जो {अनायास सुखपूर्वक}
केनचित् संतुष्टः अनिकेतः | कुछ भी {मिले या न मिले} उसमें संतुष्ट, घरबार से रहित {पूरा बेघर/बैगर},
स्थिरमतिः भक्तिमान् नरः मे प्रियः | स्थिरबुद्धि, {ऐसा अटल} भक्तिभाव वाला मनुष्य मुझे प्रिय है;
ये तु धर्म्यामृतं इदं यथा उक्तं पर्युपासते। श्रद्दधाना मत्परमा भक्ताः ते अतीव मे प्रियाः॥ 12/20

तु ये मत्परमा श्रद्दधानाः यथा उक्तं | परंतु जो {एकमात्र} मेरे आश्रित हुए श्रद्धावान्, ऊपर कहे गए
इदं धर्म्यामृतं पर्युपासते | इस धारणामृत का {'तुम्हहिं छाँडि गति दूसरि नाहीं' -ऐसे} अच्छे से पालन करते हैं,
ते भक्ताः मे अतीव प्रियाः | वे भक्त {पिता के लिए अपने औरस-इकलौते पुत्रवत्} मुझे अति प्यारे हैं।
श्रीभगवानुवाचः-इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रं इति अभिधीयते। एतत् यः वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥ 13/1

कौन्तेय इदं शरीरं क्षेत्रं इति | हे अर्जुन! यह {तेरा मुकर्रर*} शरीर {रूपी रथ ही धर्मयुद्ध का महाभारत} 'क्षेत्र' इस नाम से
अभिधीयते एतत् यः वेत्ति | {युद्ध & कर्मभूमि} कहा जाता है। इस {कलि+कृतयुग के संगम कालरूप को} जो जानता है,
तं तद्विदः क्षेत्रज्ञ इति प्राहुः | उसको वह {द्वापर के ऋषि-मुनि} विद्वान 'क्षेत्र का ज्ञाता' ऐसे कहते हैं।

..... गाँव का छोरा तो गरीब होगा ना।'' (मु.ता.8.2.70 पृ.2 मध्य) **गंदे गाँव-**''इतना ऊँच-ते-ऊँच बाप कैसे छी -2 गाँव {अहं+द+गंद} में आते हैं।'' (मु.ता.6.7.84 पृ.2 मध्य) **फर्रुखाबादी-**''बाप को मालिक कहा जाता है। फर्रुखाबाद {कायम+गंद} तरफ मालिक को मानते हैं। (क्योंकि) घर का मालिक तो बाप ही होता है। बच्चों को बच्चे ही कहेंगे। जब वह भी बड़े (समझदार) होते हैं, (अलौकिक) बच्चे पैदा करते हैं तब फिर मालिक बनते हैं। यह सभी राज़ समझने की हैं।'' (मु.ता.11.4.68 पृ.3 अंत) **अहंदाबादी सर्व सेण्टर्स का बीज-**''अहमदाबाद को सभी से ज्यादा सर्विस करनी है; क्योंकि अहमदाबाद सभी (108 चैतन्य) सेंटर्स का बीजरूप है।'' (अ.वा.24.1.70 पृ.190 मध्य) **शरीर की 20-25 की आयु-**''आगे (ॐ मंडली में 3-4 नं. वाले) जो मरे थे, फिर भी बड़े हो कोई 20/25 के ही हुए होंगे। ज्ञान भी ले सकते हैं।'' (मु.ता.16.2.67 पृ.1 अंत)} नीचे दिए श्लोक 13-4 के फुटनोट में महाभारत के 2 श्लोक भी 'प्रत्यक्षता वर्ष 76' में आयु के प्रूफ के लिए दिए हैं।

ऋषिभिः बहुधा गीतं छन्दोभिः विविधैः पृथक्। ब्रह्मसूत्रपदैश्च एव हेतुमद्भिः विनिश्चितैः॥ 13/4

ऋषिभिः बहुधा | ऋषियों द्वारा अनेक प्रकार से {'एको सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (ऋग्वेद) में भी बोला है।}
विविधैः | नाना प्रकार की {स्तुतियों, आरतियों सहस्रनामों आदि वा सभी वेदों-ग्रंथों के}
छन्दोभिः पृथक् च | वेदमंत्रों से पृथक्-2 रीति से & {आरण्यक-ब्राह्मण-स्मृतियों-सूत्रग्रंथों आदि के या}
हेतुमद्भिः विनिश्चितैः ब्रह्मसूत्रपदैः | {महाभारतादि पुराणों के} प्रमाण सहित सुनिश्चित ब्रह्मसूत्रपदों द्वारा
एव गीतं | {वा देशी-विदेशी भविष्यवेत्ताओं द्वारा} भी {शिवबाबा का ही} गायन है-

*"द्वात्रिंशदवर्षयसि भौतिकशरीरं परित्यज्य परब्रह्मणि लीनमासीत्' (अमरकोश में कल्पद्रुम, शङ्कर शब्द) {प्रत्यक्षता वर्ष 76 से सम्बद्ध}

तेषां अहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्। भवामि नचिरात् पार्थ मयि आवेशितचेतसां।। 12/7

तेषां मयि आवेशितचेतसां पार्थ | **उन मेरे में ही** {'मामेकं',} **मन-बुद्धि लगाने वालों का, हे पृथ्वीराज!**

अहं नचिरात्* मृत्युसंसार- | **मैं *अतिशीघ्र** {ही जन्म-जरा} **मृत्यु-**{दुख वाले} **संसार** {रूप विषय}

सागरात् समुद्धर्ता भवामि | **सागर से** {आधाकल्प लेशमात्र दुःखरहित कृतत्रेता में} **संपूर्ण उद्धार करने वाला हूँ।**

*{क्षिप्रं भवति धर्मात्मा} (गी.9-31) {क्षिप्रं...सिद्धिर्भवति} (गी.4-12)

मयि एव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय। निवसिष्यसि मयि एव अत ऊर्ध्वं न संशयः।। 12/8

मयि एव मन आधत्स्व मयि | **मुझ** {व्यक्त तन में आए अव्यक्त शिवज्योतिबिंदु} **में ही मन लगा। मेरे में**

बुद्धिं निवेशय अत ऊर्ध्वं मयि | **बुद्धि को स्थिर कर। इस प्रकार ऊर्ध्वमुखी** {परमब्रहमरूप} **मुझमें**

एव निवसिष्यसि न संशयः | **ही** {हृदय से जन्म-जन्मान्तर भी} **निवास करेगा,** {इसमें कोई} **संदेह नहीं है।**

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरं। अभ्यासयोगेन ततो मां इच्छ आप्तुं धनञ्जय।। 12/9

धनंजय अथ मयि चित्तं स्थिरं | **हे ज्ञानधनजेता! यदि मेरे** {अव्यक्त रूप} **में चित्त को** {निरंतर} **स्थिरता पूर्वक**

समाधातुं शक्नोषि न ततः | **लगाने में समर्थ नहीं है, तो** {सन्नद्ध विनाश के वैरागसहित बारम्बार स्मृति के}

अभ्यासयोगेन मां आप्तुं इच्छ | **योगाभ्यास द्वारा** {मुकर्रर रथ में} **मुझ** {अव्यक्त शिवज्योति} **को पाने की सहज-2 इच्छा कर।**

अभ्यासे अपि असमर्थः असि मत्कर्मपरमो भव। मदर्थं अपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिं अवाप्स्यसि।। 12/10

अभ्यासे अपि असमर्थः असि | **अभ्यास में भी समर्थ न हो** {तो रुद्रयज्ञ-अधिपति महारुद्र स्वरूप}

समदुःखसुखः क्षमी सन्तुष्टः | **दुःख-सुख में समान रहता है,** {सबके लिए} **क्षमावान् है,** {थोड़े में भी} **संतोषी,**

सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः | **सदा योगी, चित्त का वशकर्ता,** {मेरे & मेरी मत में} **दृढ़निश्चयी है,**

मयि अर्पितमनोबुद्धिः मद्भक्तः मे प्रियः | **मेरे में मन-बुद्धि से अर्पणमय है-**{ऐसा} **मेरी श्रद्धा-भक्ति वाला मुझे प्रिय है।**

यस्मात् न उद्विजते लोको लोकात् न उद्विजते च यः। हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तः यः स च मे प्रियः।। 12/15

यस्मात् लोकः उद्विजते न च | **जिससे लोग** {कभी भी} **परेशान नहीं होते और** {ऐसे ही}

यः लोकात् उद्विजते न च यः | **जो लोगों से परेशान नहीं होता और जो**

हर्षामर्षभय उद्वेगैः मुक्तः स मे प्रियः | **आनन्द, क्रोध, भय** {और} **चिंतामुक्त है- वह मुझे प्रिय है।**

अनपेक्षः शुचिः दक्षः उदासीनो गतव्यथः। सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। 12/16

यः अनपेक्षः शुचिः दक्षः | **जो** {मेरे सिवा कोई की} **अपेक्षा न करे। पवित्र, कुशल,**

उदासीनः गतव्यथः | **पक्षपातरहित,** {अपने तन-मनादि की} **व्यथाओं से रहित,**

सर्वारम्भपरित्यागी मद्भक्तः मे प्रियः | **सब** {सांसारिक} **कार्यों का भली-भाँति त्यागी मेरा भक्त मुझे प्रिय है।**

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति। शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः।। 12/17

यः न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति | **जो** {प्रिय में} **न प्रसन्न होता है, न** {अप्रिय में} **द्वेषी है, न शोक करता है,**

न कांक्षति यः शुभाशुभपरि | **न** {किसी वस्तु की} **इच्छा करता है** {और} **जो शुभ-अशुभ का भली-भाँति**

त्यागी भक्तिमान् मे प्रियः | **त्यागी है-** {ऐसा मेरे द्वारा 'योगक्षेमं' में अटल} **श्रद्धा-भक्ति वाला मुझे प्रिय है।**

अर्जुन उवाचः-दृष्ट्वा इदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन। इदानीं अस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः।। 11/51

जनार्दन तव इदं सौम्यं मानुषं | **हे मानव-आर्तनाद-श्रोता** {शिवबाबा}**! आपका यह** {चंद्र-जैसा} **शांत मानवीय**

रूपं दृष्ट्वा इदानीं सचेताः | **स्वरूप देखकर अब सचेत हुआ हूँ;** {नहीं तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा था। अब}

संवृत्तः अस्मि प्रकृतिं गतः | **पूरी तरह स्थिर हो गया हूँ। अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ गया हूँ।**

श्रीभगवानुवाचः-सुदुर्दर्शं इदं रूपं दृष्टवान् असि यत् मम। देवा अपि अस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः।। 11/52

मम यद्रूपं दृष्टवानसि इदं सुदुर्दर्शं | **मेरे जिस रूप को** {तूने ज्ञाननेत्र से} **देखा है, इसे देखना बहुत कठिन है।**

देवापि नित्यमस्य रूपस्य दर्शनकांक्षिणः | {भोली-भाली} **देवात्माएँ भी सदैव इस रूप के दर्शनाभिलाषी रहती हैं।**

न अहं वेदैः न तपसा न दानेन न च इज्यया। शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवान् असि मां यथा।। 11/53

एवंविधः मां यथा दृष्टवान् असि | **इस भाँति मुझको जिस रूप में** {तूने त्रिनेत्र से} **देखा है,** {उस रूप में कभी भी}

अहं न वेदैः न तपसा न दानेन | **मुझे न** {नर-निर्मित शास्त्रीय} **वेदों द्वारा, न** {दैहिक} **तप द्वारा, न दान द्वारा**

च न इज्यया द्रष्टुं शक्यः | **और न** {मात्र स्वाहा-2 बोल-2 वाले} **यज्ञ द्वारा** {ही} **देखा जा सकता है;**

• {यज्ञ-तप-दानादि करने से मैं नहीं मिलता हूँ। (मु.ता.8.2.68 पृ.3 मध्यादि)}{शास्त्र लिखने-पढ़ने से भी नहीं।}

भक्त्या तु अनन्यया शक्य अहं एवंविधः अर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।। 11/54

तु परंतप अर्जुन अनन्यया | **किंतु हे** {कामादि-}**शत्रुतापक अर्जुन!** {'मामेकम् की'} **अव्यभिचारी**

भक्त्या अहं एवंविधः ज्ञातुं | **भावना से मैं ऐसी** {एडवांस सच्चीगीता द्वारा} **विधिपूर्वक जानने-पहचानने,**

अदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा हृषितः अस्मि च | **पहले कभी न देखे** {रूप को बुद्धि से} **देखकर हर्षित हुआ हूँ, फिर भी**

भयेन मे मनः प्रव्यथितं देव | {वह रूप देख} **भय से मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हुआ है;** {अतः} **हे दाता!**

तत् एव रूपं मे दर्शय | **वही** {पहले वाला सौम्य, सुखद} **रूप मुझे** {बुद्धिगत् नेत्र से} **दिखाइए।**

देवेश जगन्निवास प्रसीद | **हे देवों के देव** {महादेव}**! जगत के आधार!** {अभी तो} **प्रसन्न हो जाइए।**

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तं इच्छामि त्वां द्रष्टुं अहं तथैव। तेन एव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते।। 11/46

किरीटिनं गदिनं | {विश्व-नवनिर्माण की ज़िम्मेवारी के} **ताजधारी,** {दृढ़ता रूपी} **गदाधारी,**

चक्रहस्तं त्वां तथैव द्रष्टुं | {बुद्धि रूपी} **हाथ में** {84 जन्मों के} **चक्रधारी आपको उसी** {रूप में} **देखने का**

अहं इच्छामि विश्वमूर्ते सहस्रबाहो | **मैं इच्छुक हूँ। हे विराट्-विश्वमूर्ति! हे हज़ार सहयोगी भुजाओं वाले,**

चतुर्भुजेन तेन एव रूपेण भव | **चतुर्भुज रूप से उसी** {साकारी सुमधुर} **विष्णुरूप में** {फिर से} **आ जाइए।**

श्रीभगवानुवाचः-मया प्रसन्नेन तव अर्जुन इदं रूपं परं दर्शितं आत्मयोगात्। तेजोमयं विश्वं अनन्तं आद्यं यत् मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वं।। 11/47

अर्जुन परं तेजोमयं आद्यं अनन्तं | **हे अर्जुन! परं तेजोमय** {पुरु. संगमयुग का} **आदिकालीन अनन्त गुण वाला**

इदं विश्वं रूपं मया आत्मयोगात् | **यह विराट रूप मैंने अपनी** {तेरे जैसी संतान के कल्पपूर्व में संचित} **योगूर्जा से**

प्रसन्नेन तव दर्शितं यत् | **प्रसन्नतापूर्वक तेरे को** {तीसरे बुद्धि-नेत्र से} **दिखाया, जो** {दुनियाँ में}

मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वं | **मेरा** {यह रूप} **तेरे** {वर्तमान अधोरूप} **के सिवा पहले नहीं देखा गया था।**

तत्त्वेन द्रष्टुं च प्रवेष्टुं च शक्य:	{मुकर्रर रथ द्वारा भली-भाँति} तत्त्वपूर्वक देखने और {उसमें} प्रवेश करने में भी समर्थ हूँ।

मत्कर्मकृत् मत्परमो मद्भक्त: सङ्गवर्जित:। निर्वैर: सर्वभूतेषु य: स मां एति पाण्डव।। 11/55

पाण्डव य: मत्कर्मकृत्	हे {पाण्डुनामक} पण्डाशिव के पुत्र अर्जुन! जो मेरे {रुद्र-यज्ञसेवार्थ} कर्म करता है,
मत्परम: संगवर्जित: मद्भक्त:	मुझे {वैयक्तिक रूप से} परमगति मानता है, अन्य संगरहित हुआ मुझे भजता है,
स सर्वभूतेषु निर्वैर: मां एति	वह सब {श्रेष्ठ या निष्कृष्ट} प्राणियों में वैरहीन हुआ मुझको {ही} पाता है।

अर्जुन उवाच:-एवं सततयुक्ता ये भक्ता: त्वां पर्युपासते। ये च अपि अक्षरं अव्यक्तं तेषां के योगवित्तमा:।। 12/1

सततयुक्ता एवं ये भक्ता: त्वां	सदा योगयुक्त हुए ऐसे जो भक्तजन, {साकार सौम्यरूप} आपकी {तन-मनादि}
पर्युपासते च ये अक्षरं अव्यक्तं	सब प्रकार से उपासना करते हैं और जो अविनाशी, अदृष्ट {निराकार शिवज्योति को}
अपि तेषां के योगवित्तमा:	भी {भजते हैं}, उन {दोनों} में कौन योग के मर्म को अधिक जानते हैं?

श्रीभगवानुवाच:-मयि आवेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते। श्रद्धया परया उपेता: ते मे युक्ततमा मता:।। 12/2

ये मयि मन: आवेश्य नित्ययुक्ता:	जो मुझमें मन को {अव्यभिचारी रूप से} स्थिर करके सदा योगयुक्त हुए,
परया श्रद्धया उपेता: मां उपासते	परम श्रद्धा से भरकर मुझ {व्यक्तिगत शिवबाबा} को याद करते हैं,
ते मे युक्ततमा मता:	वे {ब्रह्मावत्स पु. संगम में} मेरे सब योगियों में श्रेष्ठतम माने गए हैं;

ये तु अक्षरं अनिर्देश्यं अव्यक्तं पर्युपासते। सर्वत्रगं अचिन्त्यं च कूटस्थं अचलं ध्रुवं।। 12/3

तु ये अक्षरं अनिर्देश्यं	किंतु जो {योगी अभोक्ता होने से कभी} पतित न होने वाले, {आत्यंतिक सूक्ष्म होने से} अनिर्वचनीय,

सर्वत्रगं अचिन्त्यं	{त्रिकालदर्शी होने से} सब जगह पहुँचने वाले, {सबके द्वारा} चिंतन न करने योग्य
कूटस्थं अचलं ध्रुवं	{परमधाम के सर्वोच्च} पर्वतशिखर में, अचल-अडोल {रूप से सदा स्थिर}
च अव्यक्तं पर्युपासते	और निराकार {सो साकार बने शिवज्योति} को भली-भाँति याद करते हैं,

सन्नियम्य इन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धय:। ते प्राप्नुवन्ति मां एव सर्वभूतहिते रता:।। 12/4

ते इन्द्रियग्रामं सन्नियम्य	वे {योगी} सब इन्द्रियों को पूरी तरह संयम में रखकर, {मन-बुद्धि से}
सर्वत्र समबुद्धय: सर्वभूतहिते	सब {परिस्थितियों} में समदर्शी, सब {तुच्छ या श्रेष्ठ} प्राणियों के कल्याण में
रता: मां एव प्राप्नुवन्ति	लगे हुए, {अव्यभिचारी भाव से जन्म-जन्मान्तर भी} मुझको ही प्राप्त होते हैं।

क्लेश: अधिकतर: तेषां अव्यक्तासक्तचेतसां। अव्यक्ता हि गति: दु:खं देहवद्भि: अवाप्यते।। 12/5

अव्यक्तासक्तचेतसां तेषां	{व्यक्तरूप रहित} निराकार {शिवज्योति} में आसक्त हुए उन {योगियों} को
क्लेश: अधिकतर: हि देहवद्भि:	कठिनाई अधिक होती है; क्योंकि देहभानी {विधर्मी धर्मपिताओं द्वारा}
अव्यक्ता गति: दु:खं अवाप्यते	निराकारी गति {बड़े परिश्रम से, धर्म के धक्के खाकर} दु:खपूर्वक प्राप्त होती है;

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परा:। अनन्येन एव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।। 12/6

तु मत्परा: ये सर्वाणि कर्माणि	किंतु मेरे {व्यक्तरूप के} आश्रित जो {अफलाकांक्षी योगी} सब कर्मों को
मयि संन्यस्य अनन्येन योगेन	मुझ {यज्ञ-पिता} में {तन-मनादि} संपूर्णतया अर्पित कर अव्यभिचारी याद से
ध्यायन्त: मां एव उपासते	ध्यानमग्न हुए मेरा ही {साकाररूप होने से अनवरत सहज} उपासना करते हैं,

न वेदयज्ञाध्ययनै: न दानै: न च क्रियाभि: न तपोभि: उग्रै:। एवंरूप: शक्य: अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर।। 11/48

कुरुप्रवीर एवंरूप: अहं न	हे कुरुकुल के वीरप्रवर! ऐसे {बुद्धिगम्य अद्भुत} रूप वाला मैं न
वेदयज्ञाध्ययनै: न दानै: न क्रियाभि:	वेद, यज्ञ {और} स्वाध्याय से, न दान से, न {कर्मकाण्डीय} क्रियाओं से
च न उग्रै: तपोभि: त्वदन्येन	और न कठोर {दैहिक} तपस्याओं से तेरे अलावा कोई दूसरा {कभी भी}
नृलोके द्रष्टुं शक्य:	मनुष्यलोक में {ज्ञानगम्य बुद्धि से} देखने को समर्थ है। {इसमें अंधश्रद्धा की तो बात ही नहीं।}

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरं ईदृक् मम इदं। व्यपेतभी: प्रीतमना: पुन: त्वं तत् एव मे रूपं इदं प्रपश्य।। 11/49

मम ईदृक् इदं घोरं रूपं दृष्ट्वा ते मा व्यथा	मेरा ऐसा यह {प्रलयंकारी} भयंकर रूप देखकर तू मत घबरा
च मा विमूढभाव: व्यपेतभी:	और न किंकर्तव्यविमूढ़ हो। {देहभान निर्मित} भय त्याग कर
प्रीतमना: त्वं पुन: मे तत् एव इदं रूपं प्रपश्य	प्रसन्न मन वाला तू फिर से मेरे उस ही इस {सौम्य} रूप को देख।

संजय उवाच:-इति अर्जुनं वासुदेव: {वसुदेव:} तथा उक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूय:।
आश्वासयामास च भीतं एनं भूत्वा पुन: सौम्यवपु: महात्मा।। 11/50

इति वासुदेव: अर्जुनं तथा	ऐसे वसुदेव शिव के पुत्र वासुदेव {महादेव} अर्जुन को {प्यार से} ऐसे
उक्त्वा भूय: स्वकं रूपं दर्शयामास	कहकर पुन: अपना {चतुर्मुखी ब्रह्मा सो चतुर्भुजी विष्णु} रूप दिखाया
च पुन: सौम्यवपु: भूत्वा महात्मा	और फिर शांतरूप होकर महान् आत्मा {परमपिता सदाशिवज्योति+परमात्मा ने}
भीतं एनं आश्वासयामास	भयभीत इस {अर्जुन} को {पहले की तरह} आश्वस्त किया।

मत्कर्मपरम: भव मदर्थं कर्माणि	मुझ {परमपिता} प्रति कर्म करने वाला हो। मेरे व्यक्तरूप के लिए कर्मों को
कुर्वन् अपि सिद्धिं अवाप्स्यसि	करता हुआ भी {अतीन्द्रिय सुख की विष्णुलोकीय} सिद्धि को प्राप्त करेगा।

अथ एतत् अपि अशक्त: असि कर्तुं मद्योगं आश्रित:। सर्वकर्मफलत्यागं तत: कुरु यतात्मवान्।। 12/11

अथ एतत् अपि कर्तुं अशक्त:	यदि इतना भी करने में {हीनभाव के कारण दुर्बल हृदय होने से} अशक्त
असि तत: मद्योगं आश्रित:	हो, तो मेरे आश्रित सर्वसम्बंधों की शरण ले, {इस विनाशी दुनियाँ से}
यतात्मवान् सर्वकर्मफलत्यागं कुरु	अपने चित्त को वश करते हुए सब कर्मफलों का त्याग कर दे।

श्रेयो हि ज्ञानं अभ्यासात् ज्ञानात् ध्यानं विशिष्यते। ध्यानात् कर्मफलत्याग: त्यागात् शान्ति: अनन्तरं।। 12/12

अभ्यासात् ज्ञानं श्रेयो	{ज्ञानरहित योग के} अभ्यास से {सच्चीगीता एडवांस} ज्ञान श्रेष्ठ है।
ज्ञानात् ध्यानं विशिष्यते	ज्ञान से {मनन-चिंतन रूप चैतन्य ज्ञानसागर का} मंथन विशेष है।
ध्यानात् कर्मफलत्याग:	ध्यान से {इसी जन्म में यज्ञसेवा के} कर्मफल का त्याग {श्रेष्ठ है};
हि त्यागात् अनंतरं शांति:	क्योंकि त्याग के तुरंत बाद {आत्मस्थिति की स्थायी} शांति मिल जाती है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्र: करुण एव च। निर्ममो निरहङ्कार: समदु:खसुख: क्षमी।। 12/13
सन्तुष्ट: सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चय:। मयि अर्पितमनोबुद्धि: य: मद्भक्त: स मे प्रिय:।। 12/14

य: सर्वभूतानां अद्वेष्टा मैत्र: च	जो {हिंसक या अहिंसक} सब प्राणियों में द्वेषभाव रहित है। मित्रता और
करुण एव निर्मम: निरहंकार:	करुणाभाव वाला है तथा {दैहिक सम्बन्धियों आदि में} निर्मोही है, निरहंकारी है,

निबन्धाय मता पाण्डव मा शुचः | दुःखों में बंधने लिए मानी गई है। {परन्तु} हे पाण्डव! {तू} दुःखी मत हो;
दैवीं सम्पदं अभिजातः असि | {क्योंकि तूने राक्षसों में भी प्रह्लाद-जैसी} दैवी सम्पत्ति के साथ जन्म लिया है।
द्वौ भूतसर्गौ लोके अस्मिन् दैव आसुर एव च। दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु।। 16/6
पार्थ अस्मिन् लोके भूतसर्गौ | हे पृथ्वीराज! इस {दिन-रात जैसी सुख-दुःख की} दुनियाँ में प्राणियों की सृष्टि
द्वौ एव दैव च | 2 प्रकार की ही है- {स्वर्गीय दिन में} देवताओं की और {नरकीय रात में लेवताओं-जैसे}
आसुर दैवः विस्तरशः | राक्षसों की। दैवी सृष्टि विस्तार से {चौमुखी अश्वोंवाले ब्रह्मामुख द्वारा पहले ही}
प्रोक्तः आसुरं मे शृणु | बताई गई। {अब उत्तरोत्तर सदा दुःखदायी} आसुरी सृष्टि मेरे {शिव समान पंचमुखी से} सुन।
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुः आसुराः। न शौचं न अपि च आचारः न सत्यं तेषु विद्यते।। 16/7
आसुराः जना प्रवृत्तिं च | {द्वैतवादी} आसुरी गुणों वाले {देहाभिमानी} मनुष्य करने योग्य {सुखदायी} कर्म और
निवृत्तिं च न विदुः तेषु | त्यागने योग्य {दुःखदायी} कर्म को भी नहीं जानते। उनमें {भ्रष्ट इन्द्रियों की}
न शौचं न आचारः च सत्यं | {तीव्र लोलुपता के कारण से} न शुद्धता, न सदाचार और सत्यता
अपि न विद्यते | भी {सदाकाल द्वापर-कलियुगी नरक में विद्यमान} नहीं होती। {उत्तरोत्तर घटती है}।
असत्यं अप्रतिष्ठं ते जगत् आहुः अनीश्वरं। अपरस्परसम्भूतं किं अन्यत् कामहैतुकं।। 16/8
ते जगत् असत्यं अप्रतिष्ठिं | वे {विदेशी, विधर्मी & उनमें कन्वर्टिड दैत्य} जगत् को मिथ्या, आधारहीन,
अनीश्वरं अपरस्परसम्भूतं | ईश्वरविहीन, {स्त्री-पुरुष के क्षणिक सुख में} परस्पर संयोग से उत्पन्न हुआ,

कामभोगार्थं अन्यायेन अर्थसंचयान् ईहन्ते | कामविकार भोगार्थ {छल-बल-रिश्वतादि से} अन्यायपूर्वक धनसंग्रही हैं।
इदं अद्य मया लब्धं इमं प्राप्स्ये मनोरथं। इदं अस्ति इदं अपि मे भविष्यति पुनः धनं।। 16/13
अद्य मया इदं लब्धं इमं मनोरथं प्राप्स्ये | आज मुझे यह मिल गया, {कल} इस मनोरथ को पाऊँगा।
इदमस्ति पुनरपि मे इदं धनं भविष्यति | यह {वैभव} है; फिर भी मेरा इतना {भरपूर} धन हो जावेगा।
असौ मया हतः शत्रुः हनिष्ये च अपरान् अपि। ईश्वरः अहं अहं भोगी सिद्धः अहं बलवान् सुखी।। 16/14
मयासौ शत्रुः हतः च अपरानपि | मैंने इस शत्रु को मार लिया है और {भविष्य में} दूसरे {शत्रुओं} को भी मार लूँगा।
हनिष्ये अहं ईश्वरः अहं भोगी | मैं ऐश्वर्यवान हूँ, मैं {बड़ी समृद्धि का राजाई ठाटबाट वाला} उपभोगकर्ता हूँ,
अहं सिद्धः बलवान् सुखी | मैं {सारे कामों में} सफल हूँ, {इस गाँव या इलाके में सबसे} बलवान और सुखी हूँ।
आढ्यः अभिजनवान् अस्मि कः अन्यः अस्ति सदृशो मया। यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इति अज्ञानविमोहिताः।। 16/15
अभिजनवान् अस्मि मया सदृशः | {मैं} बड़े {सम्मानीय और} ऊँचे लोगों वाला हूँ। मेरे जैसा {इस एरिया में}
अन्यः आढ्यः कः अस्ति | दूसरा धनवान कौन? {कुबेर तो अंधभक्तों की 1 कल्पनामात्र है,} धनी मैं हूँ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य | यज्ञ करूँगा, दान दूँगा, {ये करूँगा, वो करूँगा, 5 स्टार होटलों, क्लबों में} आनन्द करूँगा
इति अज्ञानविमोहिताः | ←ऐसे {निरंतर घोर} अज्ञान {अंधकार में पागलों-जैसे} महामूर्ख बने हुए हैं।
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः। प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरके अशुचौ।। 16/16
अनेकचित्तविभ्रान्ताः मोहजाल समावृताः | अनेक विचारों में भटके हुए, मोहजाल में पूरे घिरे हुए {और}

प्रकृत्या एव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः। यः पश्यति तथा आत्मानं अकर्तारं स पश्यति।। 13/29
च यः कर्माणि सर्वशः प्रकृत्यैव | और जो कर्मों को सब प्रकार से {संगमी शूटिंग में अपने-2} स्वभाव से ही
क्रियमाणानि पश्यति तथात्मानं | किया हुआ देखता है और इसी तरह अपने को {शिव परमपिता समान}
अकर्तारं स पश्यति | अकर्ता {मानता है}, वह {ठीक} देखता है। {बाकी सदाशिवोऽहं यहाँ कोई नहीं होता।}
यदा भूतपृथग्भावं एकस्थं अनुपश्यति। तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।। 13/30
यदा भूतपृथग्भावं एकस्थं | जब {व्यक्ति} प्राणियों की भिन्नता को वटवृक्ष के 1 बीज आदम में उपस्थित
अनुपश्यति च तत एव विस्तारं | देखता है और उससे ही {सृष्टि के अनेक धर्मों के} विस्तार को {जानता है},
तदा ब्रह्म सम्पद्यते | तब {उसे समूचे विश्व की ऊर्ध्वमुखी} परम्ब्रह्मा की प्राप्ति हो जाती है।
अनादित्वात् निर्गुणत्वात् परमात्मा अयं अव्ययः। शरीरस्थः अपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।। 13/31
कौन्तेय अयं परमात्मा | हे कुंती-पुत्र! यह {तुरीया तत्व परमब्रह्म सहित हीरोपार्टधारी} परम+आत्मा
अनादित्वात् निर्गुणत्वात् | अनादि एवं {त्रिगुणातीत सदाशिव की निरंतर याद में टिकने कारण} त्रिगुणरहित होने से
अव्ययः शरीरस्थः अपि | अमोघवीर्य {अपनी} देह में रहते भी {सम्पूर्ण आत्मस्थ बनने से}
न करोति न लिप्यते | {पु. संगमयुग की अविनाशी शूटिंग में} न कर्म करता है, न लिप्त होता है।
यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यात् आकाशं न उपलिप्यते। सर्वत्र अवस्थितः देहे तथा आत्मा न उपलिप्यते।। 13/32
यथा सर्वगतं आकाशं सौक्ष्म्यात् | जैसे सर्वगामी आकाश {शून्य स्वरूप} सूक्ष्म होने से

अस्य सदसद्योनिजन्मसु कारणं | इस {आत्मा} के सत्-असत् {मानव} योनियों में जन्म का कारण है।
उपद्रष्टा अनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः। परमात्मा इति च अपि उक्तः देहे अस्मिन् पुरुषः परः।। 13/22
अस्मिन् देहे परः पुरुषः उपद्रष्टा | इस {अर्जुन की} देह में परमपुरुष {परमज्योतिरूप} समीपदृष्टा,
अनुमन्ता भर्ता भोक्ता | कार्यों की अनुमतिदाता, {प्राणियों का} भरण-पोषणकर्ता, भोक्ता,
महेश्वरः परमात्मा इति उक्तः | महान् ईश्वर 'शिव' और 'परमात्मा' {हीरो} इस तरह कहा जाता है।
य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह। सर्वथा वर्तमानः अपि न स भूयः अभिजायते।। 13/23
य एवं पुरुषं च प्रकृतिं गुणैः सह | जो इस प्रकार आत्मा और प्रकृति को {उन सत्वादि 3} गुणों के साथ
वेत्ति स सर्वथा वर्तमानः अपि | जान लेता है, वह सब प्रकार से {आत्मस्थिति में} आचरण करता हुआ भी
भूयः न अभिजायते | पुनः {द्वैतवादी दैत्यों के पापमय इस दुःखी संसार में कम-से-कम पहला} जन्म नहीं लेता।
ध्यानेन आत्मनि पश्यन्ति केचित् आत्मानं आत्मना। अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन च अपरे।। 13/24
केचित् ध्यानेन अन्ये सांख्येन | कुछ लोग {[3]गुणों के} चिंतन द्वारा, दूसरे [1]ज्ञान {की व्याख्या} से, {कोई}
योगेन च अपरे कर्मयोगेन | योग[2] द्वारा & अन्य {रुद्रयज्ञ सेवा[4]}-कार्य करते-2 स्मृति पूर्वक
आत्मना आत्मानं आत्मनि पश्यन्ति | अपनी मन-बुद्धि से ज्योतिबिंदु आत्मा को अपने {भृकुटि} में देखते हैं।
{प्रभु पढ़ाई के 4 ही विषय हैं : ज्ञान[1], योग[2], धारणा[3], सेवा[4] की। यही बेसिक & एडवांस में प्रैक्टिकल पढ़ाई है।}
अन्ये तु एवं अजानन्तः श्रुत्वा अन्येभ्यः उपासते। ते अपि च अतितरन्ति एव मृत्युं श्रुतिपरायणाः।। 13/25

न उपलिप्यते तथा देहे सर्वत्र | उपलब्ध नहीं होता, उसी तरह शरीर में सब जगह {योग-ऊर्जा से}
अवस्थितः आत्मा न उपलिप्यते | स्थित हुआ {सूक्ष्म ज्योतिबिंदु परम+}आत्मा {रूप हीरा} उपलब्ध नहीं होता।
यथा प्रकाशयति एकः कृत्स्नं लोकं इमं रविः। क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।। 13/33
भारत यथैकः रविः इमं | हे भारत! जैसे एक {जड़} सूर्य {एक स्थान से} इस {चाँद-सितारों-नक्षत्रों से भरे}
कृत्स्नं लोकं प्रकाशयति तथा | सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार {जगत्पिता विवस्वत की}
क्षेत्री कृत्स्नं क्षेत्रं प्रकाशयति | आत्मा {भ्रूमध्य से} सारे {वटवृक्षरूप विराट} शरीर को प्रकाशित करती है।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः एवं अन्तरं ज्ञानचक्षुषा। भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुः यान्ति ते परं।। 13/34
एवं ये क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः अन्तरं च | ऐसे जो {अर्जुन के} शरीररूप क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ {सदाशिव (गीता 13-2)} के अन्तर को और
भूतप्रकृतिमोक्षं ज्ञानचक्षुषा | प्राणियों की दैहिक प्रकृति से मुक्ति को {त्रिनेत्री महादेव के} ज्ञाननेत्र द्वारा
विदुः ते परं यान्ति | जानते हैं, वे परम्ब्रह्म=परमात्म रूप {परे-ते-परे परमधाम} को प्राप्त करते हैं।
श्रीभगवानुवाचः-परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानं उत्तमं। यत् ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिं इतः गताः।। 14/1
भूयः ज्ञानानां उत्तमं परं | पुनः {विधर्मियों आदि के} सब ज्ञानों में उत्तम परमश्रेष्ठ {पहली ब्राह्मण कुरी का
ज्ञानं प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा सर्वे | परंब्रह्म-}ज्ञान बताता हूँ, जिसे जानकर {पूर्वकल्प में भी} सब {मननशील}
मुनयः इतः परां सिद्धिं गताः | मुनिजन इस नरक से {जीते जी} परमसिद्धिरूप {वैकुण्ठधाम} गए थे।
इदं ज्ञानं उपाश्रित्य मम साधर्म्यं आगताः। सर्गे अपि न उपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।। 14/2

तु अन्ये एवं अजानन्तः अन्येभ्यः | किंतु कुछ अन्य ऐसा न जानते हुए, दूसरे {शिवबाबा से सन्मुख सुनने वालों से}
श्रुत्वा उपासते च ते श्रुतिपरायणाः | सुनकर उपासना करते हैं और वे सुनाने वालों के आश्रित/आधीन
अपि मृत्युं अतितरन्ति एव | {होकर, सुनाई बातों में फर्क होने पर} भी मृत्युलोक को पार कर ही जाते हैं।
यावत् सञ्जायते किञ्चित् सत्त्वं स्थावरजङ्गमं। क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् तत् विद्धि भरतर्षभ।। 13/26
भरतर्षभ यावत् किंचित् स्थावरजंगमं | हे भरतश्रेष्ठ {वृषभदेव!} जो कुछ जड़-चेतन {रूप अपरा & परा प्रकृति के}
सत्त्वं संजायते तत् | पदार्थ {संसार में} उत्पन्न होते हैं, वह {सब सदा अनासक्त ज्ञानसूर्य}
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् विद्धि | शिव-आत्मज्योति+लिंग {जगत्पिता} के संयोग से उत्पन्न जान।
समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरं। विनश्यत्सु अविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।। 13/27
यः विनश्यत्सु सर्वेषु भूतेषु | जो मृत्यु पाते हुए सब {विभिन्न आकृति के श्रेष्ठ या निष्कृष्ट} प्राणियों में
समं तिष्ठन्तं अविनश्यन्तं | समान भाव से {समूची चतुर्युगी में योग-ऊर्जा द्वारा} बैठने वाले अविनाशी
परमेश्वरं पश्यति स पश्यति | परमेश्वर {शिवज्योति+साकार बाबा} को देखता है, वही {ठीक} देखता है;
समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितं ईश्वरं। न हिनस्ति आत्मना आत्मानं ततो याति परां गतिं।। 13/28
हि सर्वत्र समवस्थितं ईश्वरं समं | क्योंकि सर्वत्र {पुरुषार्थ-अनुसार} समान {योगऊर्जा से} उपस्थित ईश्वर को समान
पश्यन् आत्मना आत्मानं हिनस्ति | {भाव से} देखता हुआ {पुरुषार्थी} अपने मन से आत्मा का घात/पतन
न ततः परां गतिं याति | नहीं करता, {गीता 6-5} तब {परमपदी विष्णु के वैकुण्ठ की} परमगति को पाता है

स्वाध्यायः तप च आर्जवं | आत्माध्ययन, {आत्म ज्योतिबिंदु की स्मृतिरूप} तप और सरलता,
अहिंसा सत्यं अक्रोधः त्यागः शान्तिः अपैशुनं। दया भूतेषु अलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीः अचापलं।। 16/2
अहिंसा सत्यं अक्रोधः त्यागः | {किसी को मन-वचन-कर्म से दुःख न देना←ऐसी} अहिंसा, सत्य, क्रोधहीनता, त्याग,
शांतिः अपैशुनं भूतेषु दया | शांति, दूसरों के दोष न देखना, {सब प्रकार के क्षुद्र} प्राणियों पर {भी} दया,
अचापलं ह्रीः मार्दवं अलोलुप्त्वं | {तन-मन की} चंचलता न होना, लज्जा, मीठापन {और} लोभहीनता,
तेजः क्षमा धृतिः शौचं अद्रोहः नातिमानिता। भवन्ति सम्पदं दैवीं अभिजातस्य भारत।। 16/3
भारत तेजः क्षमा धृतिः | हे भरतवंशी! तेजस्विता, क्षमा, {यथोचित} धैर्य, {अन्दर-बाहर की}
शौचं अद्रोहः नातिमानिता | शुद्धता, किसी से द्रोह न करना, अधिक मान न करना- {ये सभी
दैवीं सम्पदं अभिजातस्य भवन्ति | गुण सत्य सनातनी} दैवी सम्पदा सहित जन्म लेने वालों के होते हैं।
दम्भो दर्पः अभिमानश्च क्रोधः पारुष्यं एव च। अज्ञानं च अभिजातस्य पार्थ सम्पदं आसुरीं।। 16/4
पार्थ दंभः दर्पः च अभिमानः च | हे पृथ्वी के राजा! {दिखावामात्र} पाखंड, घमंड और अभिमान तथा
क्रोधः पारुष्यं च एव अज्ञानं | क्रोध, कठोरता और ऐसे ही बेसमझी- {ये अवगुण द्वैतवादी द्वापर से}
आसुरीं सम्पदं अभिजातस्य | राक्षसी सम्पत्ति से जन्म वालों के हैं, {ये सब दैवी सनातन धर्म के नहीं हैं।}
दैवी सम्पत् विमोक्षाय निबन्धाय आसुरी मता। मा शुचः सम्पदं दैवीं अभिजातः असि पाण्डव।। 16/5
दैवी सम्पत् विमोक्षाय आसुरी | दैवी सम्पत्ति दुःखों से मुक्ति के लिए है। {अवगुण रूप} राक्षसी संपदा

कामहैतुकं अन्यत् किं आहुः | {जिसमें} कामवासना {ही} कारण है, दूसरा क्या?-{वे राक्षस ऐसे ही} कहते हैं।
एतां दृष्टिं अवष्टभ्य नष्टात्मानः अल्पबुद्धयः। प्रभवन्ति उग्रकर्माणः क्षयाय जगतः अहिताः।। 16/9
एतां दृष्टिं अवष्टभ्य नष्टात्मानः | ऐसे स्वार्थी दृष्टिकोण का आधार लेकर नष्ट हुई आत्मस्थिति के भाव वाले
अल्पबुद्धयः उग्रकर्माणः जगतः | अल्पबुद्धि लोग, क्रूर कर्म करने वाले {राक्षस}, जगत् के {सदाकाल}
अहिताः क्षयाय प्रभवन्ति | बैरी बनने वाले, {अंततः पूरा ही} विनाश करने के लिए उत्पन्न होते हैं।
कामं आश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः। मोहात् गृहीत्वा असद्ग्राहान् प्रवर्तन्ते अशुचिव्रताः।। 16/10
दुष्पूरं कामं आश्रित्य दंभमान- | {सदा} अतृप्त कामनाओं का आश्रय लेकर, दिखावामात्र पाखण्ड, मान
मदान्विताः मोहात् असद्ग्राहान् | {और} मद से भरे हुए, मूर्खता से {भगोड़ों के क्षणिक और} असत्य सिद्धान्तों को
गृहीत्वा अशुचिव्रताः प्रवर्तन्ते | पकड़कर {चोरी-डकैती, रिश्वतखोरी-जैसे असंख्य} अपवित्र कर्म करते हैं।
चिन्तां अपरिमेयां च प्रलयान्तां उपाश्रिताः। कामोपभोगपरमा एतावत् इति निश्चिताः।। 16/11
प्रलयान्तां अपरिमेयां चिन्तां | {वे} प्रलयांत तक अनगिनत, {अपूरणीय आकांक्षाओं सहित} चिन्ताओं के
उपाश्रिताः कामोपभोगपरमा | आधीन हुए, {सदा वर्धनीय} कामविकार भोगना ही {सांसारिक} परमप्राप्ति है
च एतावत् इति निश्चिताः | और 'यही सब-कुछ है', {यही परमानंद है}- ऐसे {सदाकालीन दृढ़} निश्चयी हैं।
आशापाशशतैः बद्धाः कामक्रोधपरायणाः। ईहन्ते कामभोगार्थं अन्यायेन अर्थसञ्चयान्।। 16/12
आशापाशशतैः बद्धाः कामक्रोधपरायणाः | सैकड़ों आशाओं के फंदों में जकड़े हुए, काम-क्रोध के वशीभूत हुए,

च अहं गां आविश्य भूतानि | और मैं {देहरूपा} पृथ्वी-माता {अपरा-प्रकृति} में प्रवेश करके प्राणियों को
ओजसा धारयामि च रसात्मकः | योग-ऊर्जा से पालता हूँ और {चेतन चन्द्र देवता का} ज्ञानरस रूप (मुरली में)
सोमः भूत्वा सर्वाः ओषधीः पुष्णामि | सोमरस होकर {मन-बुद्धि रूप आत्मा की} सब औषधियाँ पुष्ट करता हूँ।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहं आश्रितः। प्राणापानसमायुक्तः पचामि अन्नं चतुर्विधं।। 15/14

अहं वैश्वानरः भूत्वा प्राणिनां | मैं {ज्वलनशील योगीश्वर की योगाग्निरूप} जठराग्नि होकर प्राणियों की
देहं आश्रितः चतुर्विधं अन्नं | देह के आश्रित हुआ {साकारी-निराकारी आदि} 4 प्रकार का स्मृतिरूप अन्न
प्राणापानसमायुक्तः पचामि | {संकल्प-विकल्प रूपी} प्राण और अपान वायु से मिलकर पचाता हूँ।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिः ज्ञानमपोहनं च। वेदैश्च सर्वैः अहमेव वेद्यो वेदान्तकृत् वेदविदेव चाहं।। 15/15

अहं सर्वस्य हृदि सन्निविष्टः | {कल्पांत काल में} मैं सबके मन में {स्मृति रूप से} निवास करता हूँ
च मत्तः स्मृतिः च ज्ञानं च | और मेरे से {ईश्वरीय} स्मृति और ज्ञान {की उत्पत्ति} तथा {उनका}
अपोहनं अहं एव सर्वैः वेदैः वेद्यः | लोप होता है। मैं ही {ब्रह्मामुख-निसृत} सब वेदों द्वारा जानने योग्य हूँ,
वेदान्तकृत् च वेदवित् एव अहं | {ज्ञान-अंतकर्ता} वेदान्ती और {द्वापर से} वेद-ज्ञाता भी मैं {ही} शिवबाबा हूँ।

द्वौ इमौ पुरुषौ लोके क्षरश्च अक्षरः एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थः अक्षरः उच्यते।। 15/16

लोके इमौ द्वौ एव पुरुषौ | संसार में ये {सभी प्राणी भोक्ता & 1 अभोक्ता} दो* ही प्रकार की आत्माएँ हैं-
अक्षर च क्षरः | *अक्षर=क्षरणरहित {शिव+समान शंकर} और {भोगी होने से} पतनशील

निबध्नाति | {द्वापुर-कलियुगी द्वैतवादी, दुखदायी राक्षसी देह में} बाँधता है।

तमः तु अज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनां। प्रमादालस्यनिद्राभिः तत् निबध्नाति भारत।। 14/8

भारत सर्वदेहिनां मोहनं | हे भरत/विष्णु के वंशी! सब देहधारियों को मूढ़ बनाने वाले {कलियुगी}
तमः तु अज्ञानजं विद्धि | तमोगुण को तो {शंकराचार्यकृत सर्वव्यापी के} अज्ञान से पैदा हुआ जान।
तत् प्रमादालस्य- | वह {तमोगुण अविनाशी ड्रामानुसार कलियुग में} लापरवाही, आलस्य {और}
निद्राभिः निबध्नाति | निद्रा द्वारा {अतिभोगी बनी आत्मा को तामसी रौरव नरक में} बाँध लेता है।

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत। ज्ञानं आवृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयति उत।। 14/9

भारत सत्त्वं सुखे रजः कर्मणि | हे भरतवंशी! {स्वर्गीय} सत्वगुण सुख में, {द्वापर से} रजोगुण कर्म में
संजयति तु तमः ज्ञानं | लगाता है; किंतु तमोगुण {पृथ्वीराज जैसे कलियुग राजाओं के} ज्ञान को {भी}
आवृत्य प्रमादे उत संजयति | {भली-भाँति} ढककर {सदाकालीन} गफलत में डाल देता है।

रजः तमश्च अभिभूय सत्त्वं भवति भारत। रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजः तथा।। 14/10

भारत रजः तमः च | हे भारत! {सतयुग-त्रेता के स्वर्ग में ज्ञानेन्द्रियों का सुख} रजो और तमोगुण को
अभिभूय सत्त्वं भवति | दबाकर सत्वगुण पैदा करता है। {द्वैतवादी द्वापर में भ्रष्ट कर्मेन्द्रिय का सुख}
सत्त्वं च तमः रजः तथा | सत्व और तमोगुण को {दबाकर} रजोगुण तथा {पापी कलियुग में तो}
सत्त्वं रजः तमः | सत्व और रजो को {भी दबाकर सर्वेन्द्रियों का क्षणिक सुख} तमोगुण {बढ़ाता है}।

अतः लोके वेदे क्षरं पुरुषोत्तमः प्रथितः | समान बना है;} इसीलिए लोक & वेदों में क्षर को भी पुरुषोत्तम कहा है।
{'आदम को खुदा मत कहो, आदम खुदा नहीं; लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नहीं।'} ये भी मुसलमानी फिकरा है।

यो मां एवं असम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमं। स सर्ववित् भजति मां सर्वभावेन भारत।। 15/19

भारत यः असम्मूढः | हे ज्ञान की रोशनी में सदारत भारत! जो पूरा मूर्ख नहीं, {थोड़ा भी ज्ञानी है, वह}
मां एवं पुरुषोत्तमं | मुझ {सदा}शिव ज्योति को, {ऊपर जैसा कहा,} इस प्रकार आत्माओं में सर्वोत्तम
जानाति स सर्ववित् | {ही} समझता है, वह {निकट भविष्य में} सब-कुछ जानने वाला {त्रिकालदर्शी}
मां सर्वभावेन भजति | मुझे {ही} सर्व {संबंधों के अव्यभिचारी} भाव से {पु. संगमयुग में} याद करता है।

इति गुह्यतमं शास्त्रं इदं उक्तं मया अनघ। एतत् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत।। 15/20

अनघ इति इदं गुह्यतमं | हे निष्पाप! {या कलंकीधर?} इस प्रकार यह 'गुह्यात् गुह्यतरं' {एडवांस ज्ञान का}
शास्त्रं मया उक्तं भारत | {सर्वमान्य} गीताशास्त्र मैंने {केवल तुम्हें} बताया है। हे ज्ञान की रोशनी में सदारत!
एतत् बुद्ध्वा बुद्धिमान् | इसे {गहराई से} जानकर {मनुष्य त्रिनेत्री महादेव जैसा} समझदार, {बुद्धिमान}
च कृतकृत्यः स्यात् | और {पु. संगमयुग में ही} सब-कुछ पाने वाला सफल मनोरथ बन जाता है।

श्रीभगवानुवाचः-अभयं सत्त्वसंशुद्धिः ज्ञानयोगव्यवस्थितिः। दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायः तपः आर्जवं।। 16/1

अभयं सत्त्वसंशुद्धिः ज्ञानयोग- | निर्भयता, चित्त की संपूर्ण शुद्धि, {क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का} ज्ञान और योग
व्यवस्थितिः च दानं दमः यज्ञः | विशेषतः निरन्तर स्थिरता और दान, इन्द्रियों का संयम, यज्ञसेवा,

इदं ज्ञानं उपाश्रित्य मम साधर्म्यं | इस ज्ञान का आश्रय लेकर मेरे समान {निर्विकारी परंब्रह्म}-गुणधर्म को
आगताः सर्गे न उपजायन्ते | प्राप्त हुए {सत-त्रेता के स्वर्ग में जाते हैं, इस दुःखी} संसार में उत्पन्न नहीं होते
च प्रलये अपि न व्यथन्ति* | और प्रलयांत में भी व्यथित नहीं होते, {प्रायः द्वापर तक सुखी ही रहते।}
*{खुदा के बन्दे कयामत में भी मौज में रहेंगे।} (कुरान--) {'योगक्षेमं वहाम्यहम्' देखिए गीता 9-22}

मम योनिः महत् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधामि अहं। सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।। 14/3

भारत महद्ब्रह्म | हे ज्ञान-प्रकाश में सदारत भारत! {अपरा प्रकृतिरूप/मातागुरु-क्षेत्र} परंब्रह्म
मम योनिः अहं तस्मिन् | मेरी योनि {रूपा माता भी} है; मैं उस {अविनाशी देहरूप लिंगमूर्ति में}
गर्भं दधामि | {आत्मज्ञान रूपी बीज का} गर्भ डालता हूँ। {सं+आख्यारूप योग के}
ततः | उस {आत्ममंथन बढ़ने} से {याद की खुराक द्वारा पुरुषोत्तम संगमयुग में}
सर्वभूतानां सम्भवः भवति | सब {रुद्राक्ष/बीजरूप} प्राणियों की {परमब्रह्म द्वारा मानसी} उत्पत्ति होती है।
{'अन्नाद्भवन्ति भूतानि' (याद की खुराक से) नं. वार ब्रह्मा नामधारियों से मानसी सृष्टि के प्राणी होते हैं} (गीता 3-14)

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः। तासां ब्रह्म महत् योनिः अहं बीजप्रदः पिता।। 14/4

कौन्तेय सर्वयोनिषु याः | हे कुन्ती-पुत्र! {देव-दानवादि प्राणीमात्र की भिन्न-2} सब योनियों में जो
मूर्तयः सम्भवन्ति तासां | {दैहिक} मूर्तियाँ पैदा होती हैं, उन सबकी {जड़ात्मक तुरीया तत्व ब्रह्म-}
योनिः महत् ब्रह्म | योनि {रूपा माता मुकर्रर रथ ही} महान परब्रह्म है। {इस रीति पु.संगम में}

सर्वद्वारेषु देहे अस्मिन् प्रकाशः उपजायते। ज्ञानं यदा तदा विद्यात् विवृद्धं सत्त्वं इति उत।। 14/11

यदा अस्मिन् देहे सर्वद्वारेषु | **जब इस देह के सभी** {इन्द्रिय-}**द्वारों में** {सच्चीगीता का एडवांस}

ज्ञानं प्रकाशः उपजायते तदा उत | **ज्ञानप्रकाश उत्पन्न होता है, तब अवश्य ही** {पुरुषोत्तम संगमयुगी शूटिंग में}

सत्त्वं विवृद्धं इति विद्यात् | {ब्राह्मण जीवन का सतयुगी} **सत्वगुण विशेष बढ़ा है, ऐसा जान ले।**

लोभः प्रवृत्तिः आरम्भः कर्मणां अशमः स्पृहा। रजसि एतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।। 14/12

भरतर्षभ रजसि | **हे भरतवंश में श्रेष्ठ** {हीरो पार्टधारी}**! स्वर्गीय सुखों के बाद रजोगुण के**

विवृद्धे लोभः कर्मणां प्रवृत्तिः | **विशेष बढ़ने पर** {द्वापर से द्वैतवादी दैत्यों के} **कर्मों में लोभ की प्रवृत्ति का**

आरम्भः स्पृहा अशमः एतानि जायन्ते | **आरंभ, लालसा, अशांति- ये सब** {भ्रष्टेन्द्रियाचण से} **पैदा होते हैं।**

अप्रकाशः अप्रवृत्तिश्च प्रमादः मोह एव च। तमसि एतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन।। 14/13

कुरुनन्दन | **हे** {ऐसे रजोगुणी कर्मेन्द्रिय-अभिमानी} **कुरुओं के** {भी} **आह्लाददाता** {प्रह्लाद}**!**

तमसि विवृद्धे प्रमादः | **तमोगुण विशेष बढ़ जाने पर** {श्रेष्ठ कर्मों में भी} **लापरवाही,** {जीवनमार्ग में}

अप्रकाशः अप्रवृत्तिः च | **अज्ञानान्धकार, कार्यों में अरुचि और** {देह के संबन्धियों और पदार्थों में विशेष}

मोहः एतानि एव जायन्ते | **दैहिक लगाव- ये सब** {अवगुण तामसी पापी कलियुग में} ही **उत्पन्न होते हैं।**

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्। तदा उत्तमविदां लोकान् अमलान् प्रतिपद्यते।। 14/14

अहं बीजप्रदः पिता | **मैं** {निराकार शिव मौलिक रूप से ही} **ज्ञानबीज-दाता परमपिता हूँ।**

सत्त्वं रजः तमः इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः। निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनं अव्ययं।। 14/5

महाबाहो सत्त्वं रजः तमः | **हे दीर्घबाहु!** {कालक्रमानुसार} **सत्त्वगुण, रजोगुण** {और} **तमोगुण-**

इति प्रकृतिसम्भवाः गुणाः | **ये प्रकृति** {रूप भी इसी मूर्तिमंत महादेव} **से उत्पन्न हुए तीनों गुण**

अव्ययं देहिनं देहे निबध्नन्ति | **अविनाशी आत्मा को देह** {रूपी अविनाशी पिण्ड} **में भली-भाँति बाँधते हैं।**

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकं अनामयं। सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन च अनघ।। 14/6

अनघ | **हे निष्पाप!** {धवल/श्वेत अर्जुन! भले सारी दुनियाँ कलंक भी लगाती है!}

तत्र निर्मलत्वात् | {फिर भी} **वहाँ** {निकट भविष्य में सत्य की प्रत्यक्षता होने पर, अपने गुणों से} **निर्मल होने से**

प्रकाशकं च अनामयं सत्त्वं | {ज्ञान}**-प्रकाशक व दुःखरहित सत्वगुण,** {साक्षात् निराकारी सो साकारी ईश्वरीय}

ज्ञानसंगेन | **ज्ञान से सुख की आसक्ति द्वारा** {सत्त्वप्रधान बनी आत्मा को सर्वोत्तम}

सुखसंगेन बध्नाति | {विष्णुलोकीय वैकुण्ठ की कलातीत अतीन्द्रिय} **सुखासक्ति से बाँधता है।**

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवं। तत् निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनं।। 14/7

कौन्तेय रागात्मकं रजः | **हे कुन्ती-पुत्र! अनुरागरूप रजोगुण को** {नरनिर्मित द्वैतवादी दैत्यों के नरक में}

तृष्णासंगसमुद्भवं विद्धि तत् | **लोभ** {और} **आसक्ति से उत्पन्न हुआ जान। वह** {रजोगुण कर्मघमंडी भोगी}

देहिनं कर्मसंगेन | **आत्मा को** {भ्रष्ट इन्द्रियों के} **कर्मों से** {उत्तरोत्तर अधिकाधिक} **लगाव बढ़ने से**

विमूढा न अनुपश्यन्ति | **महामूर्ख नहीं देख पाते।** {तो द्वैतवादी द्वापरमध्य से सर्वव्यापी मान लेते हैं।}

{1 मात्र अभोक्ता-अगर्भा शिव ही पु. संगमयुग में सृष्टि के 1 बीज जगत्पिता में ही एकव्यापी है, अतः 1 का सुनें।}

यतन्तो योगिनश्च एनं पश्यन्ति आत्मनि अवस्थितं। यतन्तः अपि अकृतात्मानः न एनं पश्यन्ति अचेतसः।। 15/11

यतन्तः योगिनः एनं | **यत्नवान योगी इस** {भृकुटि में योगूर्जा की *अणुरूप आत्म किरण ज्योति} **को**

आत्मनि अवस्थितं पश्यन्ति | **अपनी** {प्रकृतिकृत देह *भ्रूमध्य में सदा} **भली-भाँति स्थित हुआ देखते हैं;**

च अकृतात्मानः अचेतसः यतन्तः | **किंतु अपनी इन्द्रियों को वश में न करने वाले बुद्धू लोग यत्न करते**

अपि एनं न पश्यन्ति | **भी इस** {आत्मा} **को नहीं देख पाते।** {क्योंकि नास्तिक बन पड़े हैं।}

* {'अणोरणीयांसमनुस्मेरद्यः' (गीता 8-9) *'भ्रुवोर्मध्ये *प्राणमावेश्य' (गी.8-10) 'चक्षुश्चैवान्तरे *भ्रुवोः' (5-27)}

यत् आदित्यगतं तेजो जगत् भासयते अखिलं। यत् चन्द्रमसि यत् च अग्नौ तत् तेजः विद्धि मामकं।। 15/12

यत् आदित्यगतं तेजः अखिलं | **जो** {1 मात्र चेतन आदित्य शिवबाबा ज्ञान-}**सूर्य में स्थित तेज सम्पूर्ण**

जगत् भासयते चन्द्रमसि च अग्नौ | **जगत् को प्रकाशित करता है, चन्द्र**{देव}**&अग्नि**{देव} **में** {आभामय}

यत् तेजः तत् मामकं विद्धि | **जो तेज है, वह मेरा जान।** {सभी आत्माएँ सो 1 विवस्वत सूर्य नहीं हैं।}

{सृष्टि में ऑलराउण्ड हीरो पार्टधारी जगत्पिता शिवबाबा का नं. वार योगबल रूपी तेज या ऊर्जा प्राणीमात्र में व्यापक है। जैसे बिजली-करेंट सभी यंत्रों में जाता है वैसे ही पु. संगम से ही यह तेज प्राणियों में नं. वार विभाजित है।}

गां आविश्य च भूतानि धारयामि अहं ओजसा। पुष्णामि च ओषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।। 15/13

सर्वाणि भूतानि क्षरः | {1 महादेव सिवा} **सभी** {क्षतवीर्य/पतनशील} **प्राणी विनाशी हैं,** {आज हैं, कल नहीं}

च कूटस्थः | **और** {परम ब्रह्मलोक वासी ऊँचे कैलाश-जैसे एवरेस्ट} **शिखर पर स्थित**

अक्षरः उच्यते | **अविनाशी-**{सदाशिव+दैहिक लिंगरूप सोमनाथ मंदिर का शिवबाबा} **कहा जाता है;**

* {'द्वा सुपर्णा सुयुजा सखाया समानं वृक्षमभिषष्व जाते' ।।ऋग्वेद।। (1 सदा अभोक्ता, दूसरा भोक्ता-अभोक्ता भी)}

उत्तमः पुरुषः तु अन्यः परमात्मा इति उदाहृतः। यो लोकत्रयं आविश्य बिभर्ति अव्ययः ईश्वरः।। 15/17

तु अन्यः उत्तमः | **किंतु इन दोनों** में {प्राणीमात्र क्षर & सदाशिव ज्योति अक्षर} **से भिन्न सर्वोत्तम**

पुरुषः | {पुरुषोत्तम आदिनारायण की} **आत्मा** {हीरो पार्टधारी+परमब्रह्म (देहमूर्ति महादेव)}

परमात्मा इति उदाहृतः | **'परमात्मा' ← ऐसे** {तुरीया भोगी} **कहा जाता है,** {सभी आत्मा सो परमात्मा नहीं हैं।}

यः अव्ययः ईश्वरः | **जो अमोघवीर्य महेश्वर** {त्रिलोकीनाथ सदा शिवज्योति समान शिवबाबा}

लोकत्रयं आविश्य बिभर्ति | {सुख, दुःख, शांतिधाम} **तीनों लोकों* को अधिकार में लेकर धारण करता है।**

* {मैं (शिव निराकार ज्योतिबिंदु) तो सिर्फ (अण्डे मिसल सामान्य आत्माओं के) ब्रह्माण्ड* का मालिक हूँ तुम (एवरेस्ट-जैसी चोटी के ब्राह्मण) तो {सुखदुख-शांतिधाम तीनों के} त्रिलोकीनाथ बनते हो। (मु.ता.12/5/70 पृ.1 आदि)}

यस्मात् क्षरं अतीतः अहं अक्षरात् अपि च उत्तमः। अतः अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।। 15/18

यस्मात् अक्षरात् अपि अतीतः च | **जिस अक्षर** {आदि नारायण} **से भी** {आत्मस्थिति में} **अतीत और**

उत्तमः अहं अस्मि च | **उत्तम** {सदाशिवज्योति, पुरुषोत्तम} **मैं हूँ, तो भी** {मेरी याद से वह मेरे

ऊर्ध्वं प्रसृताश्च | ऊपर {राम-कृष्ण के स्वर्गलोक में} फैली हुई हैं और {मंदिरों में पूजित कृष्ण बच्चू की}
कर्मानुबंधीनि | {गीतामत&मानवमत से प्रभावित स्वर्ग में श्रेष्ठ&नर्क में भ्रष्ट} कर्मों को बाँधने वाली
मूलानि | {विधर्मियों की पु. संगमयुगी बाईप्लाट शूटिंगकालीन} जड़ें भी
अधः मनुष्यलोके | नीचे {चीरफाड़कर्ता हिंसक दैत्यों के द्वैतवादी द्वापुर-कलियुगी} मनुष्यलोक में
अनुसंततानि | फैली हुई हैं। {इसीलिए ढेर विधर्मियों के आने से कलियुगांत में ही गीता 18-66 में बोला-''सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।''} मेरी शरण आय मुझ एक से ही सुन।

न रूपं अस्य इह तथा उपलभ्यते न अन्तः न च आदिः न च सम्प्रतिष्ठा। अश्वत्थं एनं सुविरूढमूलं असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।। 15/3

अस्य तथा रूपं इह उपलभ्यते न | इस वृक्ष का वैसा {परं/ब्रह्मलोकीय} रूप यहाँ {पृथ्वी पर} उपलब्ध नहीं है
च न आदिः न सम्प्रतिष्ठा च नांतः | और न इसका आदि, न मध्य और न अन्त {ही यथार्थ में दिखाई देता है}।
सुविरूढमूलं एनं अश्वत्थं | खूब पक्की जड़ों वाले इस {कामासक्त} मन रूपी अश्व की स्थिरता {हेतु}
असंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा | अनासक्ति के शस्त्र द्वारा {अथवा} दृढ़ता {की गदा} से {भी} काटकर,

ततः पदं तत् परिमार्गितव्यं यस्मिन् गताः न निवर्तन्ति भूयः। तं एव च आद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।। 15/4

ततः तत् पदं | उस {पुरुषोत्तम संगमयुग} से उस {अतीन्द्रिय सुखदायी} परंपद-{विष्णुलोक} को
परिमार्गितव्यं यस्मिन् गताः | {मूसलों रूपी मिसाइलयुग में अभी ही} खोजना चाहिए, जिस {बैकुण्ठ} में गए हुए
भूयः न निवर्तन्ति | {9 कुरियों में से पहली कुरी वाले ब्राह्मण} पुनः {यहाँ नरक में} नहीं लौटते

विमुक्तः अमृतं अश्नुते | अच्छी तरह मुक्त हुआ {देवों की 21 पीढ़ियों में} अमर पद को भोगता है।

अर्जुन उवाचः-कैः लिङ्गैः त्रीन् गुणान् एतान् अतीतः भवति प्रभो। किमाचारः कथं च एतान् त्रीन् गुणान् अतिवर्तते।। 14/21

प्रभो कैः लिंगैः एतान् त्रीन् गुणान् | हे प्रभो! किन लक्षणों से {पुरुष दैहिक प्रकृति के} इन 3 गुणों से
अतीतः भवति आचारः किं च | पार हो जाता है? {पु. संगम में उसका} आचरण कैसा होता है और
एतान् त्रीन् गुणान् कथं अतिवर्तते | इन तीनों गुणों को {इसी पुरुषोत्तम युग में} कैसे पार करता है?

श्रीभगवानुवाचः-प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहं एव च पाण्डव। न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति।। 14/22

पाण्डव प्रकाशं | हे पाण्डु/पण्डा {शिव}-पुत्र {अर्जुन}! {सतयुगी सत्वगुण के आत्म-}प्रकाश,
प्रवृत्तिं च मोहं | {द्वैतवादी द्वापर से रजो की कर्मों में} प्रवृत्ति और {कलियुगी तामस से} मूढ़ता
सम्प्रवृत्तानि न द्वेष्टि च | पैदा होने पर {भी जो} न द्वेष करता है और {पुरुषोत्तम संगमयुग में भी कभी}
न निवृत्तानि कांक्षति | ना {इनसे} निवृत्त होने पर आकांक्षा करता है {& इस तरह सदाकाल}

उदासीनवत् आसीनः गुणैः यः न विचाल्यते। गुणा वर्तन्त इति एव यः अवतिष्ठति न इङ्गते।। 14/23

उदासीनवत् आसीनः यः | साक्षी की भाँति रहते हुए जो {प्रकृतिगत मर्ज या इमर्ज हुए मायानिर्मित}
गुणैः विचाल्यते न गुणाः एव | गुणों से हिलता नहीं {और मायावी सत्त्व-रजादि 3} गुण ही {क्रमशः सदा}
वर्तन्त इति यः | आवर्तन करते हैं- ऐसा {समझकर} जो {कभी भी परिस्थितिवश पुरुषार्थ में}
इंगते न अवतिष्ठति | डोलता नहीं; भली-भाँति {हिमवान् युधिष्ठिर-जैसा} स्थिर रहता है {और}

यदा देहभृत् सत्त्वे प्रवृद्धे | {कल्पांत में} जब देहधारी {योग द्वारा ब्राह्मणत्व का} सत्वगुण अति बढ़ने पर
प्रलयं याति तदा तु उत्तम | प्रलयकालीन मृत्यु पाता है, तब तो {वह पुरुषोत्तम संगम से ही} पुरुषोत्तम को
विदां अमलान् लोकान् प्रतिपद्यते | जानने वालों के निर्मल लोकों की {देवताई पीढ़ियों में जन्म} पाता है।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते। तथा प्रलीनः तमसि मूढयोनिषु जायते।। 14/15

रजसि प्रलयं गत्वा | रजोगुण स्थिति में प्रलयकालीन महामृत्यु को पाकर {भ्रष्टकर्मेन्द्रियों से द्वैतवादी}
कर्मसंगिषु जायते | {द्वापुरयुगी दैत्यों के} कर्मों से लगाव वालों में {संगमयुगी शूटिंग के स्वभाव से ही} उत्पन्न होता है,
तथा तमसि प्रलीनः | उसी प्रकार {संगमयुगी शूटिंगकाल में} तमोगुणी {स्वभाव} में महामृत्यु प्राप्त हुआ
मूढयोनिषु जायते | {कलहयुगी कल्प-2 की हूबहू शूटिंग अनुसार} मूढ़मति के राक्षसों में पैदा होता है।

कर्मणः सुकृतस्य आहुः सात्त्विकं निर्मलं फलं। रजसः तु फलं दुःखं अज्ञानं तमसः फलं।। 14/16

सुकृतस्य कर्मणः सात्त्विकं | {रुद्रयज्ञ के श्रेष्ठ सेवाकर्मों के फल से पुण्य स्वरूप} अच्छे कर्मों का सात्त्विक
निर्मलं फलं आहुः तु | निर्मल फल {सत-त्रेतायुगी सत्त्वप्रधान & सात्विक स्वर्ग} कहा जाता है; किंतु
रजसः फलं दुःखं | {द्वापर के द्वैतवादियों में हिंसक शासन से पैदा} राजसी {कर्मों का} फल दुःख है।
तमसः फलं अज्ञानं | तामसी {& व्यभिचारी पापी कलियुग के कर्मों का} फल {मूढ़भाव वाला} अज्ञान है।

सत्त्वात् सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च। प्रमादमोहौ तमसो भवतः अज्ञानं एव च।। 14/17

सत्त्वात् ज्ञानं च रजसः लोभ | सत्व से {परखने & निर्णय की} समझशक्ति और रजोगुण से लोभ

सनातनः अंशः प्रकृतिस्थानि | सनातन {बुद्धिरूपी शिवनेत्री} अंश, प्रकृति में स्थित {जड़त्वमयी बुद्धि को}
मनःषष्ठानि इन्द्रियाणि कर्षति | मन सहित छः ज्ञानेन्द्रियों को {भी जगत्पिता महादेव द्वारा} खींचता है।
शरीरं यत् अवाप्नोति यत् च अपि उत्क्रामति ईश्वरः। गृहीत्वा एतानि संयाति वायुः गन्धान् इव आशयात्।। 15/8

यत् ईश्वरः | जब {प्राणियों द्वारा पु. संगम में एकत्र अखंड} योगऊर्जा का अंश=आत्मा {देह से}
उत्क्रामति च यत् शरीरं अवाप्नोति | ऊपर निकलता है और जब {दूसरी} देह को {गर्भ में} धारण करता है,
इव वायुः आशयात् गन्धान् | {तब} जैसे वायु {फूलों के} स्थान से सुगन्धियों को {दूर ले जाती है, वैसे ही सृष्टि रंगमंच का हीरो जगत्पिता परम+आत्मा महादेव का योगांश}
एतानि गृहीत्वा संयाति | इन {प्राणियों के दैहिक 23* तत्वों को} लेकर जाता है। *{गीता 13/5}

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणं एव च। अधिष्ठाय मनश्च अयं विषयान् उपसेवते।। 15/9

अयं श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं रसनं च | यह {योगूर्जारूप सूर्य की किरण/आत्मा} कान, आँख, त्वचा, जिह्वा और
घ्राणं च एव मनः अधिष्ठाय | नासिका, वैसे ही {छठे चंचल} मन का {बुद्धिरूप त्रिनेत्र का} आधार लेकर,
विषयान् उपसेवते | {जड़ देहरूप यंत्र/मोटर द्वारा} विषय-भोगों का सेवन करती है।

उत्क्रामन्तं स्थितं वा अपि भुञ्जानं वा गुणान्वितं। विमूढा न अनुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।। 15/10

उत्क्रामन्तं वा स्थितं वा भुंजानं | {देह} छोड़ते या धारण करते अथवा भोगते हुए {विद्युत करेंटे-जैसी}
गुणान्वितं ज्ञानचक्षुषः पश्यन्ति | त्रिगुणयुक्त {आत्मा को} ज्ञान नेत्र वाले {परमब्रह्मावत्स ही} देखते हैं,

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः। तुल्यप्रियाप्रियो धीरः तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।। 14/24

समदुःखसुखः स्वस्थः {जो} **सुख-दुःख में** {ज्योतिबिंदु आत्मा में सदाशिव समान} **आत्मस्थ है, समलोष्टाश्मकांचनः तुल्यप्रियाप्रियः** **मिट्टी-पत्थर-सोने में समदृष्टि है, प्रिय-अप्रिय में** {रागद्वेषहीन 1} **समान, धीरः तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः** **धैर्यवान है। अपनी निंदा-स्तुति में** {सदा हर्षित & 1} **समान रहता है,**

मानापमानयोः तुल्यः तुल्यः मित्रारिपक्षयोः। सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।। 14/25

मानापमानयोः तुल्यः मित्रारिपक्षयोः {जो} **मान-अपमान में समान है, मित्र-शत्रु, दोनों पक्षों में** {सदा} **तुल्यः सर्वारम्भपरित्यागी** **समान है। सभी** {यज्ञ सिवा सांसारिक} **कर्मों का समुचित त्यागी है। स गुणातीतः उच्यते** **वह** {प्रकृतिगत} **गुणसंघात से परे कहा जाता है।** {गीता 2-45}

मां च यः अव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते। स गुणान् समतीत्य एतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।। 14/26

च यः मां अव्यभिचारेण भक्ति- **और जो मुझ** {रुद्र यज्ञपिता शिवबाबा} **की अव्यभिचारी भावना से योगेन सेवते स एतान् गुणान्** **लगावपूर्वक सेवा करता है, वह** {प्रकृति के} **इन गुणों को** {सहज-2} **समतीत्य ब्रह्मभूयाय कल्पते** **संपूर्ण पार करके** {सदा सत्वस्थ & तुरीया} **परंब्रह्म के लिए योग्य है;**

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठा अहं अमृतस्य अव्ययस्य च। शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्य ऐकान्तिकस्य च।। 14/27

हि अहं अव्ययस्य ब्रह्मणः च **क्योंकि मैं** {शिवबाबा ही} **अविनाशी परम्ब्रह्म की** {यहाँ पु. संगम} **और अमृतस्य च शाश्वतस्य धर्मस्य च** **अमरलोक की तथा शाश्वत** {सत्य सनातन देवी-देवता} **धर्म की और**

एव संजायते तमसः अज्ञानं **ही उत्पन्न होता है।** {कलियुगी व्यभिचार से पैदा} **तमोगुण से बेसमझी च प्रमादमोहौ भवतः** **और लापरवाही तथा** {'क्रोधात्भवति सम्मोह' रूप} **मूढ़ता उत्पन्न होती है।**

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः। जघन्य गुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।। 14/18

सत्त्वस्थाः ऊर्ध्वं {इसी पृथ्वी पर कल्पांत में} **सत्वगुण में स्थित** {हुए लोग सतयुग-त्रेता के स्वर्गलोक में} **ऊपर गच्छन्ति राजसाः मध्ये तिष्ठन्ति** **जाते हैं, रजोगुणी मध्य** {के नरनिर्मित नरकलोक} **में स्थित होते हैं जघन्य गुणवृत्तिस्थाः** {और} **जघन्य** {पापियों की} **गुण-वृत्तियों में स्थित** {राक्षसी वृत्ति के नर रूप} **तामसाः अधः गच्छन्ति** **तामसी लोग** {कलियुगी} **अधोगति के** {रौरव नरक में भी} **जाते हैं।**

न अन्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टा अनुपश्यति। गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सः अधिगच्छति।। 14/19

यदा द्रष्टा गुणेभ्यः अन्यं **जब देखने वाला** {सत्-रजादि} **गुणों के अलावा किसी** {और प्राणियों को} **कर्तारं न अनुपश्यति च** **करने वाला नहीं देखता और** {युगानुकूल परिवर्तनशील जड़त्वमयी प्रकृतिगत} **गुणेभ्यः परं वेत्ति सः** **गुण संघात से परे** {सृष्टि रंगमंच के हीरो परम+आत्मा} **को जानता है,** {तब} **वह मद्भावं अधिगच्छति** **मेरे** {नित्य सत्वस्थ शिवज्योति} **भाव को** {मात्र पु. संगमयुग में नं. वार ही} **पाता है।**

गुणान् एतान् अतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्। जन्ममृत्युजरादुःखैः विमुक्तः अमृतं अश्नुते।। 14/20

देही देहसमुद्भवान् एतान् त्रीन् **आत्मा** {चतुर्युगी में क्रमशः} **देह से पैदा होने वाले इन तीनों** {सत्वादि} **गुणान् अतीत्य जन्ममृत्युजरादुःखैः** **गुणों को पार करके जन्म-मृत्यु-बुढ़ापा** {आदि अनेक प्रकार के} **दुःखों से**

ऐकान्तिकस्य सुखस्य प्रतिष्ठा **आत्यन्तिक अतीन्द्रिय सुख की** {समूची सृष्टि में एकमात्र} **आबरू हूँ।**

*{प्राकृतिक चैतन्य मूर्तिवाला, कलाओं में बंधायमान, यादगार मंदिरों का बच्चाबुद्धि साकार सतयुगी कृष्णचन्द्रदेव या चैतन्य मूर्तिमंत महादेव भी भोगी/क्षर देवात्माएँ हैं। वे सदाकाल अकर्ता-अगर्भा, अभोक्ता-सर्वधर्ममान्य-निराकार, सर्व का कल्याणकारी सदाशिव नहीं हो सकते। वह एकमात्र परमपिता शिवज्योति ही है।}

श्रीभगवानुवाचः-ऊर्ध्वमूलं अधःशाखं अश्वत्थं प्राहुः अव्ययं। छन्दांसि यस्य पर्णानि यः तं वेद स वेदवित्।। 15/1

ऊर्ध्वमूलं **ऊपर** {परमधाम की ओर आधारमूर्त} **जड़ों वाले**, {दाईं-बाईं ओर विधर्मियों की} **अधःशाखं छन्दांसि** **अधोमुखी शाखाओं वाले,** {'तुण्डे-2 मतिर्भिन्ना' कामनाओं के} **छन्दों रूपी,** {अलग-2 प्रकार के} **यस्य पर्णानि** **जिस** {वृक्ष के 7 अरब मानवी} **पत्ते हैं,** {ऐसे सर्वोत्तम मनन-चिंतनशील मनरूपी} **अश्वत्थं** **अश्व की** {सच्चीगीता ज्ञान-योग की पढ़ाई से स्थिरता वाले} **अश्वत्थ** {वटवृक्षरूप सृष्टिवृक्ष} **को अव्ययं प्राहुः यः तं** **अविनाशी कहा है। जो उस** {सृष्टिवृक्ष के आदि-मध्य-अंत} **को** {भली-भाँति गहराई से} **वेद स वेदवित्** **जानता है, वह** {चौमुखी ब्रह्मामुख से निकले} **वेदों का** {पुरुषोत्तम संगमयुगी} **ज्ञाता है।**

अधश्च ऊर्ध्वं प्रसृताः तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः। अधश्च मूलानि अनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।। 15/2

तस्य {इस संसार में} **उस** {मानवीय अश्वत्थ सृष्टिवृक्ष} **की** {सत्व-रज-तम←इन} **गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः** **3 गुणों से प्रकृष्टतया बढ़ने वाली,** {द्वापर से} **विकारों के प्रकृष्ट अंकुरों वाली, शाखा अधश्च** **शाखाएँ नीचे** {अधोलोक नरक में} **तथा** {सत्य सनातन धर्म के मूल तना वाली}

च तं एव आद्यं पुरुषं प्रपद्ये **निश्चय ही उसी आदि** {महादेव/आदम} **परमपुरुष** {हीरो} **की शरण लेनी चाहिए, यतः पुराणी प्रवृत्तिः प्रसृता** **जिससे पुरानी** {सत्य सनातन देवी-देवता धर्म की} **प्रक्रिया प्रसारित हुई है।**

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः। द्वन्द्वैः विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञैः गच्छन्ति अमूढाः पदं अव्ययं तत्।। 15/5

निर्मानमोहाः जितसंगदोषाः **मान और मोह से रहित,** {देह-अभिमानियों के} **संगदोष को जीतने वाले, अध्यात्मनित्याः** **नित्य आत्मज्ञान की गहराई में लगे हुए** {भौतिकवाद को मन से त्यागने वाले}**, विनिवृत्तकामाः सुखदुःखसंज्ञैः** {सांसारिक} **कामनाओं से विशेषतः निवृत्त** {और} **सुख-दुःख नामक द्वन्द्वैः विमुक्ताः अमूढाः** **द्वन्द्वों से विशेष मुक्त, मोह माया से सर्वथा रहित,** {रूहानियत भरे, सदा शांत} **तत् अव्ययं पदं गच्छन्ति** **उस अविनाशी पदमपद** {के अव्यक्त और तुरीया परंब्रह्मलोक} **में जाते हैं।**

न तत् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः। यत् गत्वा न निवर्तन्ते तत् धाम परमं मम।। 15/6

तत् न सूर्यः न शशांकः न पावकः **उस** {परंब्रह्म} **को न सूर्य, न चन्द्र** {और} **न अग्नि** {नामक चेतन देव} **भासयते यत् गत्वा न निवर्तन्ते** **प्रकाशित करते हैं। जहाँ जाकर** {यहाँ नरक में दीर्घकाल} **नहीं लौटते, तत् मम परमं धाम** **वह** {परंब्रह्म} **मेरी** {ऊर्जा-निर्मित} **परमधाम है।** {मैं सर्वव्यापी नहीं।}

मम एव अंशः जीवलोके जीवभूतः सनातनः। मनःषष्ठानि इन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। 15/7

जीवलोके जीवभूतः मम एव **सृष्टि में** {नं. वार} **प्राणियों वाला मेरा ही** {कल्पपूर्व का ज्ञान-योगनिर्मित}

अज्ञानसंमोहः प्रनष्टः {2-52} | {अंधे धर्मशास्त्रों की सुनी-सुनाई} बेसमझी से हुआ सारा मोह पूर्णतः नष्ट हुआ?
अर्जुन उवाचः-नष्टो मोहः स्मृतिः लब्धा त्वत्प्रसादात् मया अच्युत। स्थितः अस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। 18/73
अच्युत त्वत्प्रसादात्मोहः नष्टः | हे अच्युत! {अमोघवीर्य मूर्तिमंत} आपकी खुशी से {मेरा} मोह नष्ट हुआ,
स्मृतिः लब्धा गतसंदेहः स्थितः | {आप प्रवेशनीय(11-54) की} स्मृति प्राप्त हुई संदेहरहित होकर स्थिर हुआ
अस्मि तव वचनं करिष्ये | हूँ। {परंब्रह्म-ऊर्ध्वमुख से निकली} आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।
संजय उवाचः-इति अहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः। संवादं इमं अश्रौषं अद्भुतं रोमहर्षणं।। 18/74
इत्यहं वासुदेवस्य च पार्थस्य महात्मनः | ऐसे मैंने शिव {ज्योति परमपिता} के और भूपति महात्मा अर्जुन के
अद्भुतं रोमहर्षणं इमं संवादं अश्रौषं | अद्भुत, रोमांचित करने वाले इस संवाद को {सूक्ष्म शरीरसे} सुना है।
व्यासप्रसादात् श्रुतवान् एतत् गुह्यं अहं परं। योगं योगेश्वरात् कृष्णात् साक्षात् कथयतः स्वयं।। 18/75
व्यासप्रसादात् एतत् गुह्यं परं | व्यास {जो विशेषतः इसी काम से बैठा है,} की प्रसन्नता से यह रहस्यमय सर्वोत्तम
योगं स्वयं साक्षात् कृष्णात् | योग {मैंने} स्वयं साक्षात् {ज्ञान-योग की प्रकृष्टतम अव्यक्त &} आकर्षणमूर्त
योगेश्वरात् कथयतः श्रुतवान् | योगियों के ईश्वर द्वारा कहते हुए {अपने सूक्ष्मशरीर के कानों से} सुना है।
राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादं इमं अद्भुतं। केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः।। 18/76
राजन् केशवार्जुनयोः इमं | हे {पूंजीवादी} राजा! ब्रह्मा के स्वामी {त्रिनेत्री शिवज्योति+आदम या}
अद्भुतं च पुण्यं संवादं | अर्जुन के ऐसे इस {कभी भी न सुने-सुनाए} आश्चर्यजनक और पवित्र संवाद को

आध्यात्मिक परिवार

- **अहमदाबाद**-382350: बी-84-85, उमंग टेनामेण्ट, बजरंग आश्रम के सामने, सैजपुर-भोगा(गुजरात)☎ (0)9157721633
- **बैंगलूर**-560099: प्लॉट नं.8/2 बी, हेब्बागोडी मैन रोड, पो. बोम्मासन्दरा, अनेकल तालुक (कर्नाटक) ☎ (0)7676872209
- **भेंडरा**-828401: कंचन गली, बोकारो (झारखंड) ☎ (0) 9117255378
- **भोपाल**-462021: हाउस नं.एम.आई.जी.17, सैक्टर-3/सी, साकेत नगर (म.प्र.) ☎ (0) 9303612033
- **चण्डीगढ़**-160047: हाउस नं.634, केशोराम कॉम्पलेक्स, सैक्टर नं. 45 सी, पो. बुड़ैल (पंजाब) ☎ (0) 9357277591
- **चेन्नई**-600063: प्लॉट नं. 22 एण्ड 47, एन.जी.ओ.नगर, श्रीनिवासानगर पो. नं.9, अल्पाकम, जि. कांचीपुरम (तमिलनाडू) ☎(0)9445520108
- **फर्रुखाबाद**-209625: 5/26 ए, सिकत्तरबाग (उ.प्र.) ☎(0) 9335683627, (0) 9721622053
- **गंगटोक**-737102: गवर्मेण्ट कॉलेज वेली (सिक्किम) ☎8768387760
- **गुवाहाटी**-781005: ए बी सी बस स्टॉप, भंगागढ़ के पास (आसाम) ☎(0) 7896334916

आध्यात्मिक परिवार

- **हैदराबाद**-500016: 29/3 आर.टी., प्रकाशनगर, पो. बेगमपेट (तेलंगाना) ☎(0) 9394693379
- **जयपुर**-302012: प्लॉट नं.211, ओमशिव कॉलोनी, झोटवाड़ा (राजस्थान) ☎(0) 7426090422
- **जम्मू**-184144: दयालाचक, हीरानगर, कठुआ (जम्मू एण्ड कश्मीर) ☎9906021605
- **काठमाण्डू**- प्लॉट नं.231, वार्ड नं.11, त्रिपुरेश्वर स्ट्रीट, महानगरपालिका (नेपाल) ☎(0) 9849821978, 014216729
- **खगड़िया**-851204: संजीवनी हेल्थ केअर(बिहार) ☎8986150058
- **लखनऊ**-226016: एस./99, चंद्रमा मार्केट, भूतनाथ मेन मार्केट, पो. इंदिरानगर (उ.प्र.) ☎(0) 9369439863
- **मुंबई**-401203: प्लॉट नं.96 बी, 'सरोवर', डिसिल्वा नगर, नालासोपारा (वेस्ट), पो.सोपारा, तहसील -वसई, जिला-थाना (महाराष्ट्र) ☎(0) 8554935822
- **सोनीपत**-131001: चावला कॉलोनी, मुरथाल अड्डा (हरियाणा) ☎(0)7876244024

Visit us at:- (i) WWW.PBKS.INFO
(ii) WWW.ADHYATMIK-VIDYALAYA.COM
(iii) YouTube-ADHYATMIK-VIDYALAYA
E-mail:- a1spiritual1@gmail.com; a11spiritual1@gmail.com
(91)

श्रीभगवानुवाचः-त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा। सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च इति तां शृणु।। 17/2
देहिनां स्वभावजा सा श्रद्धा सात्त्विकी राजसी | देहधारियों के स्वभाव से पैदा वह श्रद्धा सात्त्विकी, राजसी
च तामसी इति त्रिविधैव भवति तां च शृणु | और तामसी- ऐसे 3 प्रकार की ही होती है, उसे और सुन।
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत। श्रद्धामयः अयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।। 17/3
भारत सर्वस्य श्रद्धा | हे भरतवंशी अर्जुन! सबका श्रद्धा-विश्वास {पु. संगमयुगी शूटिंग में भी}
सत्त्वानुरूपा भवति अयं पुरुषः यः | प्राणी {स्वभाव के} अनुरूप होता है। यह आत्मा जो {पूर्व जन्मानुसार}
श्रद्धामयः यच्छ्रद्धः स सः एव | श्रद्धायुक्त होता है, जैसी श्रद्धा{-विश्वास} है, वह वैसा ही {बनता} है।
यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः। प्रेतान् भूतगणान् च अन्ये यजन्ते तामसा जनाः।। 17/4
सात्त्विकाः देवान् राजसाः | सत्वगुणी लोग {सतयुगी} देवताओं को, {द्वैतवादी द्वापुर के} राजसी लोग
यक्षरक्षांसि अन्ये तामसा जनाः | {त्रेता-द्वापर के} यक्ष-राक्षसों को {और} दूसरे {कलाहीन} तामसी लोग
प्रेतान् च भूतगणान् यजन्ते | {तान्त्रिकों सहित घोरकर्मी-सूक्ष्मशरीरी} भूत-प्रेतों के समुदाय को पूजते हैं।
अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः। दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः।। 17/5
कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्रामं अचेतसः। मां चैव अन्तःशरीरस्थं तान् विद्धि आसुरनिश्चयान्।। 17/6
ये जनाः अशास्त्रविहितं घोरं | जो लोग गीता-शास्त्र संविधानरहित घोर {शारीरिक कष्टदायी}
तपः तप्यन्ते दंभाहंकारसंयुक्ताः | तप करते हैं, {वे विंध्य-जैसे ऊँचाई के} घमण्ड & अहंकारयुक्त,

कामभोगेषु प्रसक्ताः अशुचौ नरके पतन्ति | कामभोग में आसक्त हुए लोग गन्दे रौरवनरक में गिरते हैं।
आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः। यजन्ते नामयज्ञैः ते दम्भेन अविधिपूर्वकं।। 16/17
ते आत्मसंभाविताः धनमानमदान्विताः | वे अपनी प्रशंसा में फूले हुए, धन और मान-शान के नशे में चूर,
स्तब्धा नामयज्ञैः दम्भेन | हठधर्मी, {स्वाहा-2 के दिखावटी} नाममात्र के यज्ञों से घमण्डपूर्वक
अविधिपूर्वकं यजन्ते | सच्चीगीता-संविधान के प्रतिकूल {झूठी} यज्ञ-सेवाएँ करते हैं।
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः। मां आत्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तः अभ्यसूयकाः।। 16/18
अहंकारं बलं दर्पं कामञ्च क्रोधं संश्रिताः | {वे} अहंकार, बल, घमण्ड, काम और क्रोध के सदा आश्रयी
आत्मपरदेहेषु मां प्रद्विषन्तः अभ्यसूयकाः | अपने वा दूसरे की देह में मुझ {योग-ऊर्जा} के विद्वेषी {&} निंदक हैं।
तान् अहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्। क्षिपामि अजस्रं अशुभान् आसुरीषु एव योनिषु।। 16/19
तान् द्विषतः क्रूरान्नराधमान् अशुभानहं | उन द्वेष करने वाले क्रूर, मनुष्यों में सबसे नीच पापियों को मैं
संसारेष्वजस्रं आसुरीषु योनिष्वेव क्षिपामि | संसारचक्र में सदाकाल आसुरी योनियों में ही फेंकता हूँ।
आसुरीं योनिं आपन्नाः मूढा जन्मनि जन्मनि। मां अप्राप्य एव कौन्तेय ततो यान्ति अधमां गतिं।। 16/20
कौन्तेय जन्मनि-2 आसुरीं योनिमापन्नाः | हे कुन्ती-पुत्र! जन्म-2 आसुरी योनि को प्राप्त हुए मूर्खलोग
मूढा मामप्राप्य ततः अधमां गतिमेव यान्ति | मुझको कभी भी न पाकर, वहाँ {नरक} में अधम गति ही पाते हैं।
त्रिविधं नरकस्य इदं द्वारं नाशनं आत्मनः। कामः क्रोधः तथा लोभः तस्मात् एतत् त्रयं त्यजेत्।। 16/21

कामरागबलान्विताः अचेतसः शरीरस्थं | कामना, आसक्ति व बाहुबल से भरे बेसमझ लोग शरीरस्थ
भूतग्रामं चान्तः शरीरस्थं मामेव | पंचभूत-समूह और सूक्ष्म देह में स्थित मुझ {योगऊर्जा} को भी
कर्शयन्तः तानासुरनिश्चयान् विद्धि | कष्ट देते हैं। {तू} उनको {कलियुगी} आसुरी निश्चय वाला समझ।
आहारः तु अपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः। यज्ञः तपः तथा दानं तेषां भेदं इमं शृणु।। 17/7
सर्वस्य प्रियः आहारः अपि त्रिविधः | सब {मनुष्यों} का प्रिय भोजन भी {सत्व, रज & तामसी} 3 प्रकार का
भवति यज्ञः तपः तथा दानं | होताहै। यज्ञ{सेवा, आत्मस्मृति का} तप तथा {तन, धनादि के} दान
तु तेषां इमं भेदं शृणु | और उनके इस {नीचे बताए गए अनेक प्रकार के} भेदों को {भी} सुन।
आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः। रस्याः स्निग्धाः स्थिराः हृद्याः आहाराः सात्त्विकप्रियाः।। 17/8
आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीति | आयु, बुद्धि, बल, स्वास्थ्य, सुख, {धर्मानुकूल इन्द्रियों के} प्रेमभाव
विवर्धनाः हृद्याः स्निग्धाः रस्याः | विशेष को बढ़ाने वाले, {हृदय को} रूचिकर, {आँतों के रक्षक} चिकने, रसीले,
स्थिरा आहाराः सात्त्विकप्रियाः | स्थिर रहने वाले भोजन सात्विक {देव-}आत्माओं को {अधिक} प्रिय हैं।
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः। आहारा राजसस्य इष्टाः दुःखशोकामयप्रदाः।। 17/9
कट्वम्ललवणात्युष्ण विदाहिनः | कड़ुवे, खट्टे, नमकीन, अति गरम, अति दाहयुक्त, {ऐसे ही उत्तेजक}
तीक्ष्ण रूक्ष आहाराः राजसस्य | तीखे, रूखे आहार {द्वापरयुग से वासना वर्धक} रजोगुणी लोगों के
इष्टाः दुःखशोकामयप्रदाः | प्रिय हैं {और वे सभी आहार} दुःख, शोक और रोग पैदा करते हैं।

काम: क्रोधस्तथा लोभः इदमात्मनः नाशनं | काम, क्रोध वा लोभ- ये आत्मा के नाशक
नरकस्य त्रिविधं द्वारं तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् | नारकीय त्रिविध द्वार हैं; अतः ये तीनों त्याज्य हैं।
एतैः विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैः त्रिभिः नरः। आचरति आत्मनः श्रेयः ततः याति परां गतिं।। 16/22
कौन्तेय एतैस्त्रिभिः तमोद्वारैर्विमुक्तः नरः | हे कुन्ती-पुत्र! इन 3 अन्धकार के द्वारों से विमुक्त नर
आत्मनः श्रेयः आचरति ततस्परां गतिं याति | आत्मकल्याणार्थ कर्म करता है, जिससे परमगति पाता है।
यः शास्त्रविधिं उत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिं अवाप्नोति न सुखं न परां गतिं।। 16/23
यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य कामकारतः वर्तते स | जो {पुरुष} गीताविधान को छोड़ मनमतप्रमाण चलता है, वह
न सिद्धिं न सुखं न परां गतिमवाप्नोति | न सफलता को, न सुख को, न परमगति को पाताहै।
तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुं इह अर्हसि।। 16/24
तस्मात्ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ शास्त्रं प्रमाणं | इससे तुझे कार्याकार्य का फैसला करने में सच्चीगीता के प्रमाण को
ज्ञात्वा इह शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुं अर्हसि | जानकर यहाँ सर्वशास्त्र-शिरोमणि संविधान में कहा कर्म ही योग्य है।
अर्जुन उवाचः-ये शास्त्रविधिं उत्सृज्य यजन्ते श्रद्धया अन्विताः। तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वं आहो रजः तमः।। 17/1
कृष्ण तु ये श्रद्धया अन्विताः | हे आकर्षणमूर्त शिवबाबा! किंतु जो श्रद्धा से भरे {मन या परमत पर}
शास्त्रविधिं उत्सृज्य यजन्ते तेषां | गीता-संविधान को छोड़कर {बेसमझी पूर्वक} यज्ञसेवा करते हैं, उनकी
निष्ठा सत्त्वमाहो रजः तमः का | श्रद्धा सात्विक, राजसी या तामसी- कैसी {शूटिंग वाली} होती है?

प्रियकृत्तमः न च भुवि मे | प्रिय कर्म करने वाला नहीं है और पृथ्वी भर में {जो 1 जगत्पिता महादेव की मूर्ति है}, मुझे
तस्मादन्यः प्रियतरः न भविता | उसके अलावा {कभी} कोई दूसरा {व्यक्ति} अधिक प्रिय {न हुआ है,} न होगा।
अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादं आवयोः। ज्ञानयज्ञेन तेन अहं इष्टः स्यां इति मे मतिः।। 18/70
य आवयोः इमं धर्म्यं संवादं | जो {मनुष्य} हम दोनों {शिव+अर्जुन} के इस धारणायोग्य वार्तालाप का
अध्येष्यते तेन ज्ञानयज्ञेन | अध्ययन करेगा, उस महारुद्र के ज्ञानयज्ञ {की श्रेष्ठतम मनसा+वाचा सेवा} द्वारा
अहं इष्टः स्यां इति मे मतिः | मैं {उस नं. वार बनी अष्टमूर्ति-संघ का} प्रिय बनूँगा, ऐसी मेरी मान्यता है।
श्रद्धावान् अनसूयश्च शृणुयात् अपि यो नरः। सः अपि मुक्तः शुभान् लोकान् प्राप्नुयात् पुण्यकर्मणां।। 18/71
यः श्रद्धावान् चानसूयः नरोऽपि | जो श्रद्धावान ईर्ष्यारहित मनुष्य {समूचे वार्तालाप सहित ज्ञान को} केवल
शृणुयात्सोऽपि मुक्तः पुण्यकर्मणां | सुन लेता है, वह भी {दुःखों से सर्वथा} मुक्त हुआ {श्रेष्ठतम प्रजावर्ग का} पुण्यकर्मी
शुभान् लोकान् प्राप्नुयात् | {नौ नाथ/नारायणों के बीजों/बापों} के शुभ {क्षीरसागरीय} लोकों को पा लेता है।
{मेरे पंचम ऊर्ध्वमुखी ब्रह्मा-मुख से दो शब्द भी सुनने वाला स्वर्गीय (प्रजापद) में अवश्य आएगा। (मु.ता.2.3.68 पृ.3 आदि)} क्योंकि निराकार अगर्भा होने से त्रिकालदर्शी, अखूट ज्ञान के भंडारी, सदाशिवज्योति को अपना मुख नहीं है।
कच्चित् एतत् श्रुतं पार्थ त्वया एकाग्रेण चेतसा। कच्चित् अज्ञानसम्मोहः प्रनष्टः ते धनञ्जय।। 18/72
पार्थ कच्चित् त्वया एकाग्रेण चेतसा | हे पृथ्वीपति! {नर अर्जुन/आदम(आदिदेवादीश्वर)!} क्या तूने एकाग्र चित्त से
एतत् श्रुतं धनंजय कच्चित्ते | यह {सच्चीगीता एडवांस ज्ञान} सुना? हे ज्ञानधनजेता! क्या तेरा

संस्मृत्य-2 मुहुर्मुहुः हृष्यामि | बार-2 याद करके {मैं अभी पु.संगम में & स्वर्गीय यादों में} पुनः पुनः हर्षित हो रहा हूँ।
तत् च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपं अत्यद्भुतं हरेः। विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः।। 18/77
च राजन् हरेः तत् | और हे {नोटों से वोटों के} राजा! शिवबाबा के उस {संसाररूप अश्वत्थ वृक्ष के}
अत्यद्भुतं रूपं संस्मृत्य-2 | अति आश्चर्यजनक {विराट्} रूप को {सच्चीगीता द्वारा} बार-2 याद करके
मे महान् विस्मयश्च पुनः-2 हृष्यामि | मुझको {ये अजूबा देख} महान विस्मय होता है और {मैं} बार-2 हर्षित हो रहा हूँ।
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीः विजयो भूतिः ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।। 18/78
यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र | जहाँ योगियों के ईश्वर आकर्षणमूर्त {शिवबाबा} हों, जहाँ {साकार सृष्टि-बीज/बाप}
धनुर्धरः पार्थो | {"शंकर चाप जहाज, जेहि चढ़ि उतरहिं पार नर" वाले} धनुर्धर बाबा विश्वनाथ हों,
तत्र श्रीः विजयः भूतिः | वहाँ श्रेष्ठतम विश्व-विजय रूप विभूति, {जो किसी भी विधर्मी या विदेशी ने नहीं पाई, वही}
ध्रुवा नीतिर्मम मतिः | {सतयुग-त्रेता की स्वर्गीय} अटल राजनीति {होती है, ऐसी} मेरी मान्यता है।

- बाबा समझाते हैं कि गीता आदि छपती है तो थोड़ी छपवा कर फिर ऐसे ढंग से बनानी चाहिए जो नए-2 प्वॉइण्ट ऐड कर सको। वो गीता तो पूरी फिनिश की हुई है। यह गीता तो पूरी नहीं होती हैं। जहाँ तक जीना है, अन्त तक तुमको पढ़ना है। प्वॉइण्ट्स निकलती रहेंगी, ऐड होती जाएगी। ज्ञान-यज्ञ भी अन्त तक चलना है। (मु.ता. 4.10.73 पृ.2 मध्य)

मत्प्रसादात् सर्वदुर्गाणि तरिष्यसि | मेरी प्रसन्नता से {तन, मन, धनादि के} सब विघ्न रूप दुर्गों को पार करेगा
अथ चेत् मच्चित्तः त्वं अहंकारात् | और यदि मेरे में {हठपूर्वक जबरियन} चित्तमग्न हुआ तू अहंकार के कारण
न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि | {मेरी बात} नहीं सुनेगा {तो तेरा ऊँचा पद} सर्वथा नष्ट हो जाएगा।
यत् अहङ्कारं आश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे। मिथ्या एषः व्यवसायः ते प्रकृतिः त्वां नियोक्ष्यति।। 18/59
यत् अहंकारं आश्रित्य न योत्स्य | जो {वीरता के देह-}अहंकार का आश्रय लेकर 'युद्ध नहीं करूँगा'-
इति मन्यसे ते एषः व्यवसायः मिथ्या | ऐसा {ही} मानेगा, {तो} तेरा यह सोचना {गीता 3-27; 18-43 अनुसार} व्यर्थ है;
प्रकृतिः त्वां नियोक्ष्यति | {क्योंकि} तेरी {आत्मगत क्षत्रिय} प्रकृति तुझको {युद्ध में अवश्य ही} लगा देगी।
स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा। कर्तुं न इच्छसि यत् मोहात् करिष्यसि अवशः अपि तत्।। 18/60
कौन्तेय स्वभावजेन स्वेन कर्मणा | हे कुन्ती-पुत्र! {पु. संगम की शूटिंग में} स्वभाव से पैदा अपने कर्म से
निबद्धः यत् मोहात् कर्तुं न इच्छसि | बँधा हुआ यदि {मोह की} मूर्खता से {युद्ध} करने का इच्छुक नहीं,
तदपि अवशः करिष्यसि {गी. 4-13} | तो भी {'चातुर्वण्यं मया सृष्टं' आत्म-रिकॉर्ड के} बरबस हुआ {अवश्य} करेगा।
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। 18/61
अर्जुन सर्वभूतानां हृद्देशे ईश्वरः | हे अर्जुन! सब प्राणियों के {नं. वार} हृदय में ईश्वर {का समान रूप विश्वनाथ}
तिष्ठति यंत्रारूढानि | {योग-ऊर्जा से} बैठा है। {सृष्टिचक्र के} चाक पर चढ़ाए हुए {पात्ररूप मूर्ति-जैसे}
सर्वभूतानि मायया भ्रामयन् | सब प्राणियों को {योग-}माया द्वारा {कल्प-2} भ्रमित किया जा रहा है।

प्रतिजाने मे प्रियः असि | प्रतिज्ञा करता हूँ {कि तू} मुझे प्रिय है; {क्योंकि तू आदम ही सृष्टिबीज है।}
सर्वधर्मान् परित्यज्य मां एकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। 18/66
सर्वधर्मान् परित्यज्य मां | सब {हिन्दू-मुस्लिमादि} धर्मों को पूरा ही त्यागकर मुझ {अल्लाह अव्वलदीन}
एकं शरणं व्रज अहं त्वा सर्व | एक {शिवबाबा} की शरण में {आ} जा। मैं तुझे {धर्मरक्षार्थ हिंसा की हिस्ट्री के पूर्वकृत} सब
पापेभ्यः मोक्षयिष्यामि मा शुचः | पापों से मुक्त कर दूँगा। {तू} शोक मत कर {कि धर्मी-विधर्मी-अधर्मी सब मरेंगे}।
इदं ते न अतपस्काय न अभक्ताय कदाचन। न च अशुश्रूषवे वाच्यं न च मां यः अभ्यसूयति।। 18/67
अतपस्काय अभक्ताय | {जिस व्यक्ति में आत्मस्थिति का} तप न हो, {जो} अश्रद्धालु हो,
अशुश्रूषवे च यः मां | {यज्ञ}-सेवाभाव न हो और जो मुझ {परमपिता सदाशिव समान जगत्पिता} से
अभ्यसूयति इदं ते कदाचन न वाच्यं | {नास्तिक-जैसा} ईर्ष्यालु हो, {उसे} यह {ज्ञान} तू कभी भी मत बताना।
य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेषु अभिधास्यति। भक्तिं मयि परां कृत्वा मां एव एष्यति असंशयः।। 18/68
यः इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेषु | जो इस परम रहस्यमय {ज्ञान को} मेरे {प्रति भावभरे} श्रद्धालुओं में
अभिधास्यति मयि परां भक्तिं | सुनाएगा, {वह} मेरी परमश्रेष्ठ {द्वापुर-आदि में सोमनाथ मं. की अव्यभिचारी} भक्ति
कृत्वा असंशयः मामेवैष्यति | करके बिना संशय के मुझ {1 शिवबाबा को} ही प्राप्त होगा। {गीता 7-23}
न च तस्मात् मनुष्येषु कश्चित् मे प्रियकृत्तमः। भविता न च मे तस्मात् अन्यः प्रियतरो भुवि।। 18/69
मनुष्येषु कश्चिन्मे तस्मात् | मनुष्यों में कोई {भी} मेरा उस {साकार रथी सो निराकार शिवज्योति समान} से

त्रिविधं तपः सात्त्विकं परिचक्षते | 3 तरह का {सनातनी देवात्माओं का} तप सात्विक कहलाता है।
सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्। क्रियते तत् इह प्रोक्तं राजसं चलं अध्रुवं ।। 17/18
सत्कारमानपूजार्थं च एव दंभेन | सत्कार-सम्मान एवं पूजा कराने लिए तथा अभिमान से {दिखावामात्र}
यत् चलं अध्रुवं तपः क्रियते | जो अल्पकालीन अस्थायी {भाग-दौड़ादि का दैहिक} तप किया जाता है,
तत् इह राजसं प्रोक्तं | वह यहाँ {शूटिंगकाल में भी कर्मेन्द्रियों का द्वापरयुगी} राजसी कहा गया है।
मूढग्राहेण आत्मनः यत् पीडया क्रियते तपः। परस्य उत्सादनार्थं वा तत् तामसं उदाहृतं।। 17/19
यत् तपः मूढग्राहेण आत्मनः | जो {शारीरिक} तप मूर्खता के हठ से अपनी {पराई देह की इन्द्रियों को}
पीडया वा परस्य उत्सादनार्थं | पीड़ा देने लिए अथवा अन्य को हानि देने लिए {ईर्ष्यावश या शत्रुवत्}
क्रियते तत् तामसं उदाहृतं | किया जाए- वह तामसी {तप} {पापी कलियुग में फलदायी} कहा जाता है।
दातव्यं इति यत् दानं दीयते अनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तत् दानं सात्त्विकं स्मृतं।। 17/20
दातव्यं इति यत् दानं | {पुनर्जन्म-मान्यता में} देना ही कर्तव्य है- ऐसे {समझकर} जो दान {बदले में}
अनुपकारिणे देशे च काले | उपकार करने में असमर्थ {दुकालग्रस्त} देश और काल में {जरूरतमंद}
पात्रे दीयते तत् दानं | सत्पात्र को {पु. संगम में भी पुरुषार्थ में सहयोगार्थ} दिया जाता है, वह दान
सात्त्विकं स्मृतं | {आत्मकल्याणार्थ स्वर्गीय सुख में फलदायी} सात्विक माना गया है;
यत् तु प्रत्युपकारार्थं फलं उद्दिश्य वा पुनः। दीयते च परिक्लिष्टं तत् दानं राजसं स्मृतं।। 17/21

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्। उच्छिष्टं अपि च अमेध्यं भोजनं तामसप्रियं।। 17/10
यातयामं गतरसं पर्युषितं अमेध्यं | नष्टकालीन आहार, {रसना के लिए} स्वादहीन, बासी, अपवित्र, {अचार
पूति च भोजनं उच्छिष्टं तामसप्रियं | जैसा} सड़ा हुआ और जूठा भोजन तामसी {कलियुगी} लोगों को प्रिय है।
अफलाकाङ्क्षिभिः यज्ञः विधिदृष्टो य इज्यते। यष्टव्यं एव इति मनः समाधाय स सात्त्विकः।। 17/11
अफलाकांक्षिभिः विधिदृष्टः | {किसी} फल की कामना रहित के द्वारा, गीता-विधान द्वारा समझा हुआ
यष्टव्यं एव इति मनः समाधाय | {और} यज्ञसेवा करना ही है- ऐसे मन का {श्रीमत से} समाधान करके
य यज्ञः इज्यते स सात्त्विकः | जो यज्ञसेवा की जाती है, वह {सदासत बाबा की मतप्रमाण} सात्विक सेवा है।
अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थं अपि चैव यत्। इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसं।। 17/12
तु भरतश्रेष्ठ फलं अभिसंधाय | किन्तु, हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन! {इसी जीवन में ही} फल का लक्ष्य लेकर,
च एव दम्भार्थं अपि यत् | उसी तरह अभिमानार्थ भी जो {यज्ञसेवा अपना बढ़प्पन दिखाने के लिए}
इज्यते तं यज्ञं राजसं विद्धि | की जाती है, उस यज्ञसेवा को {द्वैतवादी दैत्यों की} रजोगुणी सेवा जान।
विधिहीनं असृष्टान्नं मन्त्रहीनं अदक्षिणं। श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते।। 17/13
विधिहीनं असृष्टान्नं | गीता-संविधानरहित, ब्रह्माभोजन से रहित, {मन्मनाभव के महान}
मन्त्रहीनं अदक्षिणं श्रद्धाविरहितं | मंत्र से रहित, {रुद्रयज्ञ के निमित्तों प्रति} सम्मानहीन {तथा} श्रद्धाविहीन
यज्ञं तामसं परिचक्षते | यज्ञ-{सेवाकार्य को खास पापी कलियुग में} तामसी कहा जाता है।

तु प्रत्युपकारार्थं वा | किंतु बदले में उपकार की भावना से {इसी जन्म में मिले– ऐसे} अथवा
पुनः फलं उद्दिश्य यत् दानं | फिर से फल की आशा लेकर जो दान {देहभान के दैत्यभाव से}
परिक्लिष्टं दीयते तत् राजसं स्मृतं | कष्टपूर्वक दिया जाता है, वह {स्वार्थभाव का} राजसी माना गया है।

अदेशकाले यत् दानं अपात्रेभ्यश्च दीयते। असत्कृतं अवज्ञातं तत् तामसं उदाहृतं।। 17/22

यत् दानं अदेशकाले च अपात्रेभ्यः | जो दान अयोग्य देश-काल में और {नास्तिकों-जैसे} अयोग्य पात्र को
असत्कृतं अवज्ञातं दीयते | असम्मानपूर्वक {और} अवज्ञापूर्वक {यहाँ जबरियन} दिया जाता है,
तत् तामसं उदाहृतं | वह तामसी {कलियुगी, नारकीय शूटिंगकारी दान} कहा गया है।

ॐ तत् सत् इति निर्देशो ब्रह्मणः त्रिविधः स्मृतः। ब्राह्मणाः तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।। 17/23

ॐ तत्सदिति त्रिविधः ब्रह्मणः निर्देशः | 'ॐ तत् सत्'- ऐसे 3 प्रकार का {4 मुखों से संगठित} ब्रह्मा का उपदेश
स्मृतः तेन पुरा ब्राह्मणाः च | स्मरण किया जाता है, उससे पूर्वकल्प में ब्रह्मा का ''ॐ'' {मैं आत्मा} &
वेदाः च | {'तत्'=परमात्मार्थ} वेदों का और {'सत्'=सत्कर्मरूप अलौकिक}
यज्ञाः विहिताः | यज्ञ-सेवाओं का, {'ॐ+तत्+सत्'}- ऐसा विधान किया गया था।

तस्मात् ओम् इति उदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः। प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनां।। 17/24

तस्मात् विधानोक्ताः ब्रह्म | इसलिए {पुरुषोत्तम संगमयुग में गीता-}संविधानोक्त चौमुखी ब्रह्मा का
वादिनां यज्ञदानतपःक्रियाः | उपदेश बोलने वालों की यज्ञ-दान-तप {सम्बंधी सभी बोल-2 की} क्रियाएँ

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचं आर्जवं। ब्रह्मचर्यं अहिंसा च शारीरं तप उच्यते।। 17/14

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचं | {संसार में गुरुता प्राप्त} देव, द्विज, गुरु, विशेष ज्ञानी का पूजन, शुद्धता,
आर्जवं ब्रह्मचर्यं च अहिंसा | सरलता, {मन-वचन & कर्म से भी} ब्रह्मचर्य और हिंसा न करना-
शारीरं तपः उच्यते | {ऐसा} शारीरिक तप कहा जाता है। {वह भी मन-बुद्धि से आत्मा की एकाग्रता का तप नहीं।}

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्। स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।। 17/15

अनुद्वेगकरं सत्यं वाक्यं यत् प्रिय | {औरों को} उत्तेजित न करने वाली सत्य बात {कहना}, जो प्रिय
च हितं च एव स्वाध्यायाभ्यसनं | और हितकारी हो। ऐसे ही आत्म-अध्ययन का {नित्य प्रति} अभ्यास,
वाङ्मयं तप उच्यते | {वाग् देवी सरस्वती माता की प्रसन्नता के लिए} वाणी का तप कहा जाता है।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनं आत्मविनिग्रहः। भावसंशुद्धिः इति एतत् तपः मानसं उच्यते।। 17/16

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनं | मन की प्रसन्नता, {आत्मिक} शांतभाव, {मन के संकल्पों से भी सदा} मौन,
आत्मविनिग्रहः भावसंशुद्धिः | आत्मा का विशेष संयम, {ज्ञानयुक्त} मनोभावों={संकल्पों} की विशेष शुद्धि-
इति एतत् मानसं तपः उच्यते | यह इतना {भ्रूमध्य में स्थित आत्मा की स्मृति का} मानसिक तप कहा है।

श्रद्धया परया तप्तं तपः तत् त्रिविधं नरैः। अफलाकाङ्क्षिभिः युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते।। 17/17

अफलाकांक्षिभिः युक्तैः नरैः | {किसी} फल की आकांक्षा से रहित, {शिवबाबा से} योगयुक्त लोगों द्वारा
परया श्रद्धया तप्तं तत् | परमश्रद्धापूर्वक किया गया वह {मन-वचन-कर्म से किया गया} -

परां मद्भक्तिं लभते | परमश्रेष्ठ मेरी {सदा अव्यभिचारी बनी} श्रद्धा-भक्तिभाव का लाभ लेता है।

भक्त्या मां अभिजानाति यावान् यः च अस्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरं।। 18/55

ततः भक्त्या यः च | तत्पश्चात् श्रद्धा भक्ति-भावना से {मैं} जो {1 मात्र विश्व-नवनिर्माणकर्ता हूँ} और
यावान् अस्मि मां तत्त्वतः | जैसा हूँ, {वैसा ही अनुभव से} मुझे तत्त्वपूर्वक {गीता 13-1 से 18 के अनुसार}
अभिजानाति मां तत्त्वतः | भली-भाँति जान जाता है {और} मुझ {शिवबाबा} को {इसी रूप से} तत्त्वतः
ज्ञात्वा तदनन्तरं विशते | जानकर तत्पश्चात् {सविशेष रुद्रमाला के परंब्रह्मलोक में} प्रवेश पाता है।

सर्वकर्माणि अपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः। मत्प्रसादात् अवाप्नोति शाश्वतं पदं अव्ययं।। 18/56

सदा मद्व्यपाश्रयः सर्वकर्माणि | सदा मेरा ही विशेष आश्रय लेने वाला, {दसों इन्द्रियों के} सब कर्मों को
कुर्वाणः अपि मत्प्रसादात् शाश्वतं | करता हुआ भी, मेरी {साकारी सो निराकारी की} प्रसन्नता से चिरकालीन
अव्ययं पदं अवाप्नोति | अविनाशी {क्षीरशायी वैकुण्ठ के विष्णुरूप} परमपद को पाता है।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः। बुद्धियोगं उपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।। 18/57

सर्वकर्माणि चेतसा मयि संन्यस्य | सब {ज्ञान& कर्मेन्द्रियों के} कर्मों को मन-बुद्धिपूर्वक मुझमें समर्पण कर,
मत्परः बुद्धियोगं सततं | {एकमात्र} मेरे परायण हुआ, बुद्धियोग के {वैराग सहित} निरन्तर {अभ्यासपूर्वक}
उपाश्रित्य मच्चित्तः भव | {मेरा ही} आश्रय लेकर मेरे {साकारी सो निराकारी रूप} में चित्तमग्न... हो जा।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात् तरिष्यसि। अथ चेत् त्वं अहङ्कारात् न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि।। 18/58

तं एव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत् प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतं।। 18/62

भारत तमेव सर्वभावेन | हे भरतपुत्र! उस {जगत्पिता} को ही {पूरा पहचानकर} समग्र भाव से
शरणं गच्छ तत्प्रसादात्परां | शरण में चला जा। उसकी प्रसन्नता से {सत्य सनातन धर्म की अविनाशी} परम
शान्तिं शाश्वतं स्थानं प्राप्स्यसि | शान्ति & चिरकालीन {विष्णु के वैकुण्ठ रूप} परमपद को प्राप्त करेगा।

इति ते ज्ञानं आख्यातं गुह्यात् गुह्यतरं मया। विमृश्य एतत् अशेषेण यथा इच्छसि तथा कुरु।। 18/63

इति गुह्यात् गुह्यतरं ज्ञानं | ऐसे गुप्त {बेसिक ब्रह्मा-ज्ञान} से भी गुप्ततम {परंब्रह्मा का एडवांस सच्चा} गीताज्ञान
मया ते आख्यातं एतत् अशेषेण | मैंने तुझे कहा है। इस पर पूरी तरह {गी. 4-34 के 'परिप्रश्नेन सेवया;' अध्ययनरत हुआ}
विमृश्य यथा इच्छसि तथा कुरु | विचार करके जैसा चाहे वैसा कर। {तू अपना बंधु वा शत्रु स्वयं है।} (गी.6-5)

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः। इष्टः असि मे दृढं इति ततो वक्ष्यामि ते हितं।। 18/64

भूयः सर्वगुह्यतमं परमं मे | फिर से सबसे अधिक रहस्यमय {और धर्मपिताओं से भी} परमश्रेष्ठ {गीता में} मेरे
वचः शृणु मे दृढमिष्टोऽसि | {सर्वमान्य} वचनों को सुन; {क्योंकि तू} मेरा अत्यन्त प्रिय {चोटी का ब्राह्मण} है;
इति ते हितं वक्ष्यामि | इसलिए तेरी भलाई की बात बताता हूँ; {क्योंकि राजयोग से विश्वविजयी तू ही होगा।}

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मां एव एष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियः असि मे।। 18/65

मन्मना भव मद्भक्तः मद्याजी | {हे अर्जुन! तू} मेरे में मन लगा। मेरा भक्त है। मेरे प्रति यज्ञसेवा कर।
मां नमस्कुरु मामेवैष्यसि ते सत्यं | मुझे नमन कर। {इससे तू} मुझे अवश्य पाएगा। {मैं} तेरे से सत्य

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं स्वभावजं | खेती, गौरक्षा, व्यापार आदि {भी शूटिंग में अपने ही} स्वभाव से उत्पन्न हुए
वैश्यकर्म परिचर्यात्मकं | वैश्य-कर्म हैं। {चौतरफा चारों वर्णों की} नौकरी-चाकरी करना
शूद्रस्य अपि स्वभावजं कर्म | शूद्रों के स्वभाव से पैदा हुए कर्म हैं। {जो पूर्वजन्मों से भी जुड़े हैं।}
स्वे स्वे कर्मणि अभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तत् शृणु।। 18/45
स्वे स्वे कर्मणि अभिरतः नरः | {फिर भी} अपने-2 कर्मों से {पु. संगमयुगी शूटिंग में} सदा लगा हुआ मनुष्य
संसिद्धिं लभते स्वकर्मनिरतः | सम्पूर्णसिद्धि {रूप वैकुंठ} पाता है। स्वकर्म में लगा हुआ {ब्रह्मावत्स}
यथा सिद्धिं विन्दति तत् शृणु | जैसे {विष्णुलोकीय अतीन्द्रिय सुख की} सिद्धि को पाता है, उसे सुन।
यतः प्रवृत्तिः भूतानां येन सर्वं इदं ततं। स्वकर्मणा तं अभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।। 18/46
यतः भूतानां प्रवृत्तिः | जहाँ {पु. संगम से} प्राणियों की {उत्पत्ति, चेष्टा आदि} क्रिया {होती है और}
येन इदं सर्वं | जिस {यज्ञपिता} से यह सारा {सृष्टिवृक्ष, सदा शिव ज्योतिसमान लिंग बीज से}
ततं तं स्वकर्मणा अभ्यर्च्य | विस्तृत हुआ है, उसकी अपने कर्म से अच्छे से अर्चना{-उपासना} कर
मानवः सिद्धिं विन्दति | मनुष्य {जीवित रहते हुए भी जीवन्मुक्ति रूप वैकुण्ठ की} सिद्धि को पाता है।
श्रेयान् स्वधर्मः विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्। स्वभावनियतं कर्म कुर्वन् न आप्नोति किल्बिषं।। 18/47
परधर्मात् विगुणः स्वधर्मः स्वनुष्ठितात् | जड़ प्रकृति के विरुद्ध गुण से आत्मधर्म सुख से पालने कारण
श्रेयान् स्वभावनियतं | अधिक श्रेष्ठ है। {कल्प-2 की शूटिंग में अपने} स्वभाव से नियत हुआ

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्या आत्मानं नियम्य च। शब्दादीन् विषयान् त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।। 18/51
विशुद्धया बुद्ध्या युक्तः | {सच्चीगीता एडवांसज्ञान से} विशेष शुद्ध बुद्धि से {परमात्मा की} याद में मग्न व्यक्ति
धृत्या आत्मानं नियम्य शब्दादीन् | धैर्यपूर्वक {बार-2 अभ्यास द्वारा} अपने मन को वश में करके शब्दादि
विषयान् त्यक्त्वा च रागद्वेषौ व्युदस्य | विषयों को त्यागकर और {आत्मस्मृति से} राग-द्वेष को छोड़कर,
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः। ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।। 18/52
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः | एकान्तप्रिय, अल्पाहारी, {श्रीमत से} मन-वचन-कर्म में मर्यादित,
नित्यं ध्यानयोगपरः | नित्य विचार-सागर-मंथन और परमात्म-योगयुक्त हुआ {ढेरों बने पड़े बंबों से भस्मसात् होने वाली
वैराग्यं समुपाश्रितः | पुरानी, कलियुगी यादवों से निर्मित मूसलों/मिसाइलों की दुनियाँ में} वैराग्य का सम्पूर्ण आश्रय लेने वाला है।
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहं। विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।। 18/53
अहंकारं बलं दर्पं कामं-क्रोधं | {विनाशी देह का} अहंभाव, {बाहु-}बल, घमंड, कामविकार, क्रोध {और}
परिग्रहं विमुच्य निर्ममः | {भविष्य निर्वाह के मोह से बनी} संग्रह-वृत्ति को विशेषतः छोड़कर, ममताहीन,
शान्तः ब्रह्मभूयाय कल्पते | शांतचित्त हुआ {सर्वोत्तम हीरोपार्टधारी के} परमब्रह्मभाव के लिए समर्थ है।
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परां।। 18/54
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति | {सदासंपन्न बने} परमब्रह्मभाव को प्राप्त प्रसन्नचित्त विप्र न शोक करता है,
न कांक्षति सर्वेषु भूतेषु समः | न आकांक्षा करता है। {आत्मस्थिति द्वारा} सब प्राणियों में समान भाव वाला

यज्ञदानतपःकर्म त्याज्यं न | यज्ञ{सेवा}, दान {वा आत्मस्मृति रूप} तपकर्म त्यागने योग्य नहीं हैं।
निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम। त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः।। 18/4
भरतसत्तम तत्र त्यागे मे निश्चयं | हे भरतकुलश्रेष्ठ! उस त्याग के बारे में {विश्व-कल्याणार्थ} मेरा निश्चय
शृणु हि पुरुषव्याघ्र त्यागः | सुन; क्योंकि हे मानवों में {नर} सिंहस्वरूप! {पु. संगम की शूटिंग में} त्याग
त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः | तीन प्रकार का कहा गया है। {सृष्टिवृक्ष के बीज 1 मुखी रुद्राक्ष की}
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यं एव तत्। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणां।। 18/5
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं | यज्ञसेवा, दान, {आत्मस्मृति का} तपकर्म {कभी भी} त्याज्य नहीं,
तत् कार्यं एव यज्ञः दानञ्च | उसे करना ही चाहिए; {क्योंकि रुद्रज्ञान-}यज्ञसेवा, दान और {मानसिक त्याग में}
तपः एव मनीषिणां पावनानि | {आत्म-स्मृति की} तपस्या ही बुद्धिमानों को {सदा} पवित्र बनाते हैं।
एतानि अपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च। कर्तव्यानि इति मे पार्थ निश्चितं मतं उत्तमं।। 18/6
पार्थ तु एतानि कर्माणि अपि | हे पृथ्वीपति! किंतु इन {पु. संगमयुगी अलौकिक} कर्मों को भी
संगं च फलानि त्यक्त्वा | आसक्ति और {कर्म-} *फलों {की इच्छा} को {अर्पणभाव से} त्यागकर
कर्तव्यानि इति मे निश्चितं उत्तमं मतं | करना चाहिए, ऐसा मेरा {सर्वस्व त्याग का} निश्चित, उत्तम मत है।
• सर्विस से यहाँ सुख लेंगे तो वहाँ (स्वर्ग) का सुख कम हो जावेगा। (मु.ता.16.1.67 पृ.3 आदि)
नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो न उपपद्यते। मोहात् तस्य परित्यागः तामसः परिकीर्तितः।। 18/7

'ॐ' इति उदाहृत्य सततं प्रवर्तन्ते | 'ओम्'- ऐसा बोलकर {द्वापर-कलियुग में} सर्वदा आरंभ की जाती हैं।
तत् इति अनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः। दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः।। 17/25
तत् इति | {रुद्र-ज्ञानयज्ञ रूप परमात्मा प्रति} 'तत्' ऐसा {समझ या कभी-2 कहकर}
फलं अनभिसंधाय मोक्षकांक्षिभिः | फल को न चाहते हुए मुक्ति-आकांक्षियों द्वारा {पुरुषोत्तम संगम में तो}
विविधाः यज्ञतपःक्रियाः | {वेद-वर्णित} विविध यज्ञ-सेवाएँ {और आत्मस्मृति के} तप की क्रियाएँ
च दानक्रियाः क्रियन्ते | तथा दान के कार्य {एक शिवबाबा की श्रीमत से मौन होकर ही} किए जाते हैं।
सद्भावे साधुभावे च सत् इति एतत् प्रयुज्यते। प्रशस्ते कर्मणि तथा सत् शब्दः पार्थ युज्यते।। 17/26
सद्भावे च साधुभावे सत् इति | सद्भाव और अच्छाई के अर्थ में {ब्रह्मामुख-वंशियों द्वारा} 'सत्' ऐसा
एतत् प्रयुज्यते तथा पार्थ | यह {शब्द मनसा द्वारा ही} प्रयोग होता है। ऐसे ही हे पृथ्वीराज!
प्रशस्ते कर्मणि सत् शब्दः युज्यते | प्रशंसनीय {यज्ञसेवा} कर्म में 'सत्' शब्द {ही सदा} प्रयोग होता है।
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सत् इति च उच्यते। कर्म चैव तदर्थीयं सत् इति एव अभिधीयते।। 17/27
च यज्ञे तपसि च दाने स्थितिः | तथा यज्ञसेवा में, आत्मस्मृति के तप में & {ज्ञानादिक} दान में स्थिरता
सत् इति उच्यते च एव तदर्थीयं | {सदा} 'सत्' ऐसे कहते हैं। इसी प्रकार {पु. संगम के} उस {यज्ञादि} के लिए
कर्म एव सत् इति अभिधीयते | कर्म भी 'सदासत्'- ऐसे कहते हैं। {नरक की नहीं, पु. संगम की ही बात है।}
अश्रद्धया हुतं दत्तं तपः तप्तं कृतं च यत्। असत् इति उच्यते पार्थ न च तत् प्रेत्य नो इह।। 17/28

तु नियतस्य कर्मणः संन्यासः | परंतु नियत हुए {खान-पान-उत्सृजनादि अनिवार्य} कर्म का परित्याग
न उपपद्यते मोहात् तस्य | उचित नहीं है। मूर्खता से {हठपूर्वक इन्द्रिय-उत्सादनार्थ} उसका (उनका)
परित्यागः तामसः परिकीर्तितः | सर्वथा त्याग {देह और आत्मपीड़ादायी} तामसी त्याग कहलाता है।

दुःखं इति एव यत् कर्म कायक्लेशभयात् त्यजेत्। स कृत्वा राजसं त्यागं न एव त्यागफलं लभेत्।। 18/8

यत् कर्म दुःखं एव इति काय | जो कर्म दुःख रूप ही है ऐसा {समझ} शारीरिक {या मानसिक}
क्लेशभयात् त्यजेत् स राजसं | कष्ट के भय से त्यागता है, वह {स्वार्थ की लालसा वाला} राजसी
त्यागं कृत्वा त्यागफलं एव न लभेत् | त्याग करने के बाद {अनात्मभावी जन} त्याग का फल ही नहीं पाता।

कार्यं इति एव यत् कर्म नियतं क्रियते अर्जुन। सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः।। 18/9

अर्जुन कार्यं एव इति यत् कर्म | हे अर्जुन! {विश्व-कल्याण भाव से} करने योग्य ही है- ऐसे जो कर्म
संगं च फलं त्यक्त्वा नियतं | {व्यक्ति वा वस्तुगत} आसक्ति और फलेच्छा को त्यागकर नियम से
क्रियते स एव सात्त्विकः त्यागः मतः | किया जाता है, वह ही {सतयुगी सुखदायी} सात्विक त्याग माना जाता है।

न द्वेष्टि अकुशलं कर्म कुशले न अनुषज्जते। त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः।। 18/10

त्यागी सत्त्वसमाविष्टः मेधावी | {यज्ञसेवार्थ कर्मफल का} त्यागी, सात्त्विक स्वभाव का, बुद्धिमान्,
छिन्नसंशयः अकुशलं कर्म द्वेष्टि न | {ईश्वर में} संशयहीन {और} कुशलता रहित {अप्रिय} कर्म से द्वेष नहीं
कुशले न अनुषज्जते | {एवं} कुशल-{प्रिय} कर्म में {अनासक्त होने से} अनुराग नहीं रखता;

पार्थ अश्रद्धया हुतं दत्तं तप्तं तपः | हे पृथ्वीराज! अश्रद्धापूर्वक यज्ञसेवा, दान, {देह का} तापदायी तप
च यत् कृतं असत् इति उच्यते | और जो {भी} किया, 'असत्' ऐसे कहा है; {*श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं}
तत् न प्रेत्य च नो इह | {क्योंकि अश्रद्धालु का} वह न मरकर और न इस संसार में {फलदायी है}।

*{गीता में और भी देखें:-12/20; 17/3; 3/31; 6/47; 12/2; 17/17; 17/13; और 18/71}

अर्जुन उवाचः-सन्न्यासस्य महाबाहो तत्त्वं इच्छामि वेदितुं। त्यागस्य च हृषीकेश पृथक् केशिनिषूदन।। 18/1

महाबाहो हृषीकेश | हे {अष्टमूर्तिरूप} महाबाहु शिवबाबा! हे {कामादिक} इन्द्रियों के स्वामी!
केशिनिषूदन संन्यासस्य च | हे केशिहन्ता! {कर्मों के} पूरे त्यागरूप संन्यास का और {समुचित}
त्यागस्य तत्त्वं पृथक् वेदितुं इच्छामि | {तन-धन-सम्बंधादि के} त्याग का तत्त्व अलग-2 जानना चाहता हूँ।

श्रीभगवानुवाचः-काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदुः। सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुः त्यागं विचक्षणाः।। 18/2

कवयः काम्यानां कर्मणां न्यासं | {कुछ} विद्वान {सभी सांसारिक} कामना वाले कर्मों के त्याग को
संन्यासं विदुः विचक्षणाः | संन्यास समझते हैं, {जबकि पु. संगमयुगी} विशेष दृष्टा {स्वर्गीय संगठन हेतु}
सर्वकर्मफलत्यागं त्यागं प्राहुः | {रुद्रयज्ञ-अर्थ लोकालोक के} सभी कर्मफलों के त्याग को त्याग बताते हैं।

त्याज्यं दोषवत् इति एके कर्म प्राहुः मनीषिणः। यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं इति च अपरे।। 18/3

एके मनीषिणः कर्म दोषवत् | कुछेक बुद्धिमान् {नरनिर्मित भ्रष्टेन्द्रिय का नारकीय} कर्म {महा} पाप-जैसा
त्याज्यं इति प्राहुः च अपरे | त्याग करने योग्य है, ऐसे कहते और दूसरों का {मत है कि} {रुद्रज्ञान-}

यत्स्यात्तत् सत्त्वं पृथिव्यां | जो हो, वह प्राणी {या} पदार्थ {इस विस्तार को पाई हुई समूची} पृथ्वी
वा दिवि वा देवेषु नास्ति | या द्युतिलोक वा देवलोक में {भी} नहीं है। {वहाँ भी सत्त्वगुण तो है ही।}

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप। कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैः गुणैः।। 18/41

परंतप ब्राह्मणक्षत्रियविशाञ्च शूद्राणां | हे कामादिक शत्रुतापक! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य & शूद्रों के
कर्माणि स्वभावप्रभवैः गुणैः प्रविभक्तानि | कर्म {*शूटिंग में} आत्मभाव से पैदा हुए गुणों से प्रकृष्टतया बँटे हुए हैं।

* {'चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः';(गीता 4-13)} लेकिन यह कब की बात है? पु.संगमी शूटिंग की।

शमो दमः तपः शौचं क्षान्तिः आर्जवं एव च। ज्ञानं विज्ञानं आस्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजं।। 18/42

शमः दमः तपः शौचं क्षान्तिरार्जवं | मूकत्व, इन्द्रियदमन, {आत्मस्मृति का} तप, शुद्धता, शान्ति, सरलता,
ज्ञानञ्च विज्ञानं एव आस्तिक्यं | {ब्रह्मामुख से सुना} ज्ञान और योग, ऐसे ही आस्तिकता-{ये}
स्वभावजं ब्रह्मकर्म {वो ब्रह्मा कहाँ है?} | आत्मभाव से उत्पन्न ब्रह्मा के कर्म हैं। {कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि 3/14}

शौर्यं तेजो धृतिः दाक्ष्यं युद्धे च अपि अपलायनं। दानं ईश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजं।। 18/43

शौर्यं तेजः धृतिः दाक्ष्यञ्च युद्धे अपि | शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता & {भीषण} युद्ध में भी {विधर्मी कायरों-जैसा}
अपलायनं दानञ्च ईश्वरभावः | न भागना, दान और {गीता के राजयोग से प्राप्त} ईशित्व/शासकीय भाव-
क्षात्रं स्वभावजं कर्म | {ये} क्षत्रियों के {पु. संगमयुगी} स्वभाव से उत्पन्न {गुण} कर्म हैं।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजं। परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्य अपि स्वभावजं।। 18/44

कर्म कुर्वन् किल्बिषं न आप्नोति | कर्म करता हुआ {आत्मस्थिति के कारण} पाप का भागी नहीं बनता।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषं अपि न त्यजेत्। सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेन अग्निः इव आवृताः।। 18/48

कौन्तेय सहजं कर्म सदोषं अपि | हे कुन्ती-पुत्र! {जन्म-2 के संस्कारों से} सहज कर्म दोषयुक्त हो तो भी
न त्यजेत् हि धूमेन अग्निः इव | नहीं त्यागना चहिए; क्योंकि धुएँ से अग्नि की तरह {इस नारकीय संसार के तो}
सर्वारम्भा दोषेण आवृताः | सभी कर्म दोष से ढके हुए हैं। {यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः} (गी.3-9)

{''सभी धंधों में है नुकसान, बिगर अविनाशी ज्ञान-रत्नों के धंधे के।'' (मु.ता.2.12.68 पृ.1 अंत)}
{इस नारकीय दुनिया के सारे धंधों का कारण है ही कामविकारा} {यस्य सर्वे समारम्भा कामसंकल्पवर्जिताः। (गी. 4-19)}

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः। नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्न्यासेन अधिगच्छति।। 18/49

सर्वत्र जितात्मा असक्तबुद्धिः | {इस संसार की} सब परिस्थितियों में आत्मजयी, आसक्तिरहित बुद्धि वाला,
विगतस्पृहः संन्यासेन परमां | {'यदृच्छालाभसंतुष्टो' (गी. 4-22) जैसा} कामनाहीन, समुचित त्याग से परमश्रेष्ठ
नैष्कर्म्यसिद्धिं अधिगच्छति | कर्मरहित {अतीन्द्रिय सुख से भरे बैकुण्ठ की} सिद्धि को प्राप्त करता है।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथा आप्नोति निबोध मे। समासेन एव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।। 18/50

कौन्तेय सिद्धिं प्राप्तः यथा | हे कुन्ती-पुत्र! {स्वर्गीय} सिद्धि को प्राप्त हुआ व्यक्ति जैसे {पहले-2}
ब्रह्म आप्नोति तथा ज्ञानस्य या | परमब्रह्म को पाता है, वैसे ही ज्ञान की जो {पुरुषोत्तम संगमयुग में}
परानिष्ठा मे समासेन एव निबोध | पराकाष्ठारूप सर्वोच्च स्थिति {होती है, वह} मेरे से संक्षेप में ही सुन।

धनंजय गुणतः धृतेः च बुद्धेः | हे ज्ञान-धनजेता! गुणानुसार धारणा एवं {हर व्यक्ति की} बुद्धि के
त्रिविधं भेदं एव शृणु अशेषेण | तीन प्रकार के {प्रकृतिकृत} भेद को भी सुन। {मैं उन्हें} पूरी तरह
पृथक्त्वेन प्रोच्यमानं | अलग-2 {सत्त्वादि तीनों गुणों के रूपों से विस्तारपूर्वक} बता रहा हूँ।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये। बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी।। 18/30

पार्थ या बुद्धिः प्रवृत्तिं च निवृत्तिं | हे पृथ्वीपति! जो बुद्धि {समयानुसार} कर्मों में लगने और न लगने,
कार्याकार्ये भयाभये च | कार्य वा अकार्य को, भय और निर्भयता को तथा {दैहिक दुखों के}
बंधञ्च मोक्षं वेत्ति सा सात्त्विकी | बंधन वा मुक्ति को {सच्चीगीता ज्ञान द्वारा} जानती है- वह सत्वगुणी बुद्धि है।

यया धर्मं अधर्मं च कार्यं च अकार्यं एव च। अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।। 18/31

पार्थ यया धर्मं च अधर्मं च कार्यं | हे पृथ्वीराज! जिससे धर्म और अधर्म को और {कालक्रम से} कर्तव्य
च अकार्यं एव अयथावत् | वा अकर्तव्य को भी {कोई भी आसक्ति के कारण} गलत ढंग से
प्रजानाति सा राजसी बुद्धिः | जान पाती है, वह {द्वैतवादी द्वापर के दैत्यों की} राजसी बुद्धि है।

अधर्मं धर्मं इति या मन्यते तमसा आवृता। सर्वार्थान् विपरीतान् च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।। 18/32

पार्थ तमसावृता या अधर्मं | हे पृथ्वीराज! {कलियुगी} तमोगुण से ढकी हुई जो {बुद्धि} अधर्म को
धर्मं च सर्वार्थान् विपरीतान् | {अति देहांकार-कारण} धर्म और सब {विश्व-कल्याणकारी अर्थों को} विपरीत
मन्यते सा तामसी बुद्धिः | मानती है, वह {सदा व्यभिचार के दोष से भरपूर} तमोगुणी बुद्धि है।

रमते च दुःखान्तं निगच्छति | रमण करता है और दुःखों के अंत को {इसी जन्म में} भली-भाँति पाता है।

यत् तत् अग्रे विषं इव परिणामे अमृतोपमं। तत् सुखं सात्त्विकं प्रोक्तं आत्मबुद्धिप्रसादजं।। 18/37

यत्तदग्रे विषमिव परिणामे | जो वह {सुख} शुरू में विष-जैसा {असहनीय कड़आ और} परिणाम में
अमृतोपमं तत् आत्मबुद्धि- | अमृत के समान {महासुखदायी होता} है, वह आत्मिक-रूप में बुद्धि की
प्रसादजं सुखं सात्त्विकं प्रोक्तं | खुशी से पैदा सुख {2500 वर्ष तक सतयुग-त्रेता में} सात्विक कहा गया है।

विषयेन्द्रियसंयोगात् यत् तत् अग्रे अमृतोपमं। परिणामे विषं इव तत् सुखं राजसं स्मृतं।। 18/38

यत्तदग्रे विषयेन्द्रियसंयोगात् | जो {सुख} शुरू में विषयेन्द्रियों के संयोग से {क्षणभंगुर होते हुए भी जैसे}
अमृतोपमं परिणामे विषं | अमृत के समान; {किंतु} परिणाम में विष की {सीमाहीन मृत्यदुःख} जैसा
इव तत् सुखं राजसं स्मृतं | हो, उस सुख को {द्वापरयुग से आरम्भ हुआ} राजसी माना गया है।

यत् अग्रे च अनुबन्धे च सुखं मोहनं आत्मनः। निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत् तामसं उदाहृतं।। 18/39

यदग्रे चानुबंधे आत्मनः | जो {सुख} शुरू में और अन्त में {भी} मन-बुद्धि {वाली आत्मा के लिए}
मोहनञ्च निद्रालस्यप्रमादोत्थं | मोहित करने वाला तथा {परिणाम में} निद्रा, आलस्य एवं प्रमाद से पैदा हो,
तत् सुखं तामसं उदाहृतं | वह सुख {व्यभिचारी कलियुग में} तामसी {राक्षसी वृत्ति का} कहा गया है।

न तत् अस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः। सत्त्वं प्रकृतिजैः मुक्तं यत् एभिः स्यात् त्रिभिः गुणैः।। 18/40

प्रकृतिजैरेभिः त्रिभिर्गुणैमुक्तं | प्रकृति से उत्पन्न हुए इन तीनों गुणों से मुक्त {भूत, भविष्य और वर्तमान में}

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा | {थोड़ा या सारा} ज्ञान, जानने योग्य बात, अच्छा समझदार-{ये} 3 प्रकार के
कर्मचोदना करणं कर्म कर्ता | कर्म-प्रेरक हैं। {इन्द्रियादि} साधन, कार्य {तथा अच्छा-बुरा कर्म-}कर्ता आत्मा
इति त्रिविधः कर्मसंग्रहः | -ऐसे 3 प्रकार का {शूटिंगकाल में अपना ही किया हुआ} कर्मों का संग्रह है।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधा एव गुणभेदतः। प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावत् शृणु तानि अपि।। 18/19

गुणसंख्याने ज्ञानञ्च कर्म च कर्ता गुणभेदतः | गुणों के ज्ञान में, ज्ञान & कर्म तथा करने वाला, गुणों के भेद से
त्रिधैव प्रोच्यते तान्यपि यथावत् शृणु | 3 प्रकार के ही कहे जाते हैं। उन्हें भी यथार्थ रीति मेरे से सुन।

सर्वभूतेषु येन एकं भावं अव्ययं ईक्षते। अविभक्तं विभक्तेषु तत् ज्ञानं विद्धि सात्त्विकं।। 18/20

येन विभक्तेषु सर्वभूतेषु | जिस {सत-त्रेता की शूटिंग के अद्वैतवादी} ज्ञान द्वारा अलग-2 हुए सब प्राणियों में
अविभक्तं अव्ययं एकं भावं | अखण्ड {और} अविनाशी एक {परमात्मा की योगऊर्जा} भाव आत्मशक्ति को
ईक्षते तत् सात्त्विकं ज्ञानं विद्धि | देखता है, उसे {साक्षात्} सात्विक {ईश्वरीय} ज्ञान {का अविनाशी सार ही} जान;

पृथक्त्वेन तु यत् ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान्। वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तत् ज्ञानं विद्धि राजसं।। 18/21

तु यत् ज्ञानं सर्वेषु भूतेषु | किंतु जो {द्वापुर-कलियुगी द्वैतवादी} ज्ञान सब प्राणियों में {दैहिक}
पृथक्त्वेन नानाभावान् पृथक् | भिन्नता द्वारा {जाति-धर्म-भाषादिक} नाना भावों में अलगाववादी
विधान् वेत्ति तत् ज्ञानं राजसं विद्धि | विधि से जाने, उस {द्वैतवादी हिंसक दैत्यों के} ज्ञान को रजोगुणी जान;

यत् तु कृत्स्नवत् एकस्मिन् कार्ये सक्तं अहैतुकं। अतत्त्वार्थवत् अल्पं च तत् तामसं उदाहृतं।। 18/22

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माणि अशेषतः। यः तु कर्मफलत्यागी स त्यागी इति अभिधीयते।। 18/11

हि देहभृता कर्माणि अशेषतः त्यक्तुं | क्योंकि {मुझ विदेही शिव की तरह} देहधारी कर्मों को पूर्णतया त्यागने में
शक्यं न तु यः कर्मफलत्यागी | समर्थ नहीं है; किंतु जो {देहधारी होते भी} कर्मफल का त्यागी है,
स त्यागी इति अभिधीयते | वह {'सर्व भूतहिते रता' ही यथार्थ में} त्यागी है- ऐसे कहा जाता है।

अनिष्टं इष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलं। भवति अत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित्।। 18/12

अत्यागिनां कर्मणः अनिष्टं | {सामान्यतः फलेच्छा का} त्याग न करने वालों को कर्म का अप्रिय,
इष्टञ्च मिश्रं त्रिविधं फलं प्रेत्य | प्रिय और मिश्रित 3 प्रकार का फल मरकर {आगे जन्म में स्वतः}
भवति तु संन्यासिनां क्वचिन्न | प्राप्त होता है; किन्तु {मोक्षभावी} संन्यासियों को कभी भी नहीं होता।

पञ्च एतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे। साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणां।। 18/13

महाबाहो सर्वकर्मणां सिद्धये | हे दीर्घबाहु! {अच्छे-बुरे माने गए} सारे कर्मों की सफलता के लिए
कृतान्ते मे सांख्ये एतानि | कर्मों के अंतकर्ता मेरे {आत्मभावी} संपूर्ण व्याख्या सहित ज्ञान में इन
पंच प्रोक्तानि कारणानि निबोध | पाँच कहे गए कारणों को {इस पु. संगम में अवश्य} समझ लो।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधं। विविधाश्च पृथक् चेष्टाः दैवं चैव अत्र पञ्चमं।। 18/14

अत्र अधिष्ठानं तथा कर्ता | यहाँ {शूटिंगकाल में कर्म की} आधारभूत {देह}, उसी तरह कर्ता
च पृथग्विधं करणं च विविधाः | {आत्मा} और विविध प्रकार की इन्द्रियाँ और {इन्द्रियों की} विविध

तु यत् एकस्मिन् कार्ये अहैतुकं | किंतु जो 1 {वसुधैव कुटुंब} के कार्य में बिना कारण {जड़ देहाकृति में}
सक्तं कृत्स्नवत् अतत्त्वार्थवत् | आसक्त हुआ 'सब-कुछ यही है'- {ऐसी संकुचित} तत्वहीन समान
अल्पं तत् तामसं उदाहृतं | अल्पबुद्धि है, वह {पापी कलियुग का} तामसी ज्ञान कहा गया है।

{जैसे कि आज एक शिवज्योति परमपिता+हीरो पार्टधारी परम+आत्मा जगत्पिता के बच्चे आत्मा-2 भाई-2 के भ्रातृभाव को सर्वथा भूलकर, अपने-2 धर्म-मठ-पंथ-सम्प्रदाय को ही अपनी संकुचित अल्पबुद्धि से सम्पूर्ण मान बैठे हैं।}

नियतं सङ्गरहितं अरागद्वेषतः कृतं। अफलप्रेप्सुना कर्म यत् तत् सात्त्विकं उच्यते।। 18/23

नियतं संगरहितं अरागद्वेषतः | नित्य-नियमपूर्वक, आसक्तिहीन, {कोई भी} रागद्वेष के बिना {और}
अफलप्रेप्सुना यत् कर्म | फलेच्छा रहित {व्यक्ति} से जो {विश्व-कल्याण की यज्ञ-सेवार्थ*} कर्म
कृतं तत् सात्त्विकं उच्यते | किया गया, वह सात्विक {सदाकाल सुखदायी} कहा जाता है; {गीता*-3/9}

यत् तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः। क्रियते बहुलायासं तत् राजसं उदाहृतं।। 18/24

तु कामेप्सुना साहंकारेण | किंतु {स्वार्थ में दैहिक फल की} कामना वाले व्यक्ति द्वारा अहंकार पूर्वक
वा बहुलायासं यत् कर्म पुनः | अथवा बड़े परिश्रमपूर्वक {किसी लगाव के कारण} जो कार्य बार-2
क्रियते तत् राजसं उदाहृतं | किया जाता है, वह {द्वैतवादी *विदेशी या विधर्मियों का} राजसी {कर्म} कहा है।

{*विदेशी-विधर्मी- ये हिंसक द्वैतवादी द्वापुर की दैत्य-आत्माएँ ही नरनिर्मित नारकीय मानवकृत इतिहास में 2500 वर्ष से ही आकर इस दुनियाँ को भ्रष्ट इन्द्रियों की दैहिक हिंसा से नरक बनाती हैं।}

पृथक् चेष्टाः च पंचमं दैवं एव | अलग-2 चेष्टाएँ और पाँचवाँ {अदृष्ट} भाग्य ही {मुख्य कारण हैं}।

शरीवाङ्मनोभिः यत् कर्म प्रारभते नरः। न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्च एते तस्य हेतवः।। 18/15

शरीवाङ्मनोभिः न्याय्यं वा | शरीर, वाणी और मन द्वारा न्याय से अथवा {नरनिर्मित मनमाने}
विपरीतं यत् कर्म नरः प्रारभते | अन्यायपूर्वक जो {अच्छे-बुरे} कर्म {चतुर्युगी में भी} मनुष्य करता है,
तस्य एते पंच हेतवः | उसके ये पाँचों कारण {ऊपर कपिल की सम्पूर्ण व्याख्या साङ्ख्य में कहे} हैं।

तत्र एवं सति कर्तारं आत्मानं केवलं तु यः। पश्यति अकृतबुद्धित्वात् न स पश्यति दुर्मतिः।। 18/16

तत्र एवं सति यः अकृत- | वहाँ {कल्पपूर्व की शूटिंग में} ऐसा होने पर {भी} जो अधकचरी
बुद्धित्वात् केवलं आत्मानं कर्तारं | बुद्धि के कारण {नीच संग से प्रभावित} केवल आत्मा को करने वाला
पश्यति स दुर्मतिः न पश्यति | देखता है, वह दुष्टबुद्धि {ठीक} नहीं देखता। {संग के रंग की बात है।}

यस्य न अहङ्कृतो भावो बुद्धिः यस्य न लिप्यते। हत्वा अपि स इमान् लोकान् न हन्ति न निबध्यते।। 18/17

यस्य अहंकृतः भावः न यस्य बुद्धिः | जिसका अहंकार भाव नहीं है, जिसकी बुद्धि {1 प्रभु सिवा कहीं भी}
लिप्यते न स इमान् लोकान् | लिप्त नहीं होती, वह इन {देहासक्त नास्तिक पापी} लोगों को
हत्वा अपि न हन्ति न निबध्यते | मारकर* भी नहीं मारता {और} न बंधायमान होता है। {जैसे- महादेव}

*{बाप (शिव) तो विनाश उस (शंकर) से कराते हैं जिस पर कोई पाप न लगे। (मु. ता.11.5.90)}

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना। करणं कर्म कर्ता इति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः।। 18/18

अनुबन्धं क्षयं हिंसां अनवेक्ष्य च पौरुषं। मोहात् आरभ्यते कर्म यत् तत् तामसं उच्यते।। 18/25

अनुबंधं हिंसां क्षयं च पौरुषं | {ऐटमिक महाविनाश से} होनेवाले परिणाम, हिंसा, हानि और सामर्थ्य को
अनवेक्ष्य मोहात् यत् आरभ्यते | न देखकर मोहपूर्वक जो {भी सांसारिक कर्म} आरम्भ किया जाता है,
तत् तामसं कर्म उच्यते | वह {कलियुगान्त का असहनीय दुखदायी} तामसी कर्म कहा जाता है।

मुक्तसङ्गः अनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः। सिद्ध्यसिद्ध्योः निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते।। 18/26

मुक्तसंगः अनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः | आसक्तिहीन, निरहंकारी, धैर्य और उत्साह से भरपूर,
सिद्ध्यसिद्ध्योः निर्विकारः सात्त्विकः कर्ता उच्यते | सिद्धि-असिद्धि में निर्विकारी, सात्विक कर्ता कहा जाता है।

रागी कर्मफलप्रेप्सुः लुब्धः हिंसात्मकः अशुचिः। हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः।। 18/27

रागी अशुचिः कर्मफल- | {विषयों में} आसक्त, अपवित्र {मूत-पलीती, सांसारिक} कर्मफल का
प्रेप्सुः हिंसात्मकः लुब्धः हर्षशोक- | इच्छुक, {तन-धनादि बल से} हिंसात्मक, लोभी, हर्ष {और} शोक से
अन्वितः राजसः कर्ता परिकीर्तितः | भरपूर, {द्वापुर-कलियुगी द्वैतवादी} राजसी कार्यकर्ता कहा जाता है।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकः अलसः। विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते।। 18/28

प्राकृतः अयुक्तः शठः स्तब्धः नैष्कृतिकः अलसः | असभ्य, भोगी, धोखेबाज, हठी, नीच, आलसी,
विषादी च दीर्घसूत्री तामसः कर्ता उच्यते | दुःखीभाव का & दीर्घसूत्री, तामसी कर्ता कहा जाता है।

बुद्धेः भेदं धृतेश्चैव गुणतः त्रिविधं शृणु। प्रोच्यमानं अशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय।। 18/29

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः। योगेन अव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।। 18/33

पार्थ योगेन यया अव्यभिचारिण्या | हे अर्जुन! {परमपिता+परमपार्टधारी से} योग द्वारा जिस अव्यभिचारी
धृत्या मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः | धारणाशक्ति से मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाएँ {अभ्यासपूर्वक}
धारयते सा सात्त्विकी धृतिः | {& वैराग से भी} रोकी जाती है, वह सात्विकी धारणा शक्ति है;

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयते अर्जुन। प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी।। 18/34

तु अर्जुन यया धृत्या | किंतु हे अर्जुन! जिस धारणा शक्ति से {नरनिर्मित इन सांसारिक}
धर्मकामार्थान् प्रसंगेन फलाकांक्षी | धर्म, धन और कामनाओं को तीव्र आसक्तिपूर्वक फलाकांक्षी {जीवन में}
धारयते पार्थ सा राजसी धृतिः | धारण करता है, हे पृथ्वीराज! वह {द्वैतवादियों की} राजसी धारणा है।

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदं एव च। न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी।। 18/35

पार्थ दुर्मेधाः यया स्वप्नं भयं | हे पार्थ! दुष्टबुद्धि व्यक्ति जिस {धर्मानुकूल} धारणा से स्वप्न, भय,
शोकं विषादं च मदं एव | शोक, विषाद और {मिथ्यांहकार के कारण} घमण्ड को भी {हठपूर्वक}
न विमुंचति सा तामसी धृतिः | बिल्कुल नहीं छोड़ता, वह {कलहयुगी राक्षसीयुग की} तामसी धारणाशक्ति है;

सुखं तु इदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ। अभ्यासात् रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति।। 18/36

तु भरतर्षभ इदानीं त्रिविधं | किंतु हे भरतश्रेष्ठ! इस {पु. संगमयुग की शूटिंग में नं. वार} 3 प्रकार के
सुखं मे शृणु यत्र अभ्यासात् | सुख को मेरे से सुन, जिसमें {वैराग सहित निरंतर} योगाभ्यास से {परमसुख में}